अनित्य

मृदुला गर्ग

हमारा सारा जीवन ही संघर्षमय और हिंसायुक्त है···हिंसा का कभी प्रयोग न करने की क़सम खा लेने का अर्थ होता है सर्वथा नकारात्मक रुख इख्तियार कर लेना जिसका स्वयं जीवन से क़तई कोई सम्पर्क नहीं होता···

···अगर इतिहास से कोई एक बात सिद्ध होती है, तो वह यह है कि आर्थिक हित ही समूहों और वर्गों के दृष्टिकोण के निर्माता होते हैं। इन हितों के सामने न तो तर्क और न नैतिक विचारों की हो चलती है। हो सकता है कि कुछ व्यक्ति राज़ी हो जाएं और अपने विशेषाधिकार छोड़ दें··· लेकिन समूह और वर्ग ऐसा कभी नहीं करते। इसीलिए शासक और विशेषाधिकार-प्राप्त वर्ग को अपनी सत्ता और अनुचित विशेषाधिकारों को छोड़ देने के लिये रज़ामंद करने की जितनी कोशिशें अब तक की गई वे हमेशा नाकामयाब ही हुईं और इस बात को मानने के लिए कोई वजह दिखाई नहीं देती कि वे भविष्य में कामयाब हो जाएंगी···

जवाहर लाल नेहरू
(दोनों उद्धरण 'मेरी कहानी' से)

दस कदम आगे···दस कदम पीछे···फिर आगे···पीछे···आगे···बार-बार पीछे। संकरे बरामदे में दोनों सिरों की दीवारें कदमों पर मुहर लगा रही हैं। दीवार तक और वापिस ···मुड़ना ही होगा···टकराना न चाहो तो।

बरामदे से सड़क दीखती है···सड़क के पार हरियाली। शहर है न। इक्का-दुक्का पेड़ दिख जाए तो समझ लो हरियाली है। ज़रा-सा आभास ही तो चाहिए··· आदमी बहुत कुछ पैदा कर लेता है।

तीन-चार मील घूम आना अविजित के लिए मामूली बात है। लम्बे डग भरना उसकी आदत है। बरामदा इतना संकरा भी नहीं है कि दस क़दम में पार हो जाए पर जगह की तंगी को देख कर डग छोटे कर लेना···छोड़ो···जिंदगी में क्या कुछ नहीं सीखना पड़ता···

सौ कदमों में गली पार होती है, हज़ार में सड़क और हरियाली के हाशिये में खिंची सड़क पर कदम गिनने ज़रूरी नहीं रहते। क़दमों की गिनती पर जाए तो अविजित कब का सड़क पार कर चुका···मन के पीछे-पीछे।

वह घर छोड़कर बाहर नहीं जा सकता। श्यामा की तबीयत खराब है। श्यामा की तबीयत अक्सर खराब रहती है। उसे छोड़कर बाहर नहीं निकला जा सकता। वह अकेलेपन से घबराती है। घबराहट उसकी बीमारी है या अकेलापन? नहीं, वह अविजित की बीमारी है···नहीं, अविजित को बीमार पड़ने का हक़ नहीं है···उतना वक़्त नहीं है उसके पास।

श्यामा ने फ़ोन करके उसे दफ्तर से बुलवाया है—जल्दी आओ, प्लीज़, मेरा दिल डूबा जा रहा है, जल्दी—जल्दी!

'मेरा दिल डूब रहा है, डाक्टर! मुझे बचाओ···सम्भालो मुझे···कोरामीन··· डाक्टर, जल्दी···मेरा दिल डूब रहा है···!'

'किसमें मिसेज़ बंसल···यहां तो कोई पोखर नहीं है। किसमें डूब रहा है आपका दिल?'

डाक्टर खुशमिजाज़ था।

अविजित ने हंसना चाहा था···

काश, ये अल्फ़ाज़ डाक्टर ने उससे कहे होते तो वह खुल कर हंस देता। सच ···अविजित अपने पर हंस भी लेता है !

श्यामा को ठिठोली पसन्द नहीं···उसकी बीमारी मजाक का विषय नहीं हो सकती। खुशमिजाज़ डाक्टर का घर में आना बन्द हो गया था।

आजकल जो डाक्टर आता है—माचवे—अविजित को लगता है, श्यामा से ज़्यादा बीमार है। वह हंसता क्यों नहीं···श्यामा के प्रलाप को इतनी गम्भीरता से क्यों लेता है···गोलियों की मिक़दार बढ़ाता ही चला जाता है।

श्यामा के लिए वह उतना ही जरूरी हो गया है जितना अविजित। अब उसे फ़ोन जाता है तो साथ-साथ डाक्टर माचवे को भी जाता है। बुलाते ही चला आता है वह। एक दिन···अगर आ पाये ऐसा कि श्यामा का पागलपन इतना बढ़ जाए कि वह अविजित को भूल कर सिर्फ़ डाक्टर माचवे को फ़ोन करे ! अविजित बरामदे की क़ैद से निकल जाए !

नहीं, ऐसा कैसे होगा। श्यामा न कहे तो भी उसे बीमार हालत में छोड़कर अविजित बाहर कैसे जा सकता है···श्यामा बीमार है, क्या वह जानता नहीं। जब से उसे थ्रोम्बोसिस हुआ है तभी से तो दिमाग़ी हालत ऐसी हो गई है न···शरीर ठीक न हो तो मन और दिमाग़ कैसे स्वस्थ रहेंगे। नहीं-नहीं, यह मस्तिष्क का विकार नहीं देह की बीमारी है। अविजित जानता है···अविजित को जानना चाहिए।

अपनी ज़िम्मेवारी को नकार कर गरदन छुड़ा लेना क्या इतना आसान है ? सिनबाद की पीठ पर चढ़े बूढ़े से भी मजबूत पकड़ होती है इसकी।

श्यामा कमरे में अकेली लेटी है। अविजित को उसके पास जाकर बैठना चाहिए। दफ़्तर छोड़ कर घर लौट आने का फ़ायदा क्या अगर वह बाहर बरामदे में टहलता रहे और भीतर श्यामा अकेली बिस्तर पर पड़ी हो।

श्यामा की आंखें उसी का पीछा कर रही हैं—शिकायती आंखें—श्यामा की आंखों में हमेशा शिकायत रहती है···सच, उसे उसके कमरे में जाकर बैठना चाहिए···

बस, दस क़दम और···सामने की दीवार तक जा कर मुड़ेगा तो सीधा कमरे के अन्दर चला जाएगा। श्यामा की आंखें उसके क़दम गिन रही हैं। कमरे का दरवाज़ा बरामदे के बीच में पड़ता है। पांच क़दम उधर और पांच क़दम इधर—बीच में दरवाज़ा।

तो जाए अन्दर ? कमरे में फैली अजीब-सी गन्ध दरवाज़े से ही पीछे धकेल देती है। श्यामा ने अभी-अभी बेडपैन लिया है···कमरे में मैले की बू बस-सी गई है। दिन में न जाने कितनी बार श्यामा बेडपैन लेती है···अविजित दिन में चार बार पांव साबुन से मल-मल कर धोता है···सुबह शाम जुराब बदलता है···जूते खोलने पर बदबू का छोटा-

सा भभका भी उठ जाए तो बर्दाश्त करना मुश्किल होता है।

बस...दस क़दम और...तब तक शायद कमरे में समाई गन्ध हल्की पड़ जाए ...अविजित के लिए अन्दर घुसना आसान हो जाए...बस, कुछ देर श्यामा के पास बैठ ले तो अपने को ग़ैरज़िम्मेवार महसूस न करे। वैसे ग़ैरज़िम्मेवारी की कोई बात है नहीं। श्यामा के पलंग के बराबर में मेज़ पर घण्टी रखी है। किसी चीज़ की जरूरत होने पर श्यामा घण्टी बजा देगी...सुनते ही वह भीतर चला आएगा। श्यामा की शिकायती आंखों की अवहेलना वह कर भी दे, घण्टी की पुकार की नहीं करेगा।

वह अन्दर घुसेगा...श्यामा की प्यासी आंखें उसके चेहरे पर चस्पां हो जाएंगी। वक़्त धीरे-धीरे सरकता रहेगा...वह महसूस करेगा कि उसके जिस्म पर सारा पानी श्यामा की तृष्णा ने आंखों में भर लिया है, फिर भी आंखें प्यासी हैं। सिहर कर बोल उठेगा, ऊंचे स्वर में—अपराधी ऊंचे स्वर में ही बोला करते हैं।

"क्या हुआ है तुम्हें ? बात क्या है, बताती क्यों नहीं ? क्या चाहिए ?"

"तुम जाओ, बाहर जाकर बैठो। स्वर्णा है यहां। तुम्हें जब मेरी परवाह नहीं..." श्यामा की आवाज़ रुंध कर रुकेगी।

"परवाह है ! मुझे तुम्हारी परवाह है !" क्यों अविजित ऊंची आवाज़ में नहीं कह पाता ? चिल्ला कर कहने से नाटक सच नहीं बन सकता, पर...आधे सच और आधे नाटक से अविजित बचना चाह कर भी कब बच पाया है ?

"आया से कह दो, मुझे बेडपैन ला दे," श्यामा कह रही है।

चौंक कर अविजित ने देखा, वह कब का श्यामा के कमरे में आ चुका।

कमरे का परदा खिंच गया। अविजित वापिस बरामदे में लौट आया। बरामदा कमरे से कट गया है।

अविजित के डग और लम्बे हुए...इस बार बरामदा आठ क़दमों में तय हो गया। दीवार जैसे अचानक सामने पड़ गई। आंख उठाकर देखा, छत के कोने में मकड़ी का जाला लटक रहा है। यह कहां से आ गया...कल तक तो नहीं था ? अविजित ने पंजों पर खड़े होकर हाथ ऊपर उठाया, उसका कद खूब लम्बा है, जाला हाथ से छू जाएगा...छू ही गया...सिहर कर उसने हाथ खींच लिया। जाला गिराना इतना आसान नहीं है। हाथ लगाने से बिखर कर नीचे नहीं गिरता, उंगलियों पर लिसड़ कर रह जाता है और फिर छुटाते-छुटाते...

अविजित ने बरामदे की दीवार से लगी अपनी निजी अलमारी खोली। अलमारी क्या है, भानुमती का पिटारा। सुई-धागे-कैंची से लेकर प्याला-प्लेट-गिलास, सब इसमें मिल सकते हैं। करीने से लगे। कवायद करते क़ैदियों की तरह।

अविजित को इस बरामदे में क़ैद कर दिया जाए तो वह हफ्तों आराम से दिन काट सकता है। अलमारी के सबसे निचले खाने में स्टोव, केरोसीन की बोतल, चाय,

शक्कर, कन्डेन्स्ड दूध और बिस्कुट, किसी खानाबदोश के झोले में सफ़र के सामान की तरह पड़े हैं। अविजित और खानाबदोश ! हां···एक दिन···सफ़र पर निकला तो था, पर···

अविजित ने जेब में हाथ डाला है, भरी हुई माचिस और सिगरेट का पाकेट जेब में है। सिगरेट-दियासलाई न रहने पर पल भर में बेचैन हो उठता है पर वाक़ई सिगरेट पीता है तब जब माहौल पुरसुकून हो। लम्बी टांगें सीधी आगे फैलाकर, कमर आराम-कुर्सी से टिका, मनपसन्द किताब हाथ में लेकर आधा घण्टा अलग-थलग रह सके तो··· चलो, न हो आधा घण्टा, पन्द्रह मिनट ही सही पर कहां···कब ?

अलमारी खोलकर उसने झाड़न निकाला और फिर जाले की तरफ रुख किया। झाड़न जाले पर छुआ कि उसके बीच थिरकती तुड़ी-मुड़ी चितकबरी टांगों ने हाथ रोक दिया। दस क़दम आगे···दस क़दम पीछे···रेंगने तक की छूट नहीं !

ठोस पीठ पर चित पड़ा घिनावना कीड़ा दसियों टांगें ऊपर उठाए कैसा वीभत्स नृत्य कर रहा है। जेल तुड़ाकर भाग निकलने की नाकाम कोशिश हमदर्दी न जगाकर घिन क्यों पैदा कर रही है ?

अविजित ने झाड़न के एक झटके से कीड़े समेत जाले को अलग फेंक देना चाहा पर हाथ ठिठका रहा···विकलांग का नाच कुछ और देर देखा उसने। फिर सख्त हथेली को मुलायम बनाकर कीड़े के चारों तरफ कसे महीन धागे समेट लेने चाहे···शायद कीड़ा छूटकर नीचे फ़र्श पर गिरे और रेंग निकले, दस क़दम आगे···

जाले पर हाथ लगा नहीं कि वह सिमटकर कीड़े पर लिसढ़ गया। झीने कफ़न में बंधा कीड़ा पल भर तड़फड़ाया और जड़ हो गया।

अविजित के क़दम न आगे बढ़े न पीछे हटे···कमरे का परदा हट गया··· अनदीखते घेरे के बीच अविजित जड़ खड़ा रहा···भाग निकलने का कोई रास्ता तो मिले···

कोई आ जाए, शुभा, प्रभा, कोई दोस्त, कोई भी, उसे श्यामा के पास बिठला कर वह भाग निकले। कहां···दफ़्तर ? हां, कहीं भी, दफ़्तर ही सही···घर से बाहर तो है न।

चार बज रहे हैं। शुभा-प्रभा को कालेज से लौट आना चाहिए था, कम-अज़-कम शुभा को। प्रभा का भरोसा कम है; बेहिसाब सहेलियां हैं उसकी। पिक्चर, सैर-सपाटा, खाना-पीना, रोज़ कोई प्रोग्राम रहता है। देर कर के घर लौटेगी भी तो साथ किसी सहेली को लेकर। अविजित ही की तरह वह भी हरदम लोगों से घिरे रहना पसन्द करती है। प्रकृति है उसकी···खुशमिजाज़ी, हमदर्दी, मित्रभाव, समाजप्रियता या ···डर, सिर्फ़ डर···अविजित की तरह, अकेलेपन का डर। आमने-सामने अपने··· बेसहारा···खुद को सहना कितना मुश्किल होता है। दस क़दम आगे···दस क़दम पीछे ···लगातार···

"पिताजी," एक बारीक आवाज़ कानों में पड़ी।

वह पांच क़दम पर घूम गया। देखा सामने शुभा खड़ी है।

"आ गईं।" उसने कहा।

"आप···अभी तो साढ़े चार ही बजे हैं···तो क्या ममी···?" शुभा की आवाज़ फुसफुसाहट में बदल गई। हाथ में थमी किताबों को उसने एक हाथ से दूसरे हाथ में पलटा।

"तबीयत ठीक नहीं है।" अविजित ने कुछ रूखे स्वर में कहा।

"फिर से?"

"हां।"

"ओह···डाक्टर आए थे?"

"हां, दवा दे गए हैं।"

"अब कुछ ठीक तो है?" शुभा ने एक नज़र कमरे के अन्दर डाली पर भीतर जाने का उपक्रम नहीं किया।

"तुम, जाओ बैठो उनके पास। मुझे दफ़्तर जाना है," अविजित ने कहा।

"अच्छा," शुभा ने बिना प्रतिवाद किये कहा पर उसके चेहरे पर निराशा के भाव साफ़ उभर आए।

उसका चेहरा पढ़ने में अविजित को कभी दिक़्क़त नहीं होती पर इस वक़्त जान-बूझकर उसे अनदेखा करते हुए कहा, "स्वर्णा है अन्दर। जाओ, कुछ खा-पी लो, फिर···"

"आप···कब तक···लौटेंगे?" शुभा ने एक बार फिर किताबों को एक हाथ से दूसरे में पलटते हुए पूछा।

"नौ बज जाएंगे, कई अपाइंटमेंट हैं। प्रभा आए तो कहना घर पर ही रहे।"

"प्रभा तो पता नहीं कब आएगी···" शुभा ने एक उसास-सी भरकर कहा।

अविजित जानता है, अगर क्षण-भर भी वह और वहां रुका रहा तो हमदर्दी के जाल में फंस जाएगा। शुभा के चेहरे पर निराशा का बादल मंडराए और अविजित कचोट खाए बग़ैर निकल जाए—नामुमकिन है।

शुभा का चेहरा हू-ब-हू वैसा है जैसा श्यामा का था—बीस साल पहले। नहीं, उतना सुन्दर नहीं पर वैसा ही, वायवीय और नाज़ुक। दुनिया की हर परेशानी और मुश्किल से इसे बचाकर रखूंगा, पहले-पहल देखा तो यही सोचा था और जी-जान से पूरा भी किया था अपने वादे को। पर···न जाने कहां क्या हो गया···

क्या किसी इंसान को यह हक़ है कि वह किसी दूसरे व्यक्ति के जीवन के तमाम निर्णय अपने हाथों में ले ले; उसकी तमाम ज़िम्मेवारियां अपने कन्धों पर उठा ले? दूसरा फिर कौन-सी ज़िन्दगी जिएगा—थोथी और सारहीन?

ठीक है, शुभा को कहीं जाना भी है तो क्या हुआ। घर पर मां जब बीमार है तो उसके लिए अपना शौक़ और तफ़रीह छोड़नी ही चाहिए।

श्यामा के कमरे के दरवाज़े पर खड़े होकर उसने कहा, "मैं दफ़्तर जा रहा हूं,

फिर दो-एक मीटिंग भी हैं। शुभा है यहां।" और बरामदा पार करके सीढ़ियां उतरने लगा।

तीन-चार सीढ़ियां उतरकर, सबसे निचली सीढ़ी पर आ, अनायास वह पीछे घूम गया। शायद देख लेना चाहता था कि शुभा भीतर जा चुकी। पर देखा, शुभा अभी वहीं खड़ी है, सूखा उदास चेहरा लिये।

चाहकर भी क़दम आगे नहीं बढ़े। कर्कश स्वर में पूछ उठा—

"तुम्हें कहीं जाना है?"

"वह···कालेज में नाटक है। आज रिहर्सल है, मुझे मेन रोल मिला था···पर ठीक है···मैं मना कर दूंगी···" आखिरी शब्द पर आते-आते शुभा का स्वर रुआंसा हो गया।

"मना करने की क्या जरूरत है?" अविजित का स्वर और कर्कश हुआ।

"रिहर्सल रोज़ होगा पांच बजे···मेरा जाना हो सकेगा?"

"क्यों नहीं हो सकेगा। कुछ-न-कुछ इन्तज़ाम हो ही जाएगा। तुम मना मत करना।"

अविजित जानता है शुभा को सिर्फ़ एक शौक है—अभिनय। उसकी सहेली है या नहीं, वह नहीं जानता। शायद ही किसीके घर जाती है या किसी को अपने घर लाती है। कालेज से सीधा घर आती है और किताब लेकर कोने में बैठ जाती है। श्यामा बीमार होती है तो चुपचाप आकर उसके बिस्तर के पास खड़ी हो जाती है, अथाह वेदना चेहरे पर लिए। आंखें श्यामा पर नहीं, अविजित पर टिकी रहती हैं। उसकी सब वेदना-करुणा-श्रद्धा उसी के लिए तो है। बीमार कौन है—श्यामा या अविजित···

अविजित सीढ़ियां चढ़ लौट आया। पूछा, "आज जाना ज़रूरी है क्या?"

"पहला दिन है न···" शुभा ने कहा।

"प्रभा आ जाए तो चली जाना।"

"प्रभा! वह···कौन जानता है कब आएगी," शुभा ने हथियार डालते हुए बुदबुद की।

यह लड़की ज़िद क्यों नहीं करती! अविजित ने क्षण-भर उसके चेहरे को निहारा, फिर मज़े से हंस दिया।

"अरे देखो तो, पांच बजने को आए, अब भला दफ्तर जाकर क्या करूंगा··· जा-जा, तू जा, कुछ खा-पी ले; फिर मैं तुझे छोड़ आता हूं," उसने कहा।

"नहीं, मैं खुद चली जाऊंगी," शुभा ने खुश होकर कहा, "दो लड़कियां और भी हैं साथ।"

"उन्हें भी लेते जाएंगे।"

"पर ममी···"

"अरे दस मिनट में क्या फ़र्क पड़ेगा, आया तो है ही। मैं बस तुझे कालेज के फाटक तक छोड़कर लौट आऊंगा। और वापिस कैसे आएगी?"

"डाक्टर जैन गुड ढोड आएंगे।"

डाक्टर जैन यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर हैं। यूनिवर्सिटी नाटक क्लब के नाटकों का निर्देशन वही करते हैं। शुभा उनकी तारीफ़ करते नहीं थकती।

"गुड ?" प्रविजित ने छेड़ते हुए हंसकर कहा।

"हां। बहुत ख्याल रखते हैं हम लोगों का। ही इज वन्डरफुल।"

"अच्छा ?" प्रविजित हंस दिया।

उसी की उम्र के हैं डाक्टर जैन। शुभा के आदर्श। शायद। लगता है वह उनके और प्रविजित के व्यक्तित्व को आपस में तोलती रहती है। मज़ेदार मालूम पड़ता है। कभी-कभी ईर्ष्या भी होती है। प्रविजित के लिए हर हमउम्र पुरुष एक चुनौती है।

शुभा को छोड़कर प्रविजित वापिस घर लौट आया। मन काफ़ी हल्का महसूस हो रहा था। ठण्डी हवा, गाड़ी की तेज़ रफ्तार और ज़िन्दादिल युवा लोगों का साथ। सारे रास्ते वह शुभा और उसके साथ की लड़कियों को अपने कालेज के दिनों के चुटकुले सुनाता गया था।

"' 'विजयलक्ष्मी पण्डित को मैं जाकर सभापति बनाने ले आया'''इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का स्टूडेन्ट्स यूनियन का प्रेसीडेन्ट था मैं'''सभा मैंने ही बुलवाई थी''' साइमन कमीशन के खिलाफ़'''विजयलक्ष्मी आने से कतरा रही थीं'''मोतीलाल की यूनिवर्सिटी जाने से मनाही थी, वह भी शाम के वक्त।। पर मैंने राज़ी कर ही लिया। अब एक बार मैं तय कर लूं और काम न हो, यह तो'''खैर, समा खूब जमी। विजयलक्ष्मी डटकर बोलीं'''ओह, कितनी सुन्दर हुआ करती थीं वह उन दिनों। यूनिवर्सिटी का हर लड़का उन पर फ़िदा था। रंग कुछ ऐसा जमा कि सभा खत्म हुई जाकर रात नौ बजे। डरते-डरते चले उन्हें वापिस घर पहुंचाने। मैं, एक लड़का और—चड्ढा नाम था उसका। आगे-आगे विजयलक्ष्मी, पीछे दुबके-सहमे हम। दरवाज़े की चौखट पर उन्होंने पांव दबा रखा ही था कि भीतर से ज़बरदस्त दहाड़ सुनाई दी, 'विजयलक्ष्मी ! कहां गई थी ! फिर घर से बाहर क़दम रखा तो टांग तोड़ दूंगा !'

'बाप रे,' चड्ढा चिल्लाया, 'मोतीलाल नेहरू !' और उल्टे पांव वापिस दौड़ लिया। मैं उसके पीछे। आनन-फानन में लड़का अहाते की दीवार फांदकर दूसरी तरफ़। एक ही पैंतरे में हाई और लांग जम्प दोनों का लाजवाब करिश्मा ! मैं फाटक से होकर दूसरी तरफ़ पहुंचा तो चड्ढा ज़मीन पर लबेदम।

'यार टांग टूट गई,' मुझे देखते ही बोला। 'कोई बात नहीं,' मैंने कहा, 'विजयलक्ष्मी की सलामत रहे !' "

लड़कियां खिलखिलाकर हंस दी थीं। मुग्ध भाव से प्रविजित की तरफ़ ताकती रही थीं। गाड़ी में से उतरते हुए गद्गद् भाव से बोली थीं, "शुक्रिया, अंकल।"

कुछ दूरी पर जाकर शुभा से जो कहा, वह भी उसके कानों में पड़ गया था, "सच, कमाल के डैडी हैं तेरे।" हंस-बोलकर घर लौटा तो मन वाक़ई बहुत हल्का था।

वह सीधा श्यामा के कमरे में घुस गया।

"अरे, तुम्हें चड्ढा याद है···वही जो विजयलक्ष्मी के पीछे पागल था!" चहक कर उसने कहा।

"तुम कहां चले गए थे?" श्यामा ने कहा," मुझे ठण्डे पसीने आ रहे हैं।"

"बस, ज़रा शुभा को कालेज छोड़ने गया था।"

"इस वक़्त? क्यों?"

"नाटक का रिहर्सल था।"

'नाटक करना क्या इतना ज़रूरी है?"

"ज़रूरी तो कुछ भी नहीं है।"

"एक दिन नाटक में न जाती तो क्या हो जाता।"

"क्यों नहीं जाती?"

"मां बीमार हो तो घण्टा-आधा घण्टा घर में नहीं टिका जा सकता? एक प्रभा है, घर लौटने का कोई वक़्त ही नहीं है। तुम्हारे लिए सब कुछ जरूरी है, बस एक मैं···"

"आ जा यार, पांच बज चुके। चाय-नाश्ते का बन्दोबस्त हो सकता है। पांच बजे से पहले हमारे घर में चाय मांगना धारा नम्बर तीन सौ सत्रह के अन्तर्गत जुर्म है, "ऊंची खिलखिलाहट के साथ प्रभा की आवाज़ सुनाई दी।

"उफ़," श्यामा ने कहा, "दिल बैठा जा रहा है। देखो तो कितना पसीना आ रहा है···"

अविजित झपट कर बाहर निकल आया।

"धीरे बोलो!" उसने प्रभा से कहा।

"क्यों, इस वक़्त तो पांच बजे हैं? न दिन के सोने का वक़्त है न रात के।"

"ममी की तबीयत खराब है।"

"फिर से!"

प्रभा का कहा 'फिर से' शुभा के कहे 'फिर से' से कितना फ़र्क है। उसमें आतंक था, इसमें व्यंग्य है।

"हां" अविजित का स्वर कठोर हो गया, "तुम इतनी देर करके घर क्यों आती हो?"

"क्योंकि पांच बजे से पहले यहां चाय-नाश्ता नहीं मिलता।"

"क्या मतलब?"

"अपने रसोइये हुजूर पांच बजे से पहले तशरीफ़ नहीं लाते।"

"तो? चाय तुम भी बना सकती हो।"

"मैं ?" अविजित के स्वर की कठोरता से चौंककर प्रभा ने उसकी तरफ देखा और कुछ सकुचाकर बोली, "ड्राइंग रूम में तोपी बैठी है।"

"ओह," अविजित का स्वर धीमा हो गया।

तोपी प्रभा की खास सहेली है।

"चाय बनवा लो। लछमन आ गया होगा।" उसने कहा, "पर ज्यादा शोर मत करना।"

"ऐसा करते हैं, पिताजी, हम चाय पीकर तोपी के घर चले जाते हैं। यहीं, रेल लाइन पार तो है। सात बजे तक लौट आऊंगी, अंधेरा होने से पहले..."

"नहीं, मैं आया को भेज दूगा, अकेले मत आना।"

"शुक्रिया पिताजी। एक मिनट तोपी से मिल लीजिए न।"

तोपी ने 'नमस्ते अंकल' कहकर एकदम धाराप्रवाह बोलना शुरू कर दिया।

"प्लीज मुझे एक दिन इकनॉमिक्स समझा दीजिए न, एकदम समझ में नहीं आती—खासकर थ्योरी...बतला देंगे न ?"

"क्यों नहीं, जरूर," अविजित ने कहा, "पर इकनॉमिक्स में मुश्किल क्या है ? सोशल साइंसेज में यही फ़ायदा है। तुम ग़लती कर ही नहीं सकते। हर सवाल के दो पहलू होते हैं, जो भी लिखो, ठीक।"

"ओह अंकल। आप की बात फर्क है। आप गलती कर ही नहीं सकते पर मैं..."

"तेरे भेजे में कूड़ा भरा है तो उसमें पिताजी क्या करेंगे ? अपनी अक़्ल उधार तो नहीं दे सकते," प्रभा ने टोका।

"कूड़ा तो तेरे भेजे में भी भरा है, फिर तू फ़र्स्ट डिवीज़न में कैसे पास हो जाती है ?"

"फर्स्ट डिवीज़न में पास होती हू, इसका मतलब है मेरे भेजे में कूड़ा नहीं भरा, इतनी बात भी समझ में नहीं आती।"

"बिल्कुल ग़लत ! तू सबकुछ अंकल से डिसकस कर लेती है। अंकल, मेरे पिताजी तो कभी मुझसे बात ही नहीं करते। कहते हैं कालेज के टीचर किसलिए हैं, उनसे पूछो।"

"जब चाहो हमसे पूछ लेना," अविजित ने उदार होकर कहा।

"यह मत कहिए," प्रभा बोली, "यह रोज़ आकर बैठ जाएगी। समझ में इसके कुछ आएगा नहीं, बस इधर-उधर की हांककर आपका वक़्त बरबाद करेगी," प्रभा ने कहा।

"तू क्यों मरी जा रही है, जलनखोरी !"

"अरे-रे, लड़ती क्यों हो," अविजित ने स्नेहिल हंसी के साथ कहा, "यह लो, चाय आ गई। वाह, पकौड़े भी हैं। किसके हैं ? मिर्च के। चल, चटनी भी डाल दे ऊपर से। भई नमकीन हो तो झालदार और मीठा हो तो तर माल। जानती हो तोपी,

हॉस्टल भर में मेरे बनाए मिर्च के पकौड़े और सूजी का हलवा मशहूर था। बड़े-बड़े लीडर लोग दाद दे चुके हैं। जेल में बनाया एक मर्तबा तो सच कहता हूं, जेलर के मुंह से, खुशबू सूंघकर ही, लार टपक पड़ी।" और अविजित हॉस्टल के दिनों के चटपटे किस्से सुनाने लगा।

उसके ठहाके के साथ ठहाका लगाकर तोपी और प्रभा हंसी ही थीं कि तोप की तरह दरवाज़े से स्वर्णा आया ने गोला दाग़ा, "साहब, बीबीजी बुला रहा है।"

अविजित के हाथ ने मुंह तक आया मिर्च का पकौड़ा नीचे छोड़ दिया। हंसी एकदम न रोक पाने के कारण तोपी और प्रभा बेमतलब कुछ देर और हंसती रहीं।

"उससे कहो, जाए," श्यामा ने कहा, "मेरा सिर दुख रहा है। कितना शोर मचा रही हैं ये लड़कियां।"

"अच्छा-अच्छा, अभी चली जाती हैं," अविजित अपराधी हो आया, "लाओ तुम्हारा सिर दबा दूं," उसने कहा।

"बत्ती बुझा दो।"

अविजित ने बत्ती बुझा दी।

उसे अंधेरे में बैठना बहुत खौफ़नाक लगता है। अकेले तो वैसे ही···रोशनी में भी अकेला बैठता है तो हाथ में किताब लेकर। दूसरे में सिगरेट। सिर पर तेज़ रोशनी का बल्ब हो, दोनों हाथ भरे हों तो अकेलापन कट जाता है वरना···

उफ़, अंधेरे में घुटा यह अकेलापन। ज़मीन से छत तक घटाटोप। धुन्ध, काली, धूल-भरी। हवा के लिए बिलखती आंधी से पहले की घुटन। कुट-कुट क्या धड़का करता है टाइम बम की तरह? उसके सिर की नसें—गोल गुम्बद में उभरी दरारों की तरह—सिर पर बाल जो नहीं है। साफ़ नजर आती हैं, सांप की तरह रेंगने की नाकाम कोशिश में फड़कती नसें। कनपटी के पास की नस तो बस···कोई देखे तो कहे, अविजित तुम लेट जाओ, आओ, मैं तुम्हारा माथा सहला दूं पर···कौन···?

श्यामा को रोशनी पसन्द नहीं है। सिर का दर्द तो बहाना है—स्पर्श को महसूस करने के लिए। देर तक रहे तो स्पर्श दवा बन जाता है। उसकी उंगलियां श्यामा के बालों में चल रही हैं पर अविजित कुछ भी महसूस नहीं कर रहा। एक बार निर्द्वन्द्व भाव से उसका स्पर्श महसूस कर सके तो शायद कनपटी के पास की नस कुछ देर को चटखना रोक रखे।

श्यामा ने आंखें बन्द कर लीं।

अंधेरे में भी उसकी गोरी काया काले कुहासे में लुप्त नहीं हुई। सफ़ेद भाप से बने रेखाचित्र की तरह हवा में खिंची है। बादल से बनी औरत—स्पर्श से परे; अविजित सोच रहा है, इतनी खूबसूरत औरत और कभी नहीं देखी···कम औरतें नहीं देखीं उसने। शायद खूबसूरती औरत को औरत नहीं रहने देती···मिक़दार में बढ़ जाए

तो दवा जहर हो जाती है। श्यामा कहा करती है…करती थी…उसके स्फटिक-से सफ़ेद रंग से घबराकर उसकी मां ने उसका नाम श्यामा रख दिया था—कहीं नजर न लग जाए। श्यामा की मां बचपन में ही गुजर गई थी। तुम्हीं मेरी मां हो, उसने प्रविजित से कहा था, शादी के पहले दिन। पति और मां!

श्यामा की सांस एक लय में बजने लगी। प्रविजित ने हाथ रोक लिया। श्यामा ने आंखें नहीं खोलीं। प्रविजित दबे पांव कमरे से बाहर निकल गया। ड्राइंगरूम खाली पड़ा था। तो तोपी के साथ प्रभा भी निकल गई। बेवकूफ़ लड़की है। जब इतनी देर यहां बैठ चुकी थी तो अब उसके घर जाने में क्या तुक थी। दिसम्बर की शाम है, सात बजे ही अंधेरा घिर आया है। यह प्रभा को घर काटने को क्यों दौड़ता है…मेरी तरह…छोड़ो…कुछ देर बाद आया को भेज दूंगा उसे बुलाने।

वह बरामदे के कोने में बैठ गया और सिर पर लगा लैम्प जला लिया। शेड कुछ नीचे झुका दिया। इस तरह रोशनी श्यामा के कमरे के भीतर नहीं घुस पाती। बस पड़ा 'टाइम' अखबार उठाकर घुटनों पर रख लिया…जेब से सिगरेट निकाली…स पांच मिनट चुपचाप खाली बैठेगा…फिर अखबार पढ़ेगा…सिगरेट पिएगा…एक और…

"लौट आई प्रभा," सामने दीवार पर नारी आकृति की परछाईं देखकर वह बोल उठा, इतनी रात…"

ज़बान तालू से सटकर सूखी लकड़ी हो गई! सिर उठाकर जो देखा…सामने स्त्री खड़ी है…नहीं, कैसा भूत-सा नामुमकिन भ्रम है!

"क्या हुआ?" स्त्री धीमे से हंसी।

"तुम ऽ!"

"पहचाना नहीं क्या?"

"संगीता!"

"वाह, पहचान तो लिया।"

"तुम…तुम…कब…"

"अभी आई, बस जब आपने देखा। घर में अंधेरा देख कर घण्टी देना ठीक नहीं समझी। सीधी अन्दर चली आई। खैरियत तो है?"

"तुम…इतने साल बाद…" प्रविजित अब तक प्रकृतिस्थ नहीं हो सका था।

"सिर्फ पांच," संगीता ने कहा।

"हां…पांच…फिर भी…"

शादी कर रही हूं, कार्ड देने चली आई।"

"शादी···तुम···अब ?"

"क्यों, अब क्यों नहीं ? आंधी और लू की तरह शादी का मौसम भी हिन्दुस्तान में हर बरस आता है।"

"मेरा मतलब था···"

"इतनी बूढ़ी नहीं हुई," संगीता ने बीच में टोक दिया।

"नहीं-नहीं, बूढ़ी क्यों होगी।"

"हां, जब आप बूढ़े नहीं हुए तो मैं कैसे हूंगी।"

"लड़का कौन है ?" अविजित ने संभलते हुए पूछा।

"मालदार सेठ का बेटा है।"

"कैसा है ?"

"जवान और सेहतमन्द। काफ़ी जिएगा।"

"संगीता !"

"क्या हुआ ? आप जानते नहीं, हिन्दुस्तान में औरत और चाहे जो करे, पति को जिन्दा जरूर रखती है। विधवाओं की यहां गुजर नहीं। सफ़ेद कपड़ों में भला क्या मिल सकता है ? सब दरवाज़े बन्द। हां, पति रहे तो चाहे जो करो···पश्चिम की तरह हमारे यहां 'मेरी विडो' का···"

"रहने दो," अविजित ने तल्खी से कहा, "लड़का मिला कहां ?"

"मिलता कहां ? बाक़ायदा फांसा है।"

"यानी खूब पसन्द है ?"

"लड़का भारी है हुजूर। झुमरी तलैया के मेले में खड़ा कर दो तो भैंसों में अव्वल रहे।"

"क्या कह रही हो, संगीता !" अविजित के स्वर में जुगुप्सा उभर आई।

"यों कहना बेहतर रहता," संगीता ने लापरवाही से कहा, "पर क्या करूं, बर्खुरदार खासे काले हैं।"

"जिस आदमी के बारे ऐसा सोचती हो उससे विवाह करोगी ?"

"उसे बतलाऊंगी थोड़ा।"

"शादी कर क्यों रही हो उससे ?"

"मालदार है।"

"तुम्हें पैसे की क्या कमी है ? डाक्टरी खूब बढ़िया चल रही है।"

"आपको मेरे बारे में इतनी जानकारी कैसे हुई ?"

"क्यों, इतनी नामी लेडी डाक्टर हो, जानकारी नहीं होगी ?" अविजित ने 'लेडी डाक्टर' शब्द कुछ व्यंग्य के साथ कहा।

"लेडी डाक्टरों से आपका सरोकार ? बच्चे गिरवाने का धन्धा तो नहीं करने लगे।"

"संगीता !"

इस बार संगीता सकुचा गई।

"सॉरी," उसने कहा, "ज्यादती हो गई। दरअसल जनाना अस्पतालों में काम करते-करते जुबान खराब हो ही जाती है।"

उसने शादी का कार्ड आगे कर दिया।

"मुबारक," अविजित ने कटु स्वर में कहा, "मैं कभी सोच भी नहीं सकता था, तुम बिना प्यार किये, सिर्फ पैसों के लिए शादी कर सकती हो।"

संगीता का संकोच उड़ गया।

"क्यों नहीं सोच सकते थे," उसने कहा, "आप तो मेरी मां को जानते थे। उन्होंने हमेशा यही सीख दी, किसी मर्द से प्यार की खातिर शादी मत करो। प्यार लो, दो कभी नहीं।"

"तुमने नहीं दिया कभी ?"

"कम-उम्र में छोटी-मोटी गलतियां सबसे होती हैं। पर शादी करने की गलती तो नहीं की।"

"करना नहीं चाहती थीं ?"

"अविजित जी," संगीता ने कहा, "दो बातें याद रखिए। चन्दे से पढ़ी हुई लड़कियां अपने प्रेमी के नाम के आगे भी 'जी' लगाती हैं और शादी मालदार सेठों के बेटों से करती हैं।"

"क्या मतलब ?"

"आगे फिर कभी किसी लड़की की पढ़ाई में चन्दा दें तो सूक्ति काम आएगी, याद कर लीजिए।"

"यही व्यंग्य करने आई थीं यहां ?"

"आई तो शादी का न्योता देने थी पर क्या करें, व्यंग्य बिना अपना काम नहीं चलता। अब देखिए न, हम न शराब पीते हैं न सिगरेट। ले-दे कर एक शौक है—व्यंग्य, वह भी छोड़ दें तो जिएं कैसे ?"

अविजित चुप रहा।

"अच्छा, जाने दीजिए," संगीता ने कहा, "आपकी पत्नी कैसी हैं ? आज मन है, उन्हें गाना सुनाऊं।"

"गाना ?"

"हां। याद है, आप मुझे श्यामाजी को गाना सुनाने घर लाया करते थे। अब भी उतना ही अच्छा गाती हूं।"

"श्यामा की तबीयत ठीक नहीं है। सो रही हैं।"

"पूछ कर तो देखिए, शायद गाना सुनने के लिए जागना चाहें।"

"नहीं।"

"तब चलूं, शादी में आइएगा जरूर।"

"संगीता···" वह चली तो अविजित पुकार उठा।

"जी ?"

"तुम क्या···किसी को पसन्द करके···नहीं कर सकतीं शादी···"

"अविजित जी," संगीता बिल्कुल उससे सट कर खड़ी हो गई, "आप मुझसे शादी करेंगे ?"

"मैं ?" अविजित सिहर कर पीछे हट गया।

संगीता खिलखिलाकर हंस पड़ी।

"हुश," अविजित के मुंह से निकला, "श्यामा सो रही है।"

"कौन है ?" भीतर से श्यामा की आवाज़ आई।

"मैं हूं, संगीता," संगीता ने आगे बढ़कर खुद जवाब दिया, "अन्दर आ जाऊं ?"

अविजित बेहद घबरा गया। जाने श्यामा क्या कह दे !

"आओ," श्यामा ने कहा।

"नमस्ते।"

"इतने दिन बाद ?,'

"तबीयत कैसी है ?"

"ठीक नहीं है।"

"गाना सुनेंगी ?"

"गाना ?"

"हां।"

"गाती हो अभी भी ?"

"हां।"

"मूड है ?"

"देखिए," संगीता ने हंसकर कहा, "अपना बदला आप ले चुकी हैं। एक दिन आप ने गाना सुनाने को कहा और मैंने कह दिया, मूड नहीं है। तो अगले दिन मेरे गाना शुरू करने पर आपने भी कह डाला, रहने दो, आज मूड नहीं है।"

श्यामा भी हंस दी।

"तुम्हें याद है ?" उसने कहा।

"हां। सुनाऊं ?"

"कोई खास बात है ?"

"हां, मेरी शादी है ?"

"मुबारक ! तब तो जरूर सुनाओ। तुम्हारा गाना सुनकर हमेशा मेरी तबीयत बेहतर हो जाया करती थी।"

संगीता की आंखों में करुणा उभर आई। उसने श्यामा का हाथ अपने हाथ में ले लिया और धीमे सुर में गा उठी।

अचरज से भरा अविजित उन दोनों को देखता रहा... अब दूसरा व्यंग्य कहां गया?

व्यंग्य समर्थ पर किया जाता है, एक दिन संगीता ने कहा था।

सामर्थ्य का नाटक करने वाले को व्यंग्य कितना सालता है, संगीता जानती है?

२

"मायाजी फटाफट मेरे लिए दो ब्रेड पकौड़े बनवा दीजिए, कालेज को देर हो रही है," सुबह आठ बजे प्रभा ने हांक लगाई, "साढ़े आठ की स्पेशल मिस, तो बस..."

"कौन बनाएगा?" माया ने डपटकर कहा।

"क्या मतलब? आपके पूज्य स्वामी श्रीयुत लछमन जी महाराज, जो रोज बनाते हैं।"

"वह नहीं है।"

"नहीं है? क्या हुआ? भाग गए।"

"भागकर किधर जाएगा, हरामी," आक्रोश से भिन्नाते स्वर में माया ने कहा।

"ओहो, समझी...आसन पाटी!"

माया चुप रही।

"फिर से?" प्रभा ने मायूस स्वर में कहा और शुभा को पुकारकर बोली, "यार शुभा, इस घर में तो मैं 'फिर से' कहती-कहती बूढ़ी हो जाऊंगी।"

"हूं," शुभा ने कहा और आंखें किताब पर जमाए रही।

"क्या पढ़ रही है?" प्रभा ने कहा।

"शेष प्रश्न।"

"सुबह आठ बजे? तेरा दिमाग़ ठिकाने तो है न?"

"हूं।"

"तूने सुना, श्री-श्री एक सौ आठ लछमनजी महाराज पूज्य स्वर्णा देवी से लड़कर आसन-पाटी लिये पड़े हैं। अब हम क्या खाएंगे, एक-दूसरे का सिर!"

"खाना?" शुभा ने अनमनी नज़रें इधर-उधर दौड़ाकर ताका, फिर बोली- "कुछ भी खा ले।"

"क्या ?"

"स्लाइस···"

"छी: नामुमकिन।"

"मक्खन लगा लेना।"

"नहीं, मुझसे नहीं चलता।" प्रभा ने कहा और उठकर आया के पास चली आई।

"स्वर्णाजी," उसने लाड़ से कहा, "आप ही तल दीजिए दो पकौड़े मेरे लिए।"

"हमसे नहीं होगा। लड़के को देखेगा, मां को देखेगा या तुम लोगों का नखरा सहेगा। ऐसे ही खा लो डबलरोटी," आया ने झिड़क दिया।

"हां, लड़के को देखना तो जरूरी है। तू जानती है शुभा, हमारे यहां जब लड़का पैदा हुआ तो स्वर्णा देवी ने गद्‌गद् होकर उसे सोने की तगड़ी भेंट की और फिर ममीजी ने भी उतने ही गद्‌गद् भाव से आयाजी को सोने की चेन बख्शी···"

"तो ?" शुभा ने कहा, "उसे शौक था इसलिए दी···"

"हां, शौक से दिया और शौक से लिया, हिसाब बराबर।"

"तू यह सब बातें कहां से सीखकर आती है ? तेरी सहलियां हैं न···वह तोषी और प्रेमा···"

"चुप। मेरी सहेलियों को कुछ मत कहना। तेरी अपनी तो कोई सहेली है नहीं···"

"लछमन ! नाश्ता !" अविजित की आवाज़ सुनाई दी।

बिना घड़ी देखे प्रभा ने कहा, "सवा आठ बज गए। मेरी स्पेशल मिस !" फिर आवाज ऊंची कर के बोली, "लछमन आसन-पाटी लिए पड़ा है।"

"चोप !" झपटकर आया ने उसका मुंह बन्द कर दिया, "बेतमीज लड़की। साहब को बोलने का जरूरत।"

"बेतमीज नहीं," प्रभा ने कहा, "बदतमीज, और जरूरत नहीं···"

"हैं ! हमको बेतमीज बोलता है !" आया बीच ही में गरजी।

"नहीं, काली माई, आपकी जुबान ठीक कर रही हूं।"

स्वर्णा आया बहुत काली है पर 'काली माई' कहने से खुश होती है, नाराज़ नहीं।

"जास्ती चपड़-चपड़ करेगा तो दुर्गा बाड़ी नहीं लेकर जाएगा इस बार," कहकर वह श्यामा के कमरे की तरफ बढ़ गई।

नाश्ता लेकर आती हूं, साहब," अन्दर झांककर कहा।

नाश्ता अविजित श्यामा के कमरे में ही करता है, लछमन ट्रे में आमलेट-टोस्ट लगाकर वहीं दे आता है।

"रोज़-रोज़ यह लछमन आसन-पाटी लेकर पड़ जाता है," पीछे प्रभा ने गुस्सा होकर शुभा से कहा, "आखिर हम लोग उससे इतना डरते क्यों हैं।"

"प्लीज़ प्रभा," शुभा ने घबराकर बाधा दी, "पिताजी सुनेंगे तो परेशान होंगे। उन्हें दफ्तर जाने दे। कल भी नहीं जा पाए थे।"

"ठीक है। तब तू मेरे लिए ऑमलेट बनाकर ला।"

"पर मुझे ऑमलेट बनाना नही आता।"

"क्यों नहीं आता? लछमन महाराज जब रसोईघर में रहते हैं तो सीखती क्यों नहीं?"

"पिताजी को मेरा रसोई में जाना पसन्द नही है। जब भी जाती हूं आवाज़ लगा लेते हैं।"

"हां, पिताजी का खयाल है, तू कोई बड़ी चीज़ बनने वाली है। क्या बनेगी तू?"

"पता नही।"

"मेरा खयाल है···किताब हाथ में लेकर पड़े-पड़े तू एक दिन कीड़ा बन जाएगी और बुक-शेल्फ पर रेंगा करेगी। खूब मौज़ू रहेगा तेरे लिए। पर तब तक··· तू जाकर अण्डा उबाल न मेरे लिए।

"अच्छा," कह कर शुभा उठ गई। कुछ दूर जाकर सहसा उसे कुछ सूझा और वह मुड़कर बोली, "पर तू खुद क्यो नही उबाल सकती अण्डा अपने लिए?"

"मैं सीधा जाकर लछमन को उठाती हूं कान पकड़कर। जब देखो लम्बलेट हो गए। झगड़ा करता है अपनी बीवी से और खमियाज़ा हमें उठाना पड़ता है। आखिर डर क्या है हमें उससे?"

"प्लीज़, चुप रह न। तू जानती तो है वह हरदम जाने-जाने की रट लगाए रखता है। वह चला गया तो कौन जाने आया भी चली जाए उसके पीछे। फिर··· सुधांशु का क्या होगा?"

"वाह, बेटा पैदा किया बीबीजी ने, पालने का शौक आया को है।"

"प्लीज़, प्रभा!"

"चल छोड़। तू अण्डे उबाल···और हां, कॉफी भी बना लेना··· कितनी तो देर हो गई।"

·

शुभा ने अण्डे-टोस्ट ला कर मेज़ पर रख दिये। फिर प्रभा ने पूछा, "शाम को कितने बजे लौटेगी तू?"

"पता नही। क्यों, तू तो आज कॉलेज नहीं जा रही न। पिताजी ने कहा है एक जने को घर पर रहना है।"

"हां, पर शाम को?"

"शाम को क्या है ?"

"मेरे नाटक का रिहर्सल है ?"

"एक दिन मत जा। सारे संवाद रटे तो पड़े हैं तुझे।"

"उससे क्या ? रिहर्सल में जाना होता ही है।"

"क्यों ? एक दिन डाक्टर जैन से बिना मिले नहीं रह सकती।"

"क्या मतलब ?"

"मतलब यह कि तू डाक्टर जैन से प्यार करती है।"

"शट-अप !" झपटकर शुभा ने प्रभा के कंधे पकड़ लिए, "यह बेहूदा बकवास करने की हिम्मत कैसे हुई तेरी।"

"अरे-रे क्या हुआ, पागल !" प्रभा ने उसे अलग झटकते हुए कहा, "प्यार तो सभी सभी को करते हैं। इसमें बुरा मानने की क्या बात है ?"

"तू किससे करती है ?" शुभा ने चुनौती दी।

"अभी किससे करूंगी। मरा लड़कियों का तो कालेज है। बी. ए. कर लूं फिर करूंगी प्यार—ठाठ से। पर तू कर डाल, इन रोज़-रोज़ के रिहर्सलों का कुछ तो फ़ायदा हो। तेरी जगह मैं होती न तो डाक्टर जैन को कब का पटा लेती। काम मुश्किल भी नहीं है। सब बुद्धिजीवी पुरुष बेवकूफ़ लड़कियों से शादी करते हैं। पिताजी को ही देख ले।"

"तू हरदम ममी के पीछे क्यों पड़ी रहती है ?"

"मुझे कमज़ोर लोगों से नफ़रत है" प्रभा ने ऐसे बिफर कर कहा कि शुभा दंग रह गई।

"और देख, "प्रभा कहती गई," तू ज़रा अपनी देखभाल कर वरना एक दिन ममी की तरह बन जाएगी। एक तो चेहरे का रंग तेरा ज़रूरत से ज़्यादा साफ है ऊपर से आए दिन बुखार चढ़ता है, अब बात-बात पर रोने की आदत और पड़ जाए तो बस···"

और शुभा सचमुच रो दी।

"अब क्या हुआ ?" प्रभा ने कहा।

"तू ऐसी जली-कटी बातें क्यों करती है हर वक़्त।"

"कॉफ़ी क्यों नहीं बनाई ?" प्रभा का जवाब मिला।

"दूध नहीं मिला।"

"आयाजी से मांगा होता।"

"आयाजी," स्वर्णा को सामने से आता देख, प्रभा ने ही पुकारा, "दूध कहां है ?"

"अभी आया नहीं," स्वर्णा ने दूर ही से जवाब दिया।

"अरे बाबा, रात का तो रखा होगा।"

"जो था, सुधांशु को दे दिया।"

"तो और मंगा कर रखा क्यों नहीं ?"

"रखा तो था। वह हरामी सब गिरा दिया।"

"कौन हरामी ?"

"वही···हमारे गले का फांसी।"

"क्यों गिरा दिया ? दूध फेंकने के लिए आता है !" अब प्रभा वाकई गुस्से में थी।

"जानता नहीं, बस सुधांशु खाना खाया नहीं। रात देर करके बोला, दूध-डबल रोटी लाकर दो। हमने सोचा लड़का का तबीयत ठीक नहीं लगता, उसी का कमरा में सो जाएगा। वह हरामी हमारा साथ जोर-जबरदस्ती करता था—उधर चलो अपना कोठरी में। हम बोला, नहीं-नहीं, पर सुनता जो नहीं। हम बेलन उसका सिर पर मारा तो वह यमदूत दूध का भिगोना उठाकर फेंक दिया।" आखिरी बात कहते-कहते स्वर्णा हांफने लगी। पसीने की बूंदों से भीगकर उसका काला चेहरा आबनूस की तरह चमक उठा।

"बीबीजी सोता था नहीं तो हम उसका सिर फोड़ देता।"

"वाह !" प्रभा ने कहा, "नाटक जोरदार है। इसी डर से आसन-पाटी लिये पड़ा है ?"

"अफीम खाकर पड़ा है हरामी।"

"और भी बढ़िया। तो सुधांशु को सुबह दूध कैसे मिला ?"

"दूसरा बर्तन में था न थोड़ा।"

"और पिताजी को ?"

"चाय दिया, बस।"

"और मैं ? तुझे घोंटकर पिऊं ?"

"खोखी बिना दूध के जा सकता है, तुम नहीं जा सकता।"

"खोखी कौन ?"

"खोखी कौन। अपना बहन को नहीं जानता।"

"उसका नाम सुस्मिता है।"

"सू-सू-मिता हम नहीं जानता। खोखी नाम है, समझा।"

खोखी के जन्म के बाद श्यामा को पैर में थ्रोम्बोसिस हो गया था। छह महीने तक बिस्तर पर पड़ी रही थी—एकदम सीधे, बिना हिले-डुले। पैर के दोनों तरफ रेत की थैलियां लगा दी गई थीं—टांग जरा हिली नहीं कि खून का थक्का दिल में पहुंच कर दिल की धड़कन रोक सकता था या दिमाग में पहुंचकर पागल बना सकता था।

बच्ची का मुंह न श्यामा ने देखा था, न अविजित ने। उसका सारा वक्त श्यामा की तीमारदारी में गुजरता था। फिर भी बच्ची पल गई थी। स्वर्णा ने जब जितने पैसे मांगे अविजित ने दे दिये थे। बच्ची बढ़ती रही थी, पहले डिब्बे के दूध पर, फिर ··· के

दूध पर, फिर दाल-भात पर···स्वर्णा जो थी। साल भर तक किसी को याद नहीं आया था कि उसका कुछ नाम भी होना चाहिए। स्वर्णा उसे खोखी कहकर पुकारती। किसी और को उसका नाम लेने की जरूरत कम ही पड़ती।

खोखी साल भर की हो गई। स्वर्णा की कोठरी से निकल कर इधर-उधर घूमने लगी। तभी एक दिन नौ वरस की प्रभा की सहेली घर आने पर वोली, "खोखी तुम्हारी आया की लड़की है?"

"धत!" शुभा ने कहा, "हमारी वहन है।"

"खोखी? पर वह तो नौकरों के वच्चों का नाम होता है," सहेली ने अपनी नौ वरस की पूरी सूझ-वूझ का परिचय देते हुए कहा।

"इसका पूरा नाम सुस्मिता है," अचानक प्रभा ने ऐलान किया।

"क्या!" शुभा ने अचरज से कहा।

"हां, सुस्मिता।"

सुस्मिता उसकी कक्षा में पढ़ने वाली लड़कियों के नामों में सवसे मुश्किल नाम था। सहेली पर धाक जम गई थी। पुकारने की कोशिश में जवान ऐंठकर रह गई थी। स्कूल जाने पर खोखी का नाम सुस्मिता ही लिखवाया गया पर किसी की जवान पर वह चढ़ा नहीं। वस स्वर्णा से झगड़ा होने पर या सहेलियों के आस-पास होने पर प्रभा उसे इस नाम से ज़रूर पुकारती है।

"नहीं समझा," अव उसने कहा, "पर वात हो रही थी दूध की, याद है?"

"हां, याद है," स्वर्णा ने कहा, "रुको अभी। आ जाएगा दूधवाला।"

"और कालेज मुझे दूधवाला छोड़ने जाएगा!" प्रभा ने जोर से कहा।

भीतर के कमरों तक उसकी आवाज़ गूंजी और पल-भर में अविजित सामने खड़ा था।

"क्या हुआ?" उसने कहा।

"प्लीज़ प्रभा," शुभा ने वाधा देते हुए कहा, "हॉरलिक्स पी ले। ममी पीती हैं। वुरा नहीं होता।"

"शट-अप!"

"क्या हुआ?" अविजित ने प्रश्न दुहराया।

"घर में दूध तक नहीं है? मैं क्या भूखी कालेज जाऊं। यह घर है या फुटपाथ?"

"क्यों नहीं है?" अविजित का स्वर गुस्से से कांपकर स्वर्णा की तरफ वढ़ा पर उसकी रौद्र मूर्ति देखकर सहम गया।

"आया नहीं दूधवाला," स्वर्णा ने कहा।

"लछमन से कहो हलवाई से ले आए।"

"वो नहीं है।"

"प्रागन-पाटी लिए पड़ा है, [illegible]।

"अब नहीं रहेगा वो। और वो गया तो हम भी जाएगा," स्वर्णा ने कहा।

स्वर्णा चली गई तो बच्चे? सुधांशु और वह···क्या नाम है उसका··· सोसी?

"वह कहीं नहीं जाएगा और न यह काली माई जाएगी। रोज़-रोज़ की बन्दर-भभकी। आखिर हम इनसे डरते क्यों है।" प्रभा पूरे तैश में थी।

तभी श्यामा के कमरे की घण्टी ज़ोर से टनटना उठी।

शुभा भागकर वहां पहुंची।

"ममी के जूस को देर हो गई," फौरन ही बाहर आकर उसने घबराए स्वर में कहा, "और वह बेडपैन मांग रही हैं?"

"बेडपैन!" प्रभा ने हिक़ारत से कहा, "कोशिश करके गुसलखाने तक नहीं जा सकतीं। आखिर उन्हें ऐसा हुआ क्या है?"

"प्रभा, धीरे बोलो!" अविजित ने फ़ौरन डाटकर कहा।

"आया, प्लीज़ तुम जूस निकालो, बेडपैन मैं दिये देती हूं," शुभा ने स्वर्णा की बांह पकड़कर मनुहार की और बेडपैन लेने दौड़ गई।

प्रभा और अविजित एक-दूसरे को तोलते खड़े रहे।

गलत तो नहीं कहती प्रभा। स्वर्णा-लछमन की यह रोज़-रोज़ की किटकिट, झगड़ा-फसाद! पैसा पूरा खर्चो और सुकून का नामोनिशान नहीं! जाना चाहते हैं तो चले जाएं। आया-नौकर और बहुत मिल जाएंगे पर···स्वर्णा के बिना यह घर! श्यामा···सुधांशु और वह सोसी, कौन समझ पाएगा उन्हें?

स्वर्णा को इस घर में आए सोलह बरस बीत गए। अपना कोई बच्चा उसका है नहीं। और अविजित के बच्चे? कभी-कभी उसे लगता है कहीं सुधांशु और सोसी स्वर्णा के ही तो बच्चे नहीं?

शुभा बेडपैन लिए कमरे से बाहर निकली।

"आया! जूस!" उसने आवाज़ लगाई।

इतनी देर में स्वर्णा ने जूस निकाल लिया था। गिलास प्रभा की तरफ बढ़ा कर बोली, "ममी को देकर आओ और उलटा-सीधा कुछ मत बोलना।"

प्रभा ने चुपचाप गिलास थाम लिया। इसका कोई भरोसा नहीं, पूरी चण्डीमाई है, ज़्यादा चीं-चपड़ की तो क्या जाने चल ही दे एकदम!

स्वर्णा को श्यामा से इतना लगाव क्यों है, अविजित सोच रहा था।

"एई प्रभा, जूस पिएगा?" स्वर्णा कह रही थी, "एक दिन कॉफी की जगह जूस पीकर देख न।"

"मुझे नहीं पीना।"

"देख तो पीकर। रंग साफ हो जाएगा तेरा। और देख—ज़्यादा गुस्सा करेगा

न तो हमारा माफ़िक काला पड़ जाएगा !" कहकर स्वर्णा हा-हा कर मज़े से हंस दी ।

माहौल हल्का होता देख, अविजित ने भी मदद की, "चल, तुझे कालेज में छोड़ता जाऊंगा," प्रभा से कहा, "होने दे देर ।"

कालेज के रास्ते में प्रभा ने कहा, "इतिहास की हमारी नई लेक्चरार आई हैं, मिस बनर्जी । इलाहाबाद से ही हैं । आपको जानती है । उनसे मिलते जाइए न ।"

वह चाह रही थी, सुबह के अपने व्यवहार का प्रतिकार कर ले ।

"इतिहास की ? मिस बनर्जी ?"

"हां । मिस काजल बनर्जी ।"

काजल । ओह ! पर मिस बनर्जी···शादी नहीं की···ताज्जुब है ।

"पर दफ़्तर···" उसने कहा ।

"साढ़े नौ ही तो बजे हैं । थोड़ी देरी भी हो गई तो क्या । आपका कोई बॉस तो है नहीं ।

अच्छा लगता है अविजित को यह सुनना, प्रभा जानती है ।

"बॉस नहीं है तो जूनियर्स तो हैं," अविजित ने कहा, "उनके सामने तो बिना किए बेइज़्ज़ती होती है, पर चल, दस मिनट को मिल लेते हैं । और सुन, आज शाम को जल्दी घर आ जाना । शुभा को रिहर्सल में जाना है, वह देर से आएगी और मैं भी चाहता हूं···और हां, ममी को खिजाना मत ।"

"ओ. के." प्रभा मान गई, "अब मिस बनर्जी ।"

काजल बनर्जी के कमरे का दरवाजा खटखटाकर प्रभा ने सगर्व परिचय कराया, "माई फ़ादर, मिस बनर्जी ।"

"अरे, अविजित, तुम ।"

"तो तुम्हीं हो," अविजित ने कहा ।

"अब यह न कहना कि बिल्कुल वैसी लगती हो जैसी कालेज में लगती थी ।"

"नहीं । पर वैसी जरूर लगती हो जैसा बीस साल बाद तुम्हें लगना चाहिए । मेरी तरह···"

"ना बाबा, तुम्हारी तरह नहीं," काजल ने टोका, "तुम्हारे तो सब बाल उड़ गए, अविजित !"

अविजित हंस पड़ा ।

"काट तो तुमने भी दिए काजल," उसने कहा, "कितने लम्बे बाल थे तुम्हारे ।"

"दोनों स्थितियों में अन्तर है । मैंने जान-बूझकर काटे हैं, तुम्हारे अनचाहे उड़ गए !" कहकर काजल मधुर स्वर में हंस दी पर··· रुकना पड़ा—अविजित ने साथ

नहीं दिया था।

मजाक-मजाक में कही बात से उसका चेहरा इस तरह गुम क्यों गया ?

"ठीक कहती हो काजल···" उसने कहा और चुप रह गया।

"तुमने शादी नहीं की," अगले क्षण उसके मुंह से निकला।

"की थी," काजल ने कहा।

"फिर···मिस बनर्जी ?"

काजल ने प्रभा की तरफ देखा; हंसकर बोली, "तुम्हारी बेटी के सामने कहूंगी तो कल तक पूरे कालेज में···"

"नहीं, मिस बनर्जी," प्रभा ने बाधा दी, "मैं नहीं कहूंगी किसी से···बल्कि मैं जाती हूं अब," कहती हुई वह कमरे से बाहर निकल गई।

हद हो गई यार ! बाहर आकर वह बुदबुदाई—कभी ऐसी भी कोई औरत मिलेगी जिसका पिताजी से इश्क न रहा हो। और एक हम हैं···

"फिर ?" अविजित ने सवाल पर वापिसी ली।

"डाइवोर्स ले लिया।"

"क्यों ?"

"बस···पटी नहीं।"

"बच्चे ?"

"एक है।"

"लड़की ?"

"नहीं, लड़का।"

"कहां है ?"

"हास्टल में।"

"तुम···उसके पास यही 'मिस बनर्जी' नाम लेकर जाती हो ?"

"मैं उसके पास नहीं जाती।"

"क्यों ?"

"उसके पिता उसे वह बहुत कुछ दे सकते हैं जो मैं नहीं दे सकती।" काजल का स्वर कटु हो आया।

"तुमने बच्चे को भी छोड़ दिया !" अविजित का स्वर अविश्वास और आतंक से सना हुआ था।

काजल ने पहली बार ध्यान से उसे देखा।

"होता है, अविजित," उसने कहा, "तुम इतना परेशान क्यों हो गए ?"

"कैसे होता है, काजल ?" अविजित ने कहा, "एक जिम्मेवारी लेकर छोड़

देना···तुम···"

"हो तुम पुरुष, अविजित !" काजल का चेहरा कठोर हो गया।

"क्या मतलब ?"

"आगे नहीं कहोगे, तुम पति और बच्चे को छोड़ सकीं, जरूर तुम्हारा चरित्र खराब है।"

"नहीं नहीं···"

"नहीं क्यों ? मेरा चरित्र खराब है अविजित, मेरे पति ने सिर्फ़ दूसरी शादी की है।"

"दूसरी शादी भी कर ली। तब तो···"

"कुछ नहीं किया जा सकता।" वाक्य पूरा करके काजल हंस पड़ी।

"तुम क्या हमारा पुनर्मिलन कराने जा रहे थे," उसने कहा, "समाज सुधारक हो ?"

"इसमें समाज-सुधारक की क्या बात···"

"नहीं, लगते तो नहीं समाज-सुधारक। बढ़िया सूट पहने हो। बाल उड़ने से तुम्हारे व्यक्तित्व में और निखार आ गया, अविजित। कर क्या रहे हो ?"

अविजित ने सुना और अनायास ही उसका हाथ पेन्ट की क्रीज़ जमाता हुआ कनपटी पर उगी बालों की इकलौती पट्टी को सहलाने लगा।

"करते क्या हो तुम ?" काजल को अपना सवाल दुहराना पड़ा।

"सिंघानिया ग्रुप में जनरल मैनेजर हूं।" उसने कहा।

"तुम ?"

अविजित हंस पड़ा, "क्यों ?" उसने कहा, "मैं मैनेजर जैसा नहीं दीखता ?"

"नहीं," काजल ने कहा, "मैंने सोचा था, तुम मिनिस्टर या गवर्नर जैसी कोई चीज़ होगे।"

"अरे···" अविजित हंसा पर हंसी में विषाद था।

"यूनिवर्सिटी के तुम्हारे भाषण मुझे अब तक याद हैं। तुम्हे याद हैं···वे सब मीटिंग, जब साइमन कमीशन भारत आया था। विजयलक्ष्मी के बाद तुम्हारा भाषण ? अहा, क्या बोले थे तुम ! अच्छा···तुम्हारा तो पॉलिटिक्स में जाने का पक्का इरादा था न···तुम्हारे पिताजी चाहते थे तुम आई. सी. एस. करो पर तुम्हें इजाजत नहीं मिली थी न ब्रिटिश सरकार से···"

"बहुत पुरानी बातें हैं, काजल।"

"अरे, वह दिन याद है···१९३१ का," काजल कहती गई, "जब तुम लोगों पर गोली चलाई जाने वाली थी···हैं ? हां, याद है न। सब लड़कों ने विदाई की चिट्ठियां लिखकर झोले में डाल दी थीं। एक पंक्ति बनाकर चुपचाप बैठ गए थे, गोली खाने की प्रतीक्षा में। नहीं, चुपचाप नहीं," सहसा काजल खिलखिलाकर हंस पड़ी, "तुम्हें चड्ढा याद है न ! बीच-बीच में उठकर कैसे चिल्ला पड़ता था—महात्मा गांधी जिन्दाबाद।

बाज़ी लड़के कुर्ता खींचकर बिठला देते—धर्मा चुप भी कर यार, गोली जब चलेगी, तब चलेगी, तुझे इतनी जल्दी क्या पड़ी है। मां मां, कितना रोई थी मैं उस दिन। तय कर लिया था सफ़ेद कपड़ा छोड़कर दूसरा नहीं पहनूंगी उम्र-भर। और तभी बग्घी में मोतीलाल नेहरू आ पहुंचे थे। साथ में कौन थे—महात्मा सुन्दरलाल न? दमे से मोतीलाल की आवाज़ बन्द थी। ज़ोर से बोल नहीं पा रहे थे। जो कहना होता, वे धीमे से कहते और महात्मा सुन्दरलाल उसे ज़ोर से दुहरा देते। 'किस उल्लू के पट्ठे ने इन मासूम बच्चों को यहां बिठला रखा है,' मोतीलाल ने कहा। महात्मा सुन्दरलाल ने गाली निकालकर वाक्य दुहरा दिया। मोतीलाल खीझ पड़े थे, 'जो मैं कह रहा हूं, वह कहो' और देर तक खांसते रहे थे। याद है अविजित, मोतीलाल की बग्घी कैसे बैरीकेड तोड़ती धड़ाधड़ आगे निकल गई थी। 'लड़को, उठो, घर जाओ', उन्होंने हुक्म दिया था। भीड़ बेकाबू हो आगे बढ़ आई थी। लड़के उठ गए थे। भीड़ के ज्वार के सामने अंग्रेज़ सार्जेण्ट की राइफ़ल भिश्ती की मशक-सी ठण्डी पड़ गई थी। याद है उसका मुंह, अविजित? ओह, तुम बच गए थे! अविजित, याद है, तुमने कहा था···"

"मैं चलूंगा अब!" अविजित सहमा उठ खड़ा हुआ।

भौचक काजल उसे देखती रह गई।

सैकड़ों बार यह कहानी अविजित खुद दोस्तों का मनोरंजन करने के लिए दुहरा चुका है। पर आज काजल के मुंह से तेईस साल बाद उसे सुनकर जाने कैसा चक्रवात घुमड़ उठा है मन में।

"अविजित···" काजल फुसफुसा कर रह गई।

"अच्छा···" अविजित ने कहा।

"नहीं। बतलाकर जाओ अविजित, क्यों छोड़ा यह सब?"

"ज़िन्दगी की ज़रूरतें···"

"पैसा?"

अविजित चुप रहा।

"सुना था, तुमने लखनऊ के बहुत ऊंचे घराने में शादी की है। माल-मत्ता नहीं मिला?"

"नहीं, ऊंचे घराने के ख़यालात भी ऊंचे निकले," अविजित ने कहा और हल्का महसूस कर हंस दिया।

उसके ससुर जज सिंघल साहब और दहेज! एक वकील के पास जूनियर पोस्टिंग के लिए सिफ़ारिश करवाने साथ लेकर गया था एक बार, तो सारे रास्ते दुहराते गए थे—बात यह है, अविजित, यह काम मैंने पहले कभी किया नहीं। [illegible] उसने कह दिया था—जब कभी नहीं किया तो अब भी न कीजिए। और वे [illegible] से लौट आए थे। याद करके वह फिर हंस दिया।

"तुम चाहते थे क्या?" उसने सुना काजल कुछ चकित भाव से पूछ [illegible]

"नहीं तो," अविजित ने वास्तविक आश्चर्य के साथ कहा, [illegible]

चाहता था।"

"श्यामा···तुम्हारी पत्नी ?"

"हां।"

"बहुत खूबसूरत है ?"

"बहुत।"

"ओह।"

"चलूं ?"

"एक बात और। झूठ मत बोलना, अविजित ! बीस साल से ऊपर बीत गए ···झूठ अब नहीं चाहिए···सच कहना अविजित !···उस दिन···तुमने झोले में मेरे नाम चिट्ठी डाली थी ?"

अविजित ठिठक गया। मुड़कर एक नज़र काजल को देखा। ठीक तो है, अब झूठ किसलिए ? और बीस साल पहले के झूठ पर कैसी शर्म। फिर भी उसका सिर झुक गया।

"नहीं काजल," उसने आवाज़ में मिठास भरकर कहा पर स्वर अपराधी बना रहा।

"तब ?"

"पिताजी के नाम।"

"और ?"

"बस।"

"बस ?"

"हां।"

"काजल···मैं···" अविजित की समझ में नहीं आया क्या कहे। झूठ की सफ़ाई में अब कौन-सा झूठ बोले, वह भी बीस साल पहले का झूठ।

"तुम जा रहे थे न ?" काजल ने कहा।

"फिर मिलोगी। आऊं कभी ?" अविजित ने कहा।

"बीस साल बाद ?" काजल ने कहा। और उसकी बेहद मीठी हंसी भी व्यंग्य की धार को कम न कर सकी।

बाहर आकर अविजित फाटक पर खड़ी अपनी गाड़ी में बैठ गया और···बैठा रहा···

यह क्या कर डाला काजल ने ? किस दुनिया में लाकर खड़ा कर दिया उसे ? यूनिवर्सिटी में दिये भाषण···सत्याग्रह···भारत छोड़ो···हिन्दुस्तान हमारा है··· स्वराज्य इज़ माई बर्थराइट···

पिताजी ने कहा था—अविजित तुम मेरे सबसे बड़े लड़के हो। सबसे मेधावी। आई. सी. एस. में आ जाओ, मेरी तमाम मुश्किलें हल हो जाएं। बाक़ी बच्चों को तुम सम्भाल लोगे। मैं ग़रीब आदमी, ब्लड-प्रेशर का मरीज़···कौन जाने कितने दिन और जिऊँ··· तुम्हारी माँ की ज़िम्मेवारी भी किस पर छोड़ूँगा, तुम्हारे सिवा··· ये दोनों लड़के अभी छोटे हैं···एक तुम ही हो···

अविजित की माँ उसकी अपनी माँ नहीं है इसलिए उससे कुल पाँच-छह साल बड़ी हैं। अविजित उस उम्र पर पहुँच चुका जब उनकी ज़िम्मेवारी उठा सके। उनके अपने बच्चे छोटे हैं···ठीक है, अविजित ने कब ज़िम्मेवारियों से कन्नी काटी···

"ठीक है," उसने कहा था, "आप बेफ़िक्र रहें। जिस-जिस की ज़िम्मेवारी मुझ पर पड़ेगी, मैं उठाऊँगा।"

'आई. सी. एस. के इम्तहान के लिए बैठोगे ?"

"बैठ जाऊँगा।"

"तो स्टूडेन्ट्स यूनियन से इस्तीफ़ा दे दो।"

"क्यों ?"

"तुम जिस तरह के भाषण देते हो, उन्हें बिना छोड़े सरकार तुम्हे इम्तिहान में बैठने की इजाज़त कैसे दे सकती है ?"

"पर यूनियन से इस्तीफा देने से क्या होगा, पिताजी ? मैं सिर्फ भाषण तो नहीं देता, पिकेटिंग, जुलूस, सभी में हिस्सा लेता हूँ।"

"बम भी फेंकते हो ?"

"नहीं, मैं गांधी जी के साथ हूं।"

"कलेक्टर साब ठीक कहते थे," पिता ने लम्बी सांस भर कर कहा था। "तुम क्या ख़ाक आई सी एस के लिए बैठोगे। तुम्हारा नाम ग़द्दारों की सूची में आ चुका।"

"कलेक्टर साब से कहिए मेरा काट कर अपना नाम लिख लें, सुविधा होगी, हमें नहीं लिखना पड़ेगा।"

"अविजित तुम जानते हो, मैं सरकारी नौकर हूं। तुम्हारी इन हरकतों से मेरी नौकरी जा सकती है।''

"पिताजी, आप जानते हैं, चन्द्रशेखर आज़ाद पर पुलिस ने मेरी आंखों के सामने गोली चलाई थी।"

"तो ? उसके लिए तुम ज़िम्मेवार हो ?"

"नहीं, आप भी हैं," अविजित ने कह डाला था।

"अविजित, मैं एक मामूली क्लर्क हूं। जो हुक्म मिलता है बजा लाता हूं। अपनी तरफ़ से नहीं सोचता···"

"मैं भी तो, पिताजी, जो हुक्म मिलता है, बजा लाता हूं।''

"किसका हुक्म ?"

"अपनी आत्मा का।"

"तुम्हारी कांशन्स कहती है कि बूढ़े बाप को भूखा मार दो।"

अविजित धीमे से हंस दिया था।

"पहली बात, आप बूढ़े नहीं हैं," उसने कहा था, "दूसरी, भूखे आप नहीं मरेंगे। मैंने कहा न, जो भी जिम्मेवारी मुझ पर आएगी, मैं उठा लूंगा।"

"कैसे ? तुम तो जेल जा कर बैठ जाओगे, हम लोग···"

"बैठूंगा नहीं, भाग आऊंगा।"

"उससे हमारा क्या भला होगा," पिताजी का गुस्सा कम नहीं हुआ था।

"पिताजी, आपने भाई का कर्ज़ चुकाने के लिए अपनी पूरी ज़मींदारी बेच डाली। मामूली क्लर्की के दम पर बीवी-बच्चों को पाला, क्यों ?"

"क्या मतलब ? ज़मींदारी मेरी नहीं, हम दोनों भाइयों की थी। भाईसाहब का कर्ज़ मेरा कर्ज़ था।"

"तो अपना हिस्सा अलग कर लेते। बाक़ी की नीलाम हो जाने देते। आधी जायदाद बच जाती तो ताऊ जी को दुबारा हिस्सेदार बनाया जा सकता था।"

"यह तुम कह रहे हो, अविजित ! तुम भी अनित्य की तरह बोलने लगे। वह ···वह···निकम्मा···!"

"अनित्य का पूछना जायज़ है—उसके हिसाब से। आप का जवाब क्या है ?"

"अपनी इज़्ज़त को बाज़ार में नीलाम नहीं किया जाता ! साझेदारी के कुछ असूल होते हैं !"

"वही तो। मैंने भी साझेदारी कर रखी है—गांधीजी और अपने साथियों के साथ। अपना हिस्सा अलग से कैसे बेच खाऊं ?"

फिर भी अविजित ने आई. सी. एस. की परीक्षा दी थी। सफल भी हुआ था। हां, इन्टरव्यू देने विलायत जाने का वक़्त आया तो सरकार की मनाही आ गई थी। पिता, सरकारी कारिंदे की हैसियत से गिड़गिड़ाये थे और कलेक्टर साब की तरफ़ से उदार ऑफ़र आया था—लिख कर दो कि सरकार के विरुद्ध कार्रवाइयों में हिस्सा नहीं लोगे तो इजाज़त मिल जाएगी। अविजित ने कागज़ फाड़ कर फेंक दिया था और पिता को तसल्ली दी थी—आपको पता तो चल गया, आपका बेटा आई. सी. एस. में आने लायक़ है, और क्या चाहिए। पिता जी खुश नहीं हो सके थे। हां, उसका अपना अहं ज़रूर संतुष्ट हुआ था। देश की सबसे कठिन परीक्षा पास की है उसने···बाद में सुनाने के लिए बढ़िया कहानी मिल गई थी।

दो-एक अध्याय और भी जुड़े थे। दो साल की जेल-यात्रा भी कर आया था वह···

स्वतंत्रता मिलने के बाद नई सरकार बनी तो दोस्तों ने राय दी कि उसे अपने

'महान बलिदान' का मुआवज़ा वसूल करना चाहिए। एम. पी. न सही, एम. एल. ए. ही बने ताकि कुछ उनका भी भला हो। एक बार मैदान में उतर गया तो...

क्यों नहीं कर डाला प्रविजित ने ? कितना अरसा तो हो गया जब से बड़ी-बड़ी बातें उसे बड़ी-बड़ी बातें लगने लगी हैं, कांग्रेस की ज़िम्मेवारियां नहीं। फिर...

शहादत इतनी सस्ती नहीं होनी चाहिए !

अनित्य !

हां, अनित्य कहता था, लगता है एक दिन शहीदों का भार ही इस मुल्क को ले डूबेगा; पुलिस की दो लाठी खाईं और शहीदों की फ़ेहरिस्त में आ गए, शहादत इतनी सस्ती नहीं होनी चाहिए...

प्रविजित जानता है !

हमेशा से जानता रहा है, उसका वह महान बलिदान कितना...

जब तक अनित्य है...

यह कब हुआ, अनित्य ? पहले मैं पूछता था, मैं क्यों नहीं; अब पूछने लगा हूं, मैं ही क्यों ?

मैं-क्यों, मैं क्यों, हार्न बजाता ट्रक धड़धड़ाता हुआ खड़ी गाड़ी के बराबर से निकल गया। शोर ने पकड़ कर झिंझोड़ दिया। चौंक कर प्रविजित ने सिर ऊपर उठाया कि सामने कालेज की दीवाल-घड़ी ने कनपटी पर दस्तक दी। दस बार।

दफ़्तर ! प्रविजित ने गाड़ी स्टार्ट कर दी।

दफ़्तर...व्यापार...पैसा...इससे तो मैं आई. सी. एस. ही हो जाता, वही क्या बुरा था...

मन चाहे जहां मंडरा रहा हो, पांव खुद-ब-खुद दफ़्तर की तरफ़ उठ जाते हैं। पांव नहीं गाड़ी। बड़े लोग भटकते भी मशीन पर चढ़ कर हैं, कोई मंज़िल के रास्ते में भटकता है, कोई मंज़िल पर पहुंच कर। पहली भटकन में छुटकारे की उम्मीद की कशिश है, दूसरी में सिर्फ़ गोल-गोल घूमती भटकन।

अनित्य वाक़ई खुशकिस्मत है !

अनित्य घर का निकम्मा लड़का था। प्रविजित की मां ही उसकी मां थी। पर वह प्रविजित से चार साल छोटा था; इतना बड़ा नहीं कि नई मां की ज़िम्मेवारी ले और इतना छोटा नहीं कि उनके मासूम बच्चों की तरह ज़िम्मेवारी बने। उसने बीच का रास्ता पकड़ लिया था; ज़िम्मेवारी बनने और लेने, दोनों से कट गया था। वह कहां रहता है, ठिकाना नहीं है; क्या करता है, किसी को जानकारी नहीं है। वह

कहता है, किसी शहर में वह सात दिन से ज़्यादा नहीं रह सकता। हां, वह झूठ बोलता है। ऐसे भी मौक़े आए हैं जब लगातार छह महीने वह एक ही शहर में रहा है पर बहुत कम। यूं सरधने स्कूल में मास्टर रहा, मेरठ में 'शमा' के लिए गुमनाम शायरों की गज़लें हेर-फेर करके लिखीं, बम्बई में रेस के घोड़ों का 'बुकी' बना तो दिल्ली में मंदिर के आगे ज्योतिष की पोथी सम्भाली। लखनऊ में किन्हीं गोहरजान की इनायत से चना-ज़ोर गरम बेचने का सामान मुहैया किया और हज़रतगंज में कई हफ़्ते बेचा। नुकसान हो गया। हाथ एकदम खाली हो गया तो अविजित के पास आ कर पड़ रहा पर सात दिन नहीं तो दो-एक महीने से ज़्यादा भी कभी नहीं। अनित्य निकम्मा था, आवारा था और अविजित को बेहद प्यारा था। था क्या, है। अनित्य जानता है अविजित उसे प्यार करता है और जम कर उसका फ़ायदा उठाता है। अविजित के अलावा वह सिर्फ़ अज-नबियों का फ़ायदा उठाया करता है।

अनित्य, अविजित ने याद किया, अगर आ सके कुछ दिनों के लिए, घर भी··· ज़िन्दगी आ जाए···लिखेगा उसे···पिछली बार उसका खत आया तो एक सतर—ज़िन्दगी हसीन तवायफ़ की बूढ़ी मां है—अविजित समझ गया था, अनित्य फिर जगह बदलेगा। वह खुशकिस्मत है, नहीं जानता हर हसीन तवायफ़ खुद एक बूढ़ी मां है।

अनित्य ने शादी नहीं की। बी. ए. पास किया तो पिताजी ने सुझाव रखा कि उसकी शादी कर दी जाए। पांव में रस्सी पड़ेगी तो खुद खूंटे से बंध जाएगा। ताऊजी ने अक्ल दी और पिताजी के साथ अनित्य को घेर लिया था···

"ठीक है," अनित्य ने प्रस्ताव सुन कर कहा था, "आप में से कौन मुझे दो सौ रुपया देने को तैयार है ?"

"दो सौ रुपये ?" दोनों हक्के-बक्के रह गए थे।

"जी हां, दो सौ फ़ी महीना। बन्दोबस्त कर दीजिए, मैं शादी के लिए तैयार हूं। बल्कि लड़की ढूंढ़ने की ज़हमत भी आपको नहीं उठानी पड़ेगी। मैंने देख रखी है। लखनऊ में। मुसलमान है, बेहद खूबसूरत···"

बेशऊर, बदचलन, बदतमीज़, आवारा की चीखो-पुकार के नीचे तमाम गुफ़्तगू दब गई थी और फिर कभी उसके सामने किसी ने शादी का नाम नहीं लिया था। अनित्य, प्यार से लबालब ओठों से अविजित ने याद किया और देखा···सामने रीगल बिल्डिंग की शानदार इमारत है—यानी उसका दफ़्तर !

अविजित दफ़्तर के अपने कमरे में पहुंच गया। चपरासी ने उठ कर सलाम ठोंका। वह अपनी मेज़ की तरफ बढ़ा और गोल आरामदेह रिवाल्विंग कुर्सी में क़ैद हो गया।

अनित्य, उसने फिर एक बार याद किया, बुलाना है उसे जरूर; पर हाथ उसका

घण्टी पर पहुंच चुका था, अपने सैक्रेटरी भण्डारी को बुलाने के लिए।

"सर !" भण्डारी सामने खड़ा था।

"स्टेट बैंक के लोन की फ़ाइल लाओ। फ़ाइनेन्स कमीशन में अपाइंटमेंट तय हुआ? कलकत्ते सिंघानिया जी को ट्रंक-काल लगाओ। महाजन को रिमाइंडर भेजो, पेमेंट अभी तक नहीं हुआ। आज रिमाइंडर भेजो। परसों आदमी भेज देना—सुभ खुद चले जाना—पेमेन्ट फ़ौरन होना चाहिए। पवन कुमार का ट्रांसफ़र आर्डर गया था या नहीं? वह कानपुर में बैठा-बैठा क्या कर रहा है? मुझे उसकी जरूरत यहां है। सतना को बुलाओ—सेल्स टैक्स के केस की डेट आज है···"

"सर !" भण्डारी ने कहा।

"सर !" सतना ने कहा।

"सर, कुमार रिपोर्टिंग !" पवन कुमार ने कहा।

"भण्डारी, खिड़की का पर्दा खींच दो, धूप तेज है।" अविजित ने कहा।

जेल की खिड़की से आसमान और हरियाली देखने के लिए एक भटकता हुआ मन चाहिए जो अविजित के पास नहीं है। पहले ही 'सर' ने उसे कनपटी की नस में छिप जाने पर मजबूर कर दिया था। शरीर चाभी भरे खिलौने की तरह कस गया था। दूसरे-तीसरे 'सर' ने उसे दीवाल-घड़ी बना डाला था। अब पांच बजे तक वह निरंतर घण्टों और मिनटों में बंधा दौड़ लगाएगा और पांच बजने पर···हां, पांच बजने पर मन अगर फिर मैदान में कूद आया तो···अनित्य को याद किया जा सकता है।

३

दफ्तर में छह बज गए। आधा दिन तो दिल्ली और कलकत्ता के बीच सूत्र स्थापित करने में ही निकल गया। सिंघानिया जी बंकुरा में नई फरटिलाइजर फैक्ट्री क्या लगा रहे हैं, श्रीगणेश होने में ही आधा खराब होने लगा है। लाइसेंस के लिए अप्लाई किया हुआ है। पता नहीं क्या है कि लाइसेंस मिलते-मिलते टल जाता है। नीचे की सीढ़ियां तय हो चुकीं पर बात बनी नहीं। अब सिंघानिया जी को खुद उद्योगमंत्री से अपाइंटमेंट चाहिए। अविजित को दिलवाना है और जल्दी-से-जल्दी।

"आखिरी फ़ाइल पर दस्तखत करके, अविजित ने कुर्सी को घुमा कर मेज के

दायरे से बाहर निकाल लिया। लम्बी टांगें सीधी करके फैला लीं, सिर पीछे टिका कर सिगरेट सुलगाई और कहा, "तो···भण्डारी···" और उसके चेहरे पर एक बेहद आत्मीय मुस्कराहट खेल गई।

"सर, चाय?" भण्डारी ने पूछा।

"नहीं," उसने हाथ के इशारे से मना कर दिया।

भण्डारी समझ गया, साहब आज सीधा घर नहीं जा रहे। घर जाते हैं तो दफ़्तर से चाय पी कर जाते हैं।

आज···घर नहीं आऊंगा अभी।

चाय···सिगरेट···फैले पांव···सुकून और सुकूत के चन्द लम्हे···जहां भी मिलें। कहीं भी मिल सकते हैं। घर के सिवा। तब···दफ़्तर ही क्या बुरा है? पर आज दफ़्तर नहीं···आज!

"यह फ़ाइल," उसने कहा, "आज ही उद्योग-मंत्रालय पहुंचानी है।"

"मैं अभी ले जाता हूं, साब," भण्डारी ने कहा।

"तुम्हारी बेटी ठीक है अब?"

"जी हां।"

"बुखार उतर गया?"

"जी।"

"कब उतरा?"

"परसों उतर गया था।"

"दवा बन्द कर दी?"

"नहीं, अभी चल रही है।"

"एहतियात रखना। टाइफ़ाइड में रिलाप्स का डर रहता है।"

"जी।"

"तुम्हारा घर जाना ज़रूरी हो तो···"

"जी नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है।"

"फिर भी···बच्ची बीमार है, घर जाना चाहिए, ऐसा करना, टैक्सी ले लेना, घर होते हुए चले जाना। बस, आज किसी वक़्त पहुंचाना ज़रूरी है···"

"मैं कर लूंगा साब, आप फ़िक्र मत कीजिए।"

"घर से फ़ोन आए तो कह देना, देर हो जाएगी।"

"जी।"

भण्डारी से कुछ और कहने की ज़रूरत नहीं है। फ़ोन न भी आया तो वह खुद फ़ोन करके कह देगा—साब को ज़रूरी मीटिंग में जाना पड़ा, देर हो जाएगी। कोई काम हो तो बतलाए···

"अच्छा···तो···" अविजित ने सिगरेट ऐश-ट्रे में रगड़ कर बुझाई और इत्मीनान से उठ खड़ा हुआ।

"तुम्हारी मां को चश्मा मिल गया ?"

"चश्मा ?"

"हां, आपरेशन के बाद ?"

"ओह—हां। जी, मिल गया।"

डेढ़ महीना हुआ, भण्डारी की मां की आंख का मोतियाबिन्द का आपरेशन हुआ है। चार दिन पहले चश्मा मिलना था। भण्डारी को ध्यान नहीं है, अविजित को याद है।

"ठीक बैठ गया ?"

"जी।"

भण्डारी को शाम का यह वक्त बहुत अच्छा लगता है। काम खत्म होने पर उसका यह बेहद नफ़ीस बॉस सिर हिलाकर एकदम चल नहीं देता। दस-पांच मिनट बैठकर एक इंसान और दोस्त की तरह घर का हाल-चाल, दुःख-तकलीफ़ पूछकर ही उठता है।

भण्डारी उसे रोज़ देखता है। अविजित को सुन्दर नहीं कहा जा सकता। फिर भी हर शाम वह उसके चेहरे पर मुस्कराहट आने का इन्तज़ार करता है। ग्रेनाइट में प्राण भर देनेवाली अपूर्व चीज़ है। खुलकर मुस्करा-भर देने से किसी के चेहरे पर इतना फ़र्क आ सकता है, यकीन करना मुश्किल है। लगता है यह आदमी कुछ और होने जा रहा था पर''' न जाने क्यों और कैसे हो गया बिल्कुल कुछ और। पर अभी भी '''कौन जाने'''एक दिन ऐसा कुछ हो गुज़रे कि यह वही बन जाए जो बनने जा रहा था; और यह मुस्कराहट हमेशा के लिए उसके चेहरे पर खेलने लगे, जिसे देखकर शरीर अनजाने ही पुलक से भर उठता है।

हंसी भी आती है भण्डारी को अपने सोच पर। ऐसी भी क्या भावुकता ! कभी-कभी अपने साथियों से कहता भी है, "शुक्र है साब की सेक्रेटरी कोई औरत नहीं है वरना'''"

दफ़्तर की सीढ़ियां उतरकर अविजित गाड़ी पर पहुंचा। अगली सीट पर बैठकर चाबी लगा तो दी पर फ़ौरन घुमाई नहीं। अपनी तरफ़ का शीशा नीचे घुमाया, भीतर घुस आए ताज़ी हवा के झोंके को सांस में भरा और बदन को ढीला छोड़ दिया। आंखें खुद-ब-खुद मुंद गईं'''गाड़ी को पार्किंग लॉट से निकाल कर दाएं घुमाना है'''फिर सीधी सपाट सड़क है—दो मील लम्बी'''एक मोड़—बाएं और'''चौमेक मकानों की कतार के बीच टिमटिमाता रंजना का छोटा-सा घर !

रंजना ! नख़लिस्तान में बह रहा ठंडे पानी का सोता'''रंजना'''

अविजित ने आंखें खोलीं, चाबी घुमाई और गाड़ी स्टार्ट कर दी'''गाड़ी धीमे-से आगे रेंगी। घुमा-फिराकर अहाते से बाहर निकालने के लिए, अविजित ने गर्दन खिड़की

से बाहर निकालकर आस-पास का जायज़ा लिया और···रेत के बगूले की तरह हड़बड़ा कर, रंजना की आकृति को परे धकेल, संगीता भीतर घुस आई !

ग्यारह बरस पहले की संगीता !

"तुम डाक्टरी करना चाहती हो ?" अविजित ने उससे पूछा था।

"जी," उसने सिर झुकाए रखा था।

"कर सकोगी ?"

झटके से संगीता ने सिर ऊपर उठाया था। आंखें अविजित की आंखों से मिली थीं। इतनी काली आंखें ! उसने सोचा ही था कि स्याह पुतलियों से उठी लपट उसे झुलसा गई थी।

"कोशिश करूंगी," संगीता ने कहा था पर अविजित ने साफ़ सुना था—क्यों नहीं कर सकूंगी ? शक करने की हिम्मत कैसे हुई आपकी ?

संगीता ने सिर दुबारा झुका लिया था। दुबली देह पर भारी वक्ष···कृश मुख पर वे असाधारण ज़हरीली जलती आंखें···न कह कर बहुत कुछ कह जाना···अविजित विचलित हो उठा था।

पास आ कर उसने कहा था, "परेशान मत हो। लेडी हार्डिंग कालेज में दाखिला मिल जाएगा।"

"शुक्रिया।"

"सब ठीक हो जाएगा," उसने फिर कहा था।

"शुक्रिया।"

न जाने क्यों अविजित कुछ और सुनने को बेक़रार हो उठा था।

अपना हाथ उसके कंधे पर रखकर कह गया था, "तुम···बस, सब-कुछ मुझ पर छोड़ दो। मैं तुम्हारी पूरी जिम्मेवारी लेता हूं।"

संगीता ने सिर ऊपर उठाया था। एक बार फिर उसकी आंखें अविजित की आंखों से मिली थीं। न बहकने की कोशिश में काली पुतलियां फैली हुई थी, ओठों पर वक्र मुस्कराहट खेल रही थी फिर भी चेहरे पर विश्वास की हल्की किरण फूटती नज़र आ रही थी। संगीता की उम्र ही क्या थी—सोलह साल। सोलह साल उम्र ही ऐसी है कि विश्वास-अविश्वास की देहरी पर मंडराती रहे।

पर अविजित तो बत्तीस वर्ष का था।

संगीता उसके पास खिसक आई। आज की संगीता।

चन्दे से पढ़ी लड़कियां अपने प्रेमी के नाम के आगे भी 'जी' लगाती हैं, उसने कहा और···

मुझे माफ़ करो, संगीता, तुम जाओ···प्लीज़ अब जाओ।

ठीक है, आपकी बात मैंने कब टाली है। संगीता मुस्करा रही है। चेहरे पर दर्द नहीं है। वाक़ई वह चली जाएगी। पर उससे क्या होगा। विश्वास अविजित का टूटा है। बराबर से हट भी गई तो पिछली सीट पर उसका अहसास बना रहेगा।

पास ही मोटर का हार्न ज़ोर से बज उठा। पीछे से आ रही कितनी ही गाड़ियां उसे ओवरटेक करके आगे निकल गईं। अविजित ने चाहा वह भी अपनी रफ़्तार बढ़ा ले। पर···उस दो मील लम्बी सीधी सपाट सड़क पर रेंगती उसकी गाड़ी परवश घिसटने से भी इन्कार करने लगी। आखिर उसने ब्रेक लगाया और एक किनारे करके गाड़ी खड़ी कर दी।

संगीता उसके आस-पास मंडराती रही। कभी सीट पर बगल में, कभी पीछे बिफली हंसी हंसती हुई, कभी रियर-व्यू-मिरर में अपनी काली पुतलियों का ज़हर घोलती हुई, कभी कमसिन-सी विश्वास-अविश्वास के बीच लुढ़कती हुई···यही झेलना तो सबसे मुश्किल हो रहा था।

संगीता को पहली बार अनिरुद्ध उसके घर लाया था। आज, अभी कुछ देर पहले ही तो उसने अनिरुद्ध को बेपनाह मोहब्बत के साथ याद किया था। पर···उस सब में अनिरुद्ध का क़सूर भी क्या था···

एक प्रौढ़ औरत और एक नवयौवना को लेकर अनिरुद्ध उसके घर आया था।

"कौन हैं ये लोग?" अविजित ने अलग ले जाकर पूछा था।

"आप नहीं जानते? साला अपने पण्डित यज्ञदत्त शर्मा की माशूका हैं।"

"क्या!"

"क्यों, आप तो जानते ही होंगे कि शर्माजी···"

"हां-हां," अविजित ने बात काट दी थी।

अविजित क्या, सभी जानते हैं कि मेरठ के मशहूर रईस पंडित यज्ञदत्त शर्मा को दो ही शौक़ हैं—माशूक़ा रखना और आज़ादी की लड़ाई लड़ना।

"तुम कैसे जानते हो?" उसने पूछा।

"अब भाई साहब, लखनऊ की फ़िज़ा ही कुछ ऐसी है···" अनिरुद्ध ने शुरू किया तो अविजित ने फिर टोक दिया, "हां-हां, रहने दो।"

वह नहीं चाहता था, अनिरुद्ध उसे बतलाए—हुआ यह कि पिछली बार गोहर-बाई पीछे ही पड़ गई, बोली, क्या इन चिनगारियों के पीछे भटकते हो, जलना है तो शोले पर गिरो, मैंने पूछा, कौन है तो बोलीं, अपने पंडित शर्माजी की माशूक़ा। उम्र हो गई पर हुस्न! और आवाज़! एक ज़माना था कि ग़ज़ल शुरू की नहीं कि चूड़ियां चटख गईं। पर क्या बतलाएं मुजरे से नज़र फेरी तो फेर ही ली···तुम लोगों की सीता-सावित्री से कम नहीं हैं। पण्डितजी का हाथ पकड़ लिया सो पकड़ लिया···मैंने सोचा

एक बार दीदार कर ही लिया जाए···

"लड़की कौन है ?" अविजित ने पूछा।

"पंडितजी की बेटी।"

"झूठ ! नामुमकिन !"

"अच्छा जाने दीजिए। पंडितजी की नहीं, सिर्फ़ उनकी माशूक़ा की बेटी है।"

अनित्य को याद आ गया था कि जब पंडितजी विलायत गए हुए थे तो उनकी ग़ैरमौजूदगी में उनकी बीवी एक बेटी की मां बन गई थी। शर्माजी ने उस तक को बेसहारा नहीं छोड़ा···उम्र होने पर ठीक-ठाक लड़का देखकर ब्याह कर दिया था। बीवी को अलबत्ता अलग कर दिया था पर बेसहारा उसे भी नहीं छोड़ा। पच्चीस रुपया माहवार बराबर उसकी मौत तक उसे मिलता रहा। यह उनकी बेटी होती तो···

"साला हिप्पोक्रेट," वह बुदबुदाया।

अविजित समझ गया था वह क्या सोच रहा है।

"तो इन्हें यहां क्यों ले आए ?" उसने पूछा।

"फिर कहां ले जाऊं ? दिल्ली में आपके सिवा मेरा है कौन ?"

"ये लोग तुम्हारे साथ हैं ?"

"जी। फ़िलहाल तो है।"

"क्यों, तुम्हारा इनसे क्या रिश्ता है ?"

"रिश्ता है तो कोई नहीं। खाला बनाना चाहती हैं, मैं बिगाड़ना चाहता हूं।"

"क्या मतलब ?"

"मैं शादी नहीं करना चाहता, भाई साहब," अनित्य ने मासूमियत से कहा।

"तुमने इस लड़की से शादी के लिए कहा था ?"

"बिल्कुल नहीं।"

"वह तुमसे शादी करना चाहती है ?"

"अजी नहीं, वह तो डाक्टरी करना चाहती है।"

"डाक्टरी ?"

"मतलब डाक्टरी पढ़ना चाहती है।"

"मैट्रिक, प्री-मैडिकल किया हुआ है क्या ?"

"जी हां।"

"पर तुमसे रिश्ता कैसे जुड़ गया ?" अविजित वापिस बात पर लौटा।

"अब क्या बतलाऊं, दो-चार दिन उनके घर रह क्या लिया, खाला को बेटी का भविष्य सुधरता नज़र आने लगा। ज़रा सोचिए, मुझसे शादी करके किसी का भविष्य भला क्या सुधरेगा।"

"तुम उनके घर में रहे क्यों ?"

"अब कहीं तो रहना था न लखनऊ में ?"

अविजित समझ गया और जिरह बेकार है। उसने दूसरा मोर्चा संभाला।

"ये भला क्यों आई लखनऊ से ?"

"बात यह है," अनित्य सहसा गम्भीर हो गया, "लड़की बेचारी काफी भली है। बनी थी तो ठीक था पढ़-लिख भी ली। पर अब···दलाल लोग इसे छोड़ेंगे नहीं। रमई दादा तो समझिए···"

"ठीक है," अविजित ने विरक्त भाव से कहा, "रहने दो। अपने दोस्तों के नाम गिनाने की जरूरत नहीं है।"

"मेरे दोस्त का नाम सुलेमान है," अनित्य बोला, "रमई दादा तो समझिए मेरा दुश्मन है। जानते हैं एक दिन भरे बाजार में उसने गौहरबाई पर ही···और गौहरबाई मेरी मां की तरह है।"

"क्या !"

"जी हां।"

"गौहरबाई···तुम्हारी मां !" अविजित का चेहरा लाल हो गया।

"आपको अपनी मां याद है ?" अनित्य ने पूछा।

"नहीं।"

"फिर गौहरबाई में ही क्या बुराई है ?"

"अनित्य-अनित्य !" सहसा अविजित का गला भर्रा गया।

"अजी छोड़िए, खाक डालिए गौहरबाई पर मसला सामने संगीता का है।"

"लड़की का नाम संगीता है ?"

"जी हां।"

"और खाला का ?"

"पारिजात।"

"क्या ?" अविजित ने अविश्वास की हुंकार-सी भरी।

"दरअसल नाम तो इनका है चमेली बाई। पर लखनऊ से दिल्ली को रवाना हुई तो मैंने बदलकर पारिजात रख दिया। ज्यादा इज्जतदार है।"

"पर···पारिजात ?" अविजित जोर से हंस दिया, "यह नाम तुम्हें सूझा कैसे ?"

"कामदेव के पचशर का एक पुष्प है," अनित्य ने अतिरिक्त गम्भीरता से कहा।

"इतनी हिन्दी तू कबसे बोलने लगा," अविजित ठठाकर हंस पड़ा।

"क्यों, अपने स्कूल में मैं हिन्दी ही तो पढ़ाता था।"

"हिन्दी ? तू ! तुझे हिन्दी आती है ?"

"नहीं।"

"फिर कैसे पढ़ाता था ?"

"मास्टरी का गुर मैं आपको बतलाऊं, भाई साहब। बेधड़क क्लास में घुस

जाइए। दो-चार नामाक़ूल ऐसे ज़रूर मिल जाएंगे जो पहले से किताब घोंट कर आए होंगे। उनकी मदद से आप जो चाहें पढ़ा सकते है, बल्कि पढ़ाते-पढ़ाते थोड़ा-बहुत सीख भी सकते हैं।"

अविजित हंसता रहा।

"क्यों, मास्टर उगरसेन भी तो आपकी मदद से ही पढ़ाया करते थे अंग्रेज़ी, याद है?"

इस बार अविजित ने ज़ोरदार ठहाका लगाया।

"मसला फिर रह गया···" अनित्य ने कहा।

"ये लोग पंडित शर्मा के पास क्यों नहीं जातीं?"

"शर्मा जी तो जेल में हैं।"

"ओह, हां। फिर भी कुछ इन्तज़ाम वे कर सकते हैं। कहो तो मैं उनसे मिलूं।"

"कोई फ़ायदा नहीं है। मैं मेरठ होकर आया हूं। शर्मा जी की हालत खराब है।"

"फिर भी···"

"जिगर का दर्द है, पीते बहुत थे···" अनित्य ने आराम से कहा।

"ठीक है।" अविजित ने टोका।

"ठीक तो है," अनित्य बोला।

"उनके घर पर···" अविजित ने बात का रुख बदला।

"घर वे ज़रूर आएंगे। जैसे ही ब्रिटिश सरकार को पता चलेगा कि उनके बचने की कोई उम्मीद नहीं है, फ़ौरन शोर-शराबे के साथ उन्हें रिहा कर दिया जाएगा। पर फ़िलहाल घर पर दोनों लड़के कब्ज़ा जमाए बैठे हैं, इन लोगों को पास भी नहीं फटकने देंगे।"

"पर इनका जो जायज़ हक़ है···"

"जायज़?" अनित्य हंस पड़ा, "यहां तो लड़की तक···"

"छोड़ो, करना क्या है, वह बतलाओ," अविजित ने बात काट दी।

"संगीता को मेडिकल कालेज में दाखिला दिलवा दीजिए, खाला लखनऊ लौट जाएंगी।"

"यहां रहेगी कहां?"

"हॉस्टल में। फ़ीस के लिए चंदा कर लेंगे।"

"कौन देगा?"

"काफ़ी यार दोस्त हैं।"

"कौन?"

"एक तो आप ही हैं।"

"और?"

"और···मेरी तरफ़ से भी आप दे दीजिएगा।"

अविजित हंस दिया।

"ठीक है," उसने कहा, "पर्दे का इन्तज़ाम मैं कर लूंगा। पर इस 'पारिजात' को लेकर जाओ यहां से।"

"लखनऊ का टिकट कटा देते हैं, चली जाएंगी।"

"नहीं, ऐसा करो, मेरठ चले जाओ। मैं देखता हूं, शर्माजी से जेल में मिलने का कोई इन्तज़ाम हो सकता हो तो···वे ज़रूर कुछ इनका बन्दोबस्त कर देंगे।"

"हां, हैं तो दरियादिल इंसान! पर भाई साहब उनकी क्या एक ही माशूका है?"

"पता नहीं।"

"एक बात है, ये आज़ादी की लड़ाई लड़ने वाले तमाम लोग इतने आशिक़-मिज़ाज क्यों हैं? जब कि गांधीजी बराबर ब्रह्मचर्य का पाठ पढ़ाया करते हैं।"

अविजित चुका नहीं था।

"तुम तो गांधीजी को मान रहे हो," उसने कहा था।

अनिरुद्ध शर्मिन्दा नहीं हुआ था।

"अजी तोबा कीजिए," उसने कहा, "लखनऊ की तो कुछ फ़िज़ा ही ऐसी है··"

अविजित हंस दिया था और हंसते-हंसते ही बाहर संगीता के पास चला आया था। कोई बुरी भावना नहीं थी उसके मन में। सच, वह संगीता की मदद करना चाहता था। एक ग़रीब, मज़लूम लड़की समझ कर। पर संगीता···ग़रीब लड़की कहकर उसे स्वीकारने या नकारने का सवाल···

"तुम डाक्टरी पढ़ना चाहती हो?" मददगार की सगर्व अनुकम्पा के साथ ही पूछा था उसने।

पर संगीता·· वह चुनौती का सामना कर रही थी, अनुकम्पा का नहीं। और अविजित आख़िर पुरुष था!

हो तुम पुरुष, अविजित, आज ही तो काजल ने कहा था।

कोशिश करके वह एक फीकी-सी हंसी हंसा, पर नहीं, अपने को धोखा क्या देना। अनिरुद्ध की तरह वह ख़ुद पर नहीं हंस सकता। अनिरुद्ध हंस सकता है, बिला शर्म; न ख़ुद पर भरोसा है, न दूसरों का विश्वास जीतने की कोशिश करता है। पर अविजित···दूसरों के साथ-साथ अपना भी ख़ुद पर विश्वास टूट जाए तो···

और जो हो, आज रंजना के घर नहीं जाया जा सकता।

नख़लिस्तान दीख रहा है, सिर्फ़ इसीलिए हाथ बढ़ाकर उसकी तरफ़ भागा नहीं जाता। गहरी प्यास के बावजूद कोई अहसास है जो तपती बालू पर पड़े रहने को मजबूर कर रहा है···

वह शाम अविजित ने सड़क के किनारे खड़ी गाड़ी में बैठकर बिता दी···

४

सुबह हुई तो घर में कोहराम मचा हुआ था।

खुले बाल पीठ पर छितराये स्वर्णा ज़मीन पर बिखरी पड़ी थी और ज़ोर से विलाप कर रही थी।

उससे कुछ दूरी पर पड़ा सुधांशु उसकी नक़ल करके रो रहा था।

एक कोने में खड़ी खोखी चुपचाप टक लगाकर स्वर्णा को देख रही थी।

शुभा और प्रभा कुछ असमंजस की हालत में उसके बराबर में खड़ी थीं।

"क्या हुआ ?" हड़बड़ाए हुए अविजित ने कमरे में प्रवेश किया।

"लछमन भाग गया!" प्रभा ने कहा।

"हमको सोता छोड़कर भाग गया," स्वर्णा ने फ़र्श पर लोट कर कहा। उसके भारी केश सांप की तरह लहरा कर दो हिस्सों में बंट गए।

"कहां गया ?" अविजित ने पूछा।

"कौन जाने किधर गया हरामी! गांव गया होगा मरने! खेती करेगा! करो। करो खेती! दो बीघा ज़मीन पर घास का चारा तक उगता नहीं। बोएगा अपना देह का हड्डी, काटेगा हमारा सिर!"

स्वर्णा ने सिर ऊपर उठाया, एक झपेट में पीठ पर बिखरे बाल समेटे और गांठ लगा कर जूड़े में बांध लिए।

"भूखा मरेगा तो अपने आप आएगा लौटकर।"

"हां···लौट आएगा···" अविजित ने कुछ कहने के लिए कहा।

"जितना पैसा जमा किया, सब लेकर भागा है, उड़िया!"

"रुपया खत्म होते ही लौट आएगा," प्रभा ने कहा।

"आए चाहे नहीं," सहसा स्वर्णा ने कहा, "हम उसका पीछे नहीं जाएगा। हमारा अपमान करेगा···चोरी करके भागेगा···" वह ज़ोर से बिलख उठी, "मर जाएगा उसके पीछे नहीं जाएगा···अपने से आकर माफ़ी नहीं मांगेगा जब तक, हम··· हम जूड़ा नहीं बांधेगा!"

उसने जूड़े पर एक हाथ मारा और पहाड़ी प्रपात की तरह केश-राशि खुलकर

पीठ पर बिखर गई।

"देखना तुम···हमारा अभिमान···" और स्वर्णा चीख-चीख कर रो उठी।

"तू ऐसे कर सकती है?" प्रभा ने चुपके से शुभा के कान में कहा।

शुभा ऐसे चौंकी जैसे चोरी करते पकड़ी गई हो। अपनी बड़ी-बड़ी बादामी आँखें ऊपर चढ़ाए यही सोच रही थी कि यह दृश्य मंच पर कैसा रहे?

तू सिर्फ़ नाटक में जीती है, प्रभा ने एक बार कहा था, लगता है ज़िन्दगी में तेरा पार्ट ग़लत लिखा गया, इसी से ग़फ़लत में पड़ी रहती है।

"उससे कहो इतनी ज़ोर से न रोये। मेरा दिल घबराता है," अपने कमरे से श्यामा की आवाज़ आई।

"अरे वाह! कैसे न रोये?" प्रभा ने कहा, "उसका पति भाग गया, वह रोये भी नहीं।"

शुभा ने और पास खिसक कर स्वर्णा के कन्धे पर हाथ रख दिया।

"प्लीज़, माया," उसने कहा, "ज़रा धीरज रखो न। ममी तुम्हारे लिए बहुत घबरा रही हैं।"

"तो?" प्रभा ने कहा, "इस पर मैं आदमी रो भी नहीं सकता।"

स्वर्णा के कण्ठ से एक ज़ोरदार चीख निकली। एक क्षण को लगा वह प्रभा की ही बात रखेगी पर अगले क्षण, हिचक कर चुप हो गई।

"उफ़," प्रभा ने हिक़ारत से कहा, "यह फ्यूडल मानसिकता। घिन आती है मुझे।"

गोगी अपना कोना छोड़ कर चुपचाप आगे बढ़ी और स्वर्णा की गोद में बैठ गई। अपनी बाहें उसके गले में डाल दीं। उसे देख, गुपागु और बेक़ाबू हो रो उठा और ज़ोर-ज़ोर से पैर ज़मीन पर पटक कर चीखने लगा, "अन्ना-अन्ना।"

"यह क्या कह रहा है?" अविजित ने पूछा।

"स्वर्णा को पुकार रहा है," शुभा ने कहा।

"नहीं तो। यह तो अन्ना-अन्ना पुकार रहा है।"

"यह स्वर्णा को अन्ना कहता है।"

"क्यों?"

"बह···बस कहता है।"

"तुतलाता है," स्वर्णा ने कहा।

"तुतलाता है? क्यों?" अविजित ने सवाल किया।

कमरे में मौजूद सब प्राणियों ने एक-दूसरे की तरफ़ देखा···गुपागु क्यों तुत-

लाता है ? किसी को जवाब नहीं सूझा।

"लड़का लोग देरी करके बोलता है," स्वर्णा ने कहा।

इतनी देर से···अविजित के मन में उठा कि श्यामा का स्वर गूंजा, "स्वर्णा, उसे चुप कराओ !"

स्वर्णा ने खोखी को नीचे उतारकर सुधांशु को गोदी में उठा लिया।

वह उसी सुर में 'अन्ना-अन्ना' चिल्लाता रहा।

खोखी ने स्वर्णा का पल्लू थाम लिया।

"तुम जाना मत," उसने कहा, "कब्बी नहीं जाना।"

"नहीं जाएगा," स्वर्णा ने कहा, "कब्बी नहीं जाएगा। लेने आएगा तब भी नहीं। वह जानता नहीं, हमारा अभिमान···"

"अभिमान !" प्रभा बुदबुदाई, "रोया तक तो गया नहीं," और कमरे से बाहर निकल गई।

नाटक खत्म, शुभा ने देखा, अब चलो। अभिभूत-सी वह बाहर चली आई। उसकी कनपटियों से लपटें निकल रही थीं, सांस रुक-रुककर चल रही थी। आंखें दो परतों पर एक साथ देख रही थीं···आज शाम कालेज के नाटक में उसका अभिनय जरूर असरदार होगा।

स्वर्णा का अभिमान, अविजित सोच रहा था, दो फल का चाकू है, कब किधर काट जाए, भरोसा नहीं है। आज उसका अभिमान पति के पीछे जाने से रोक रहा है, कल कौन जाने उसे छोड़ कर रहने से रोकने लगे।

पति से यह उसका पहला विछोह नहीं है। हर छह-आठ महीने में लछमन घर से भागता जरूर है पर दो-चार दिन अफ़ीम की पिनक में रहकर लौट आता है। हर बार उसके भागने पर स्वर्णा इसी तरह आक्रोश प्रकट करती है और लौट आने पर खरी-खोटी सुनाकर माफ़ कर देती है।

हां, इस बार हालात कुछ फ़र्क हैं। पिछले पूरे साल वह घर से नहीं भागा, साथ ही पोस्ट ऑफ़िस में अपने नाम से पैसे भी जमा करता रहा है। स्वर्णा जब-तब शिकायत करती रही है कि अपने साथ-साथ वह स्वर्णा की तनख्वाह भी अपने नाम से जमा करा रहा है। अब अगर रुपये लेकर भागा है, और जरूर भागा होगा, तो कोई योजना भी होगी दिमाग़ में···सोचता-सोचता वह श्यामा के कमरे में चला आया।

"वह नहीं आएगा और स्वर्णा भी चली जाएगी," श्यामा ने कहा।

"नहीं क्यों आएगा ? हर बार तो लौट आता है," अविजित ने कहा।

"तुम देख लेना। इस बार नहीं आएगा। अब क्या होगा ?"

"देखेंगे। नहीं लौटेगा तो दूसरे आदमी का इन्तजाम हो जाएगा।"

"पर स्वर्णा···वह भी तो जाएगी।"

"वह नहीं आएगी।"
"ज़रूर आएगी। वह ज़रूर आएगी।"
"वह कह जो रही है, नहीं आएगी।"
"वह अब कह रही है, मैं बाद की बात कह रही हूं।"
"तुम उससे ज्यादा जानती हो?" अविजित ने मज़ाक करने की कोशिश की।
"हां, मेरा मन कह रहा है वह आएगी, और मेरे मन की आवाज़··· "
श्यामा के मन की आवाज़ !
स्वर्णा का उनके घर में प्रवेश भी उसी की बदौलत हुआ था।

तब वे कलकत्ते में रहते थे···
अविजित अपने मकान के छज्जे पर खड़ा नीचे सड़क पर ताक रहा था। सड़क के किनारे लगे सार्वजनिक नलके पर औरतें पानी भर रही थीं···धक्का-मुक्की और गाली-गलौज से हवा गरम थी। अगर ये लोग एक लाइन में खड़े होकर बारी-बारी से पानी भरें तो काम कितनी शान्ति और सुविधा से हो सकता है, वह सोच रहा था। दस-पांच साल पहले का ज़माना होता तो वह नीचे जाकर, डाट-डपट करके, उनसे लाइन बनवाने लगता पर अब··· वह जोश नहीं था। लड़ने दो, वह सोच रहा था, दिल की भड़ास तो निकलती है···कब तक आदमी घुटता रहे···यहां नहीं लड़ेंगी तो घर जाकर अपने-अपने घरवाले से सिर फोड़ेंगी···
तभी नीचे दो औरतों में इतना घमासान युद्ध छिड़ा कि बाकी औरतें दर्शकों की पंक्ति में आ गईं और अविजित के लिए दर्शक बने रहना मुश्किल होने लगा।
उन दोनों में से अधेड़ मोटी औरत में शारीरिक बल अधिक था पर दूसरी दुबली-पतली नवयुवती में बिजली का वेग और उन्माद था। हाथापाई करते-करते गर्दन पर लटका ढीला जूड़ा खुल आया था और लम्बे-घने काले केश पीठ पर लहरा रहे थे।
आधी और बिजली, एक साथ! अरे, अविजित ने सोचा, यह तो बिल्कुल कावल बनर्जी की तरह दीखती है, कि अधेड़ औरत ने हाथ की जस्ते की बाल्टी उसके सिर पर दे मारी। खून की फुहार फूटी और वह ज़मीन पर ढह गई। औरतों में भगदड़ मच गई। सीढ़ियां फलांगता अविजित उसके पास जा पहुंचा। बिना इधर-उधर देखे उसे गोदी में उठाया और सटासट सीढ़ियां वापिस चढ़ गया।
सिर की मरहम पट्टी होने तक उस काली लड़की को होश आ गया और वह धीरे-धीरे उठकर फ़र्श पर बैठ गई।
"लो, दूध पी लो," अविजित ने उसके हाथ में दूध का गिलास थमा दिया।
वह चुपचाप घूंट भरने लगी।

"सुकेशी !" सहसा श्यामा ने कहा।

"क्या ?" अविजित ने चौंक कर श्यामा को देखा। इतनी देर में ये उसके पहले शब्द थे।

"नीचे बैठने पर जिस औरत के बाल ज़मीन को छुएं, बहुत शुभ होती है," श्यामा ने कहा।

अविजित ने देखा, सचमुच पीठ पर बिखरे उसके बाल फ़र्श को छूते हुए लटक रहे हैं।

"अपना पता-ठिकाना बतलाओ तो मैं तुम्हें घर छोड़ आऊँ," उसने कहा।

"पता-ठिकाना कोई नहीं है," जवाब मिला था, "नीचे छोड़ दो, हमारा बाल्टी होगा उधर।"

बाल्टी अब कहां होगी ! भागती औरतों में कितनी ही उसे उठाने को लपकी होंगी और किसी एक के हाथ वह ज़रूर लग गई होगी।

"यह कहां जाएगी," तभी श्यामा बोल पड़ी थी, "यहीं रहेगी।"

"यहां ?"

"तुम्हारा नाम क्या है ?" श्यामा ने लड़की से पूछा था।

"स्वर्णा।"

"कलकत्ते में तुम्हारा कोई नहीं है ?"

"नहीं। हम कलकत्ता काम ढूंढ़ने को आया है।"

"तुम्हारे स्वामी कहां हैं ?"

"नहीं हैं।"

"कैसे नहीं हैं ? इतना चौड़ा मांग-भर सिंदूर लगाती हो···"

"सिन्दूर है," उसने ज़ोर देकर कहा था, "स्वामी नहीं हैं।"

तभी दो बरस की प्रभा अन्दर घुसी थी और 'मां-मां, बाजा दो,' कहती श्यामा के ऊपर लटक गई थी।

"उफ़, क्या हर वक़्त मां-मां लगाए रखती है। मुझे नहीं अच्छा लगता," कह कर श्यामा ने उसे अलग झटक दिया था।

श्यामा के दूसरा बच्चा होने वाला था और वह हरदम खीजी रहती थी।

"एई, इधर आओ," स्वर्णा बोल पड़ी थी, "हमको मां बोलो।"

प्रभा उसके पास आ गई थी।

"मां बोलो," उसने फिर कहा [illegible] मां बोलो

प्रभा एकटक उसे देखती रा[illegible] क[illegible] [illegible]ो माई !"

"चुप !" अविजित ने डपट[illegible] [illegible]स पड़ी थी। और प्रभा को खींच कर छाती [illegible]

···और स्वर्णा वहीं रह गई [illegible]

"[illegible] औरत को तुम[illegible]

ज़रूर था।

"मैं तो उसे देखते ही पहचान गई थी," श्यामा ने कहा।

"क्या मतलब ? तुमने उसे पहले कब देखा ?"

"आपको पता है, रामदुलारी जब मरी, मैं आठ साल की थी।"

"कौन रामदुलारी ?"

"मेरी धाय।"

"देखो," अविजित ने कहा था, "तब तुम आठ साल की थीं और अब हो बीस की। अगर रामदुलारी दुबारा जन्म लेती तो बारह बरस की होती और यह स्वर्णा कम-अज़-कम बीस-बाईस बरस की है। दूसरी बात, दुबारा जन्म लेने पर आदमी की शक्ल-सूरत वही नहीं रहती जो तुम देखते ही पहचान लो।"

"मैंने कब कहा शक्लें एक जैसी हैं। रामदुलारी तो बहुत गोरी थी।"

"तब ?"

"मैंने तो बात कही थी···अच्छा, रामदुलारी होती तो मुझे अभी भी उतना ही प्यार करती जितना तब···"

"करती, तो ?"

"देख लेना," उसने विश्वास के साथ कहा था, "स्वर्णा मुझे बहुत प्यार करेगी।"

ओह, तो इस तरह पहचाना था श्यामा ने। मन की आवाज़ ! अविजित हंस कर रह गया था।

बाद में पता चला था, स्वर्णा का पति बलियापाल गांव में खेती करता है।

"तू उसके पास क्यों नहीं रहती ?" श्यामा ने पूछा था।

"वो हमसे धोखा से ब्याह किया।"

"कैसे ?"

"वो उड़िया है," स्वर्णा ने ऐसे कहा जैसे 'उड़िया' कोई जंगली जानवर हो।

"तो क्या हुआ ?"

"हमको बोला, बंगाली है। हम ब्याह कर लिया। गांव पहुंचा तो देखा, सरप-सरप सब लोग उड़िया बोलता है।"

"तो क्या हुआ ?" अविजित को हंसी आ गई थी, "उड़िया भी तो आदमी होते हैं।"

"आदमी होने से ही हम ब्याह करेगा !" स्वर्णा ने त्यौरी चढ़ाकर कहा था।

"पर···तूने स्वामी को छोड़ दिया ?" श्यामा ने आश्चर्य प्रकट किया था।

"हम बोला—इस उड़िया-फुड़िया के बीच हम नहीं रहेगा। हमारा संग रहना है तो चलो कलकत्ता, नौकरी करो। वो बोला—हम गृहस्थ है, खेती करेगा। करो खेती। हम आ गया छोड़कर।"

"पर इतनी-सी बात पर स्वामी को छोड़ना···"

"इतना बात ! कितना बात, जानता है ! वो हमको धोखा दिया।"

"तुझसे शादी क्यों करना चाहता था ?"

"और क्यों ? प्रेम करता था।"

"और तू ?"

"हमको बोला—हम बंगाली है, तुमको प्रेम करता है। हम कर लिया।"

"तो तू उसके पास कभी नहीं जाएगी ?"

"इधर आएगा तो रहेगा साथ में, नहीं तो अपना कमाई आप करेगा। वो क्या समझता है, हमारा अभिमान को लात मारेगा और हम रहेगा उसका पास !"

श्यामा ने सुख की सांस ली थी। स्वर्णा कहीं नहीं जाएगी।

पर धन्य था लछमन महाराज का प्यार ! स्वर्णा को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते कलकत्ता आ पहुंचे। एक दिन बाज़ार में टकरा गए और झट स्वर्णा के अभिमान ने दूसरा फल निकाल लिया।

"स्वामी हमको लेने आएगा और हम इधर पड़ा रहेगा, पैसा का खातिर। धिक्कार है हम पर।"

फिर भी स्वर्णा का जाना नहीं हो पाया था। नियति के चक्र में फंस कर लछमन को वहीं रह जाना पड़ा था, कलकत्ते में। तो अविजित का घर ही क्या बुरा था ?

नियति का चक्र या विदेशी हुकूमत के दमन का ? अविजित के मन में कौंधा। विदेशी हुकूमत हमारी नियति थी या हमारी पराजय ? अपनी हार को नियति के गले मढ़ कर सन्तुष्ट हो जाना अविजित की प्रकृति नहीं थी तो क्या, लछमन के लिए वह नियति ही थी जो ब्रिटिश सरकार का मुखौटा पहन कर वार कर बैठी थी। १९४२ का आरम्भ था। लछमन का गांव उड़ीसा के तटवर्ती इलाके के उन सैकड़ों गांवों में से एक था जिनकी खड़ी फसलें ब्रिटिश सरकार ने जला डाली थीं, किसानों के हल-बैल, नावें छीन ली थीं ताकि रसद और साधन हमलावर जापानी फौजों के हाथ न लगें, जिनका डर दिसम्बर १९४१ से लेकर १९४२ के मध्य तक चोटी पर पहुंच चुका था।

पुरानी बातें हैं, क्या याद करनी, अविजित ने अपने को वर्तमान में खींचने की कोशिश करते हुए श्यामा से कहा, "तुम फ़िक्र मत करो। मैं कर दूंगा कुछ···।"

पर मन फिर अनमना होकर वहीं अतीत में जा पहुंचा। पता नहीं कल से क्या हो गया है। जब से काजल···अब जाने कहां से वह किताब याद आ रही है जो उसने १९४२ में लिख मारी थी और···

"···स्वयंभूमिध्वंस नीति के अन्तर्गत किसानों की फ़सलें जला डालना और यातायात के साधन छीन लेना क्या प्रख्यात ब्रिटिश 'सेन्स ऑफ़ ह्यूमर' का नमूना है या शेक्सपीयर की 'ग्रैंड आइरनी' का ! जो भूमि उनकी नहीं है, जिसकी रक्षा करने का उनका कोई इरादा नहीं है, उसे ध्वंस करने में इतना निपुण कौशल ! और वाक़ई

जिसकी ज़मीन यह है, उन्हें हक़ नहीं है कि उसकी हिफ़ाज़त कर सकें। ब्रिटिश सरकार हिन्दुस्तानी हाथों में हथियार देने को तैयार नहीं है। ब्रिटिश ह्यूमर का एक और नमूना! ब्रिटेन की हार को जीत में बदलने के लिए ये हिन्दुस्तानी हाथों में हथियार पकड़ा सकते हैं पर हिन्दुस्तान की हिफ़ाज़त के लिए नहीं! सिर्फ़ बहादुर कहलाए जाने के लालच में हमारे सिपाही किस गरिमा के साथ मिस्र, सीरिया और ईराक के तपते रेगिस्तानों में जानें दे रहे हैं और उसका मुआवज़ा हिन्दुस्तानी अवाम को यह मिल रहा है…"

एक-के-बाद एक जुमला अविजित के कानों में गूंज गया। किताब के पन्ने जैसे मंच पर आ खड़े हुए थे। किताब की शुरुआत शायद तभी हो गई थी जब १९४० में चर्चिल ब्रिटेन का प्रधानमंत्री बना। ब्रिटिश पार्लियामेंट में दिए गए उसके भाषण ने खूब वाहवाही लूटी थी पर…उसमें छिपे तथ्य से हर हिन्दुस्तानी आहत हुआ था।

क्या कहा था चर्चिल ने—आप जानना चाहते हैं हमारा मकसद क्या है? इसका जवाब मैं एक शब्द में दूंगा—फ़तह। किसी भी क़ीमत पर फ़तह, तमाम आतंक के बावजूद फ़तह, दुश्वार से दुश्वार, लम्बे से लम्बा सफ़र तय करके फ़तह; क्योंकि आज फ़तह हमारे ज़िन्दा रहने की शर्त बन गई है। अच्छी तरह समझ लें आप लोग। फ़तह न मिली तो ब्रिटेन ज़िंदा नहीं रहेगा, ब्रिटिश साम्राज्य ज़िंदा नहीं रहेगा, वह कुछ भी ज़िंदा नहीं रहेगा जिसके लिए ब्रिटिश साम्राज्य बना है…

भाषण के जोश ने अविजित को भी अभिभूत कर लिया था पर कुछ ही क्षणों बाद उसका ज़ेहन चीख उठा था—"क्या है वह जिसके लिए ब्रिटिश साम्राज्य बना है? गुलाम देशों के श्रम और माल से ब्रिटेन को दौलतमंद बनाने के लिए ही न। चर्चिल कहते हैं, किसी भी क़ीमत पर फ़तह। साफ़ क्यों नहीं कहते, गुलाम देशों की क़ीमत पर फ़तह; एशिया के जान-माल की कुर्बानी पर फ़तह; हिन्दुस्तानी अवाम को भूखा मार कर फ़तह।"

कुछ कम जोशीले तो नहीं हैं ये शब्द! अविजित के शब्द, उस किताब में बन्द। "…हिटलर क्या अकेला आततायी है…"

"श्रमा-शुभा में से एक को कालेज छोड़ना पड़ेगा," सहसा उसने सुना, श्यामा कह रही है। ऊंची आवाज़ में। शायद पहले भी कह चुकी है, उसके न सुनने पर दुहरा रही है।

"क्यों?" अतीत से टूट कर फिर वर्तमान में आ गिरा अविजित।

"स्वर्णा नहीं रहेगी तो किसी-न-किसी को घर पर रहना ही पड़ेगा," श्यामा ने कहा।

"कभी नहीं! नामुमकिन! उन लोगों का बलिदान क्यों?" किताब के जोश से भरा अविजित बोल उठा।

"इसमें बलिदान की क्या बात है?" श्यामा ने कहा, "शादी के बाद भी तो घरबार देखेंगी। हमारी बुआजी मरीं तो उनकी लड़की सिर्फ़ बारह बरस की थी पर

पूरा घर संभाल लिया था। छोटे भाई को मां की तरह पाला। ज़रूरत पड़ने पर···"

पर तुम तो अभी ज़िन्दा हो, बिल्कुल नामुमकिन न होता तो उस क्षण सारी सभ्यता भूल, अविजित कह ही डालता। न कहने के बोझ से उसका बदन कांप उठा।

"यह सब बकवास मैं नहीं सुनना चाहता," वह चीख पड़ा।

"चिल्ला क्यों रहे हो। मेरी तबीयत···" और श्यामा फूट-फूट कर रो दी।

हताश अविजित वापिस कुर्सी में ढह गया।

कमज़ोर का ज़ुल्म···कमज़ोर पर ज़ुल्म···सहो या करो ! क्या समर्थ की सामर्थ्य इसी में है कि कमजोर पर ज़ुल्म करे। जो सह ले वही कमज़ोर, जो कर ले वही समर्थ ? हज़ारों सालों से चला आ रहा मानव इतिहास बस यही सिखलाता है ? जिसे ज़ुल्म करने का मौक़ा न मिला, वह कमज़ोर हो गया। हम···हमारा देश क्या इसीलिए कमज़ोर बना···क्योंकि ज़ुल्म नहीं किया। नहीं, अपने-अपने घर में व्यक्तिगत रूप से तो बखूबी कर लेते हैं। खूंखार भीड़ बनते भी देर नहीं लगती। जब कहो दंगा कर दें, बच्चे-बूढ़ों को ज़िन्दा जला दें। फिर योजना-बद्ध कुशल आक्रमणकारी हम कभी क्यों नहीं बने। इसलिए कि हमारा ज़ुल्म कमज़ोर का ज़ुल्म है ? बहादुरी फिर क्या है ? कमज़ोर की पीठ पर चढ़कर मंज़िल की तरफ बढ़ जाना और पीछे मुड़कर देखना तक नहीं कि वह गिरा या पूरी तरह कुचला गया।

श्यामा रोये जा रही है···

अविजित सुन रहा है···

उसे मनाना चाहिए, वह जानता है।

मनाना पड़ेगा, यह भी जानता है। फिर भी वह बैठा कुछ और देख रहा है, सुन रहा है। हो क्या गया है उसे ? बारह-तेरह बरस पुराना उबाल कल से क्यों उफन रहा है नसों में। कब से अलमारी में बन्द पड़ी किताब की मुश्किल से बचाई एक प्रति। मन हो रहा है अभी जाकर उसे निकाल कर पढ़े और···काजल को पढ़वाए। क्या कहेगी काजल पढ़ कर···

कितना कुछ तो बिना देखे याद आ रहा है··· "सिर्फ़ हिटलर को हम क्यों दोष दें···वह अकेला कब था ? मैं मुसोलिनी और तोजो की बात नहीं कर रहा। वे तो उस दानवी त्रिमूर्ति के अभिन्न अंग थे ही पर सवाल योरप के उन देशों का है जो अपने को आज़ादी के हिमायती बतलाते रहे हैं। किसकी आत्मा से वशीभूत थे योरप के वे समर्थ देश जो अपनी जान बचाने की खातिर पड़ोसी कमज़ोर और छोटे देशों को धकिया-धकिया कर हिटलर के हवाले करते रहे। हिटलर मानो, महाभारत का बक राक्षस था जो ऐलान कर चुका था कि वह योरप के देशों को एक-एक करके खाएगा। भगदड़ मची हुई थी सभी में, अपनी जान बचाओ···कमज़ोर को आगे धकेलो ! जब तक उसकी भूख मिटती रहेगी, हम सुरक्षित रहेंगे। हिटलर ने पोलैंड को सिर से निगला तो धड़

निगल गया रूस। अपनी सामर्थ्य बढ़ाने को दुश्मन के मददगार भी बना करते हैं सब। चेकोस्लोवाकिया को खुद उसके संरक्षक ब्रिटेन और फ्रांस ने चांदी की थाली में सजा कर परोस दिया था हिटलर को। फ्रान्को ने स्पेन को चबा-चबाकर खाया तो खूब तमाशा देखा योरप ने अपनी-अपनी सुरक्षित खिड़की से। इथोपिया की तो खैर बात ही नहीं छिड़नी चाहिए—वह ठहरा काले हब्शियों का देश, उसके लिए कौन खतरा मोल लेता—लीग ऑफ़ नेशन्स तक खामोश बैठी रही'''

"''स्वतन्त्र नीति निर्धारण का अधिकार क्या योरप के देशों का पुश्तैनी हक है? आज़ादी उनकी बपौती है? जब तक उनकी अपनी आज़ादी पर आंच नहीं आती वे शान्ति की देवी का आह्वान करते रहते हैं। पर दूर सुलग रही आग की गरम हवा उन्हें छू-भर जाए तो टेम्स के गंदले पानी में उसका विसर्जन कर आज़ादी की देवी को [illegible] करने में ज़रा देर नहीं लगती। जंग के मैदान में मर मिटना धर्म हो जाता है; शान्ति की पुकार गान्धी जैसे पागलों का प्रलाप।

"'''शान्ति किस कीमत पर? उनके लिए जवाब एकदम साफ़ है'''औरों की कीमत पर। अपना सिर न झुके, औरों का चाहे कट जाए।'''जब गांधी कहता है, हिटलर का सामना अहिंसा से करो, युद्ध का मार्ग मत अपनाओ तो पूरा संसार उसे विक्षिप्त कहता है और नपुंसक' पर जब ब्रिटेन और फ्रांस ने चेकोस्लोवाकिया से कहा—योरप की शान्ति की खातिर तुम हिटलर के जबड़ों की भेंट हो जाओ तो किसने उन्हें विक्षिप्त कहा'''कौन कह सकता है—इतिहास के सिवा, और इतिहास वे लिखते हैं जिनके हाथों में ताकत होती है'''"

जैसे मन लिखा हो'''पढ़कर क्या कहेंगी काजल?

श्यामा ने अपना सिर दोनों हाथों में पकड़ा और ज़ोर से चीख उठी।

अचिजित चौंककर उठ खड़ा हुआ। श्यामा? हां श्यामा!

सरककर उसने उसका सिर अपने मज़बूत हाथों में थाम लिया। कमज़ोर के [illegible] हाथ!

"क्या हुआ?" उसने पूछा।

"चक्कर!" श्यामा बोली।

बहुत देर कर दी! उसे पहले इसकी तरफ़ ध्यान देना चाहिए था। अब पूरा दिन लग जाएगा तब जाकर'''

"बस अब नहीं आएगा'''धीरज रखो'' मैं हूं न तुम्हारे पास'''मेरे रहते कुछ नहीं होगा'''लो गोली खा लो'''आंखें बन्द कर लो'''सोने की कोशिश करो'''मैं बैठा हूं तुम्हारे पास''" पुचकार-पुचकार कर वह कहता रहा'''और सोचता रहा'''पुराने कागज़ निकाल कर एक बार देखने ही होंगे'''

५

"कैसे आना हुआ, अविजित," काजल ने पूछा।

"क्यों, नहीं आना चाहिए था ?" अविजित कुछ चौकन्ना हुआ।

"नहीं, वह बात नहीं है। मैं तो यह पूछ रही हूं कि तुम क्या रोज़ घर से दफ़्तर के लिए निकलकर मटरगश्ती करते घूमते हो ?"

"ज़रूरी काम से आया हूं।"

"क्या ?"

"तुम्हारे पचास रुपये लौटाने हैं।"

क्षण-भर काजल ने उसकी तरफ़ ताका, फिर खिलखिलाकर हंस पड़ी।

"ओ मां," उसने कहा, "बीस बरस में सूद कितना हुआ, बतलाओ तो ?"

"हिसाब लगाओ," अविजित ने कहा, सोचा, कितनी मधुर है इसकी हंसी।

हंसी-हंसी में कितना फ़र्क होता है। संगीता हंसती है तो लगता है तुमसे तुम्हारी मानवीय गरिमा छीने ले रही है; आदमी एकदम नंगा हो जाता है। यह हंसती है तो लगता है बहुत कुछ दिये दे रही है; भयानक सरदी में जैसे कोई ऊपर दुशाला डाल रहा हो।

फ़र्क हंसी में होता है या आदमी के अपने मन में ?

"अभी चढ़ने दो," काजल ने कहा, "बुढ़ापे में काम आएगा," और फिर वैसे ही खिलखिलाकर हंस दी।

"कितनी सुन्दर लगती हो तुम हंसते हुए," अनायास अविजित के मुंह से निकल गया।

काजल की हंसी ग़ायब हो गई। चेहरा सख्त पत्थर हो गया।

"मैं सुन्दर नहीं हूं, अविजित," उसने कहा, "न बीस साल पहले थी न अब हूं। मैं नहीं चाहती कोई मुझे मेरे मुंह पर मुझे सुन्दर कहे।"

हतप्रभ अविजित मुंह ताकता रह गया।

···झूठ नहीं कहा था मैंने···सचमुच इस वक़्त यह मुझे ख़ूबसूरत लगी थी। बीस साल पहले नहीं लगी थी, अब लगी, यह आश्चर्यजनक हो सकता है पर झूठ नहीं

है। पता नहीं क्यों उन दिनों सिर्फ़ इसका सावला रंग और चेहरे पर गुदे चेचक के दाग़ ही दिखलाई देते थे। मन में करुणा उपज आती थी। इतनी भली, मेधावी, हंसमुख लड़की बदसूरत क्यों है?

उस दिन मोतीलाल नेहरू के बचा लेने पर जब सही-सलामत हॉस्टल लौटा था तो फाटक के बाहर सड़क पर ही काजल पागलों की तरह आकर उसके गले में झूल गई थी।

"प्रविजित-प्रविजित! ओ प्रविजित, झोले में तुमने मेरे नाम चिट्ठी डाली थी? बोलो, डाली थी न।"

"हां," प्रविजित ने अनायास कह डाला था।

इतने लोगों के सामने कोई लड़की इस तरह लज्जा त्याग कर प्रणय निवेदन कर सकती है, वह सोच भी नहीं सकता था। वह भी काजल जैसी स्वाभिमानी लड़की। नहीं, कहकर उसका अपमान करना असम्भव था उस समय।

पर···सचमुच क्या इसी करुणामय निस्वार्थ भावना से उसने 'हां' कह डाला था? उसके युवा गदराये जिस्म के स्पर्श से पुलक नहीं उठा था उसका शरीर? बांहें उसके चारों तरफ कसकर सीने से सटा नहीं लिया था उसे? अगर उसी वक़्त अपना काला दाग़ी चेहरा उठाकर वह उसकी तरफ़ ताक न उठती···उसकी बदसूरती का अहसास मन में जग न गया होता तो···

···फिर भी झूठ पलता रहा था···

"काजल," उसने विह्वल कण्ठ से कहा, "मुझे माफ कर सको तो···"

"अरे, छोड़ो," काजल हंस दी, "ये बतलाओ, अनित्य आजकल क्या करता है?"

"जो आज करता है, कल नहीं करता।"

"अब तक शादी नहीं की?"

"नहीं।"

"कहां है?"

"पिछली बार खत आया तो मुगलसराय में था। अब पता नहीं कहां है।"

"कभी मिलता तो होगा।"

"हां, जब जी चाहता है, चला आता है।"

"अगली बार आए तो मुझसे जरूर मिलवाना।"

"क्या करोगी मिलकर?"

"ब्याह करूंगी उससे," काजल ने कहा और खिलखिला कर हंस पड़ी।

संकुचित प्रविजित चुप रहा।

"क्या हुआ? इतना संकोच क्यों? ब्याह करना क्या इतना बुरा काम है?"

"नहीं-नहीं···मैंने तो कुछ कहा नहीं।"

"भीषण ग़लती हुई मुझसे। उस दिन जब अनित्य ने कहा था—आमि तोमाके भालो वाशी—तभी झट उसका हाथ थाम लेना चाहिए था। अनित्य जैसे आदमी के साथ और जो हो, धोखा नहीं होता।"

याद करके अविजित ठठाकर हंस पड़ा, बीच ही में। बाद का वाक्य सुना ही नहीं।

पच्चीस साल पहले···मार्च १९२९···अनित्य अचानक इलाहाबाद उसके हॉस्टल आ धमका था। काजल उसके कमरे में ही बैठी हुई थी।

"मुझे पचास रुपये चाहिए," भीतर घुसते ही उसने कहा था।

"यह काजल बनर्जी हैं," अविजित ने टोककर परिचय कराया था, "और यह मेरा छोटा भाई अनित्य।"

"आमि तोमाके भालो वाशी," अनित्य ने फ़ौरन कहा था।

"क्या!" तमक कर काजल उठ खड़ी हुई थी।

"अनित्य!" अविजित दहाड़ा था।

"कुछ ग़लत हो गया क्या?" अनित्य ने सहम कर कहा था।

"मालूम भी है जो तुमने कहा उसका मतलब क्या है—तुम इनसे प्यार करते हो?"

"या खुदा," अनित्य ने झुककर काजल के पैर ही छू डाले थे, "माफ़ करना, तुम मेरी मां हो···यह सब उस चटर्जी के बच्चे की करतूत है। मैंने उससे पूछा, कोई बंगाली लड़की मिले तो दुआ-सलाम कैसे करनी चाहिए तो उसने यह बतला दिया।"

हंसते-हंसते काजल का बुरा हाल था।

"ओ मां, तुम्हारा भाई तो एकदम पागल है?" उसने कहा था।

"अब जब परिचय हो ही गया तो काम की बात पर आया जाए," अनित्य बोला, "मुझे पचास रुपये चाहिए।"

"क्यों?" अविजित ने पूछा।

"फ़ीस जमा करवानी है।"

"पिताजी ने नहीं भेजे?"

"भेजे तो थे पर पचास रुपयों में आप सोचिए बम्बई घूमना क्या होता। उसके लिए तो मुझे···"

"फ़ीस के रुपयों में से तुम बम्बई घूमने गए थे?"

"और नहीं तो बम्बई का नाम लेने से वे भेजते?"

अविजित क्या कहता।

"साथ में अंगूठी भी बेचनी पड़ी," अनित्य ने कहा।

"तुमने मां की अंगूठी बेच दी!"

"फ़िक्र मत कीजिए, जिसे बेची उसे कह दिया था तुम मेरी मां हो।"

प्रविजित नाराज़ होकर कुछ कहता, इससे पहले ही काजल खिलखिला उठी, "तुम क्या हर औरत को मां कहते हो ?"

"नहीं, सिर्फ जिनके पास पैसा होता है। आपके पास पचास रुपये हैं ?"

"अनित्य !" प्रविजित फिर दहाड़ा।

"मांग नहीं रहा भाई साहब," अनित्य ने कहा, "सिर्फ़ बतौर जानकारी पूछ रहा हूं।"

"हां, हैं," काजल ने कहा।

"मेरे पास तो पचास रुपये हैं नहीं," प्रविजित ने चिन्तित भाव से कहा, "क्या करें···नहीं, तुम मत बोलो काजल, तुमसे लेने का सवाल ही नहीं उठता।"

"एक काम हो सकता है," कुछ देर सोचने के बाद अनित्य ने कहा।

"क्या ?"

"आप तो आजकल खादी पहनते हैं। पहले के मिल वाले कपड़े यूं ही पड़े होंगे।"

"हां, हैं तो।"

"क्या करेंगे उनका ?"

"जलाएँगे।"

"कब ?"

"परसों।"

"ऐसा कीजिए, उन्हें आप मुझे दे दीजिए। मैं बेच लूंगा। काम चल जाएगा।"

"तुम अपने कपड़े क्यों नहीं बेच लेते," काजल ने कहा।

'वह तो मैं बेच चुका।"

"क्या !" भौंचक्का प्रविजित कह उठा।

"जी हां, बहुत ही मनहूस शहर निकला बम्बई। अंगूठी बेचकर पैसा मिला तो यह सोचकर रेस के घोड़े पर दांव लगाया कि जीत गया तो ऐश करेंगे बम्बई में। और वहां—बीच दौड़ घोड़े की टांग टूट गई। मजबूरन कपड़े बेचने पड़े। अब तो आपके कपड़ों के सिवा मेरे पास कुछ नहीं है।"

"मेरे कपड़े मेरे पास हैं, तुम्हारे नहीं," गुस्से से प्रविजित ने कहा, "और मैं उन्हें बेचूंगा नहीं।"

"जला डालेंगे पर किसी के काम नहीं आने देंगे," अनित्य बोला।

"विदेशी माल जलाना हमारी नीति है।"

"क्यों ?"

"उनका माल खरीदकर हम अपना शोषण नहीं करवाना चाहते।"

"खरीद तो आप चुके। शोषण भी आपका हो चुका है। हां, उन्हें जला जरूर सकते हैं पर सिर्फ वही लोग जिनके पास जरूरत से ज्यादा कपड़े हैं। जिसके पास मिल की बुनी एक धोती है वह उसे बेचकर नंगा तो होने से रहा। इससे तो उसे एक यूनिफ़ार्म देकर लड़ने भेज दिया जाए तो वह ज्यादा खुश रहे।"

"तो ?"

"तो कपड़े आप मुझे दे दीजिए। मैं वादा करता हूं सिर्फ़ ज़रूरतमंदों को वचूंगा, कम दाम पर।"

"नहीं," वीच में काजल वोल पड़ी, "कपड़े तुम मुझे वेच दो। मैं उन्हें जला दूंगी।"

"काजल, तुम भी···"

"नहीं तो मैं क्या जलाऊंगी ? मैं तो कवसे खादी पहनती हूं। जलाने को एक भी विदेशी कपड़ा मेरे पास नहीं है," काजल ने कहा।

"तुम भी मेरा मज़ाक उड़ा रही हो!" अविजित ने आहत भाव से कहा, "ठीक है, मैस में देने के लिए मैंने पचास रुपये रख छोड़े थे, वह तुम ले जाओ।"

"फिर आप क्या करेंगे ?"

"जेल चला जाऊंगा!" अविजित गरज उठा था, "वहां खाना मुफ़्त मिलता है!"

कुछ देर तीनों स्तब्ध वैठे रहे थे, फिर अपनी वात पर सवसे पहले अविजित ही हंस दिया था।

अन्त में काजल ने कहा था, "अभी मैं दे देती हूं, मेरे पास हैं जो। क्या कहा था गांधीजी ने उस दिन, किसी को अपने पास फ़ालतू पैसा नहीं रखना चाहिए···क्यों अनित्य, कौम्यूनिज़्म भी यही सिखलाता है न ?"

"सिखलाता नहीं, ज़वरदस्ती करवाता है।"

"वही तो। वस अनित्य, तुम वाद में लौटा देना···पांच रुपया महीना करके ···ठीक है न···और क्या, ठीक तो है···" काजल ने रुपये अनित्य को पकड़ा दिये थे।

"हां, ठीक है," अनित्य ने फ़ौरन कहा था, "फ़िक्र की कोई वात नहीं है, भाई साहव आपको रुपये ज़रूर लौटा देंगे।"

अविजित काजल का विरोध नहीं कर पाया था पर उसके रुपये लौटा भी नहीं पाया था।

उसे वाक़ई जेल हो गई थी! विदेशी माल जलाने के जुर्म में सिर्फ़ छह महीने की उस वार, पर···

"अच्छा, अविजित," अव काजल ने कहा, "वच्चों की तरह होलिकाएं जलाकर हमने क्या पाया ?"

"विदेशी माल पसन्द करने की आज़ादी," अविजित ने सूखी हंसी हंसकर कहा।

"हां, गुलाम मानसिकता को विला शर्म पालने की आज़ादी," काजल ने कहा,

"जब हम गुलाम थे तो कानून तोड़ते थे, जेल जाते थे, यह दिखलाने को कि हमारा मन गुलाम नहीं है। और आज जब हम आज़ाद हैं···हमारा मन गुलाम हो गया है।"

"ब्रिटिश साम्राज्य का सबसे खौफ़नाक पहलू है यह," अविजित ने कहा, "हम खुद अपने से बेग़ाने हो गए हैं। उनसे नफ़रत करने के बजाय खुद से नफ़रत करने पर मजबूर हैं। जर्मनी ने जब किसी देश को जीता इतनी बर्बर क्रूरता से उस पर शासन किया कि उसके मन में उसके लिए गहरी नफ़रत और प्रतिशोध की भावना पैदा हो गई। पर ब्रिटेन ने हिन्दुस्तान पर दो चेहरे लगाकर इस खूबी से राज किया कि हिन्दुस्तानी इलीट खुद अपने देश में विदेशी हो गया। आस्ट्रेलिया की तरह कम जनसंख्या वाला देश तो था नहीं भारत कि मूल निवासियों को जंगलों में खदेड़कर नगरों में अंग्रेज़ों को बसाया जा सकता। बस यही एक तरीक़ा था; आम जनता का शोषण करो पर इलीट को बेइज़्ज़त मत होने दो। यू भी इलीटिस्ट समाज में इलीट अपने को जनता से अलग समझता है। अंग्रेज़ों का अनुकरण करके जीने वाला उच्च वर्ग सामान्य आदमी से हर तरह दूर होता गया। आज़ादी चाही तो अपने लिए, देश के लिए नहीं। अंग्रेज़ों के रहते उन्हें एक सीढ़ी नीचे रहकर जीना पड़ रहा था और उनकी महत्वाकांक्षा थी सबसे ऊपर वाली सीढ़ी पर जीने की···"

"जी तो रहे हैं और ऐसे जमकर बैठे हैं कि ऊपर चढ़ने की कोशिश करने वाले हर आदमी को लात मार कर नीचे धकेल देते हैं।"

"गांधीजी अगर पुल बन पाये होते···" अविजित ने कहा।

"बने तो, अंग्रेज़ और भारतीय शासकों के बीच, इलीट और जनता के बीच नहीं बन पाये," काजल ने कहा, "जानते तो हो मैं इतिहास पढ़ाती हूं। तीन कालेजों से सिर्फ़ इसलिए इस्तीफ़ा देना पड़ा है कि मेरा पढ़ाया इतिहास पाठ्यक्रम की पुस्तकों से मेल नहीं खाता। अपने बच्चों को अब भी हम वही इतिहास पढ़ाते हैं जो अंग्रेज़ों ने हमारे लिए लिखा था।"

"हमने लिखा नहीं···"

"लिखा तो छपा नहीं। छपा तो पढ़ा नहीं गया, पढ़ाया कैसे जाता। मैंने ब्रिटिश शासन काल पर दो किताबें लिखीं, छपीं भी पर मेरे सिवा शायद ही किसी ने पढ़ी हों। इससे तो १९४७ के पहले लिखती तो अच्छा रहता। मुख़ालफ़त करने को ही लोग उन्हें पढ़ डालते पर अब···"

"एक किताब मैंने लिखी थी···" सिर नीचा करके अविजित ने कहा।

"सच ?" काजल ने उत्साह के साथ कहा, "क्या नाम है ? किस विषय पर है ? कहां से छपी ? एक ख़रीदार तो अपना पक्का समझो।"

"हो तब तो," अविजित ने कहा।

"क्यों, क्या हुआ ?"

"जब लिखी, ज़ब्त हो गई और साल ही भर में मेरी हिम्मत टूट गई··· अब···"

"कब लिखी थी ?"

"१६४२ में।"

"ओह," कहकर काजल चुप हो रही।

"कहो न," अविजित ने कहा, "तुम तो एकदम कायर निकले।"

काजल चुप रही।

"शुक्रिया," अविजित ने कहा।

काजल ने उसकी तरफ़ देखा।

" 'नहीं' न कहने का," उसने कहा।

"अविजित," काजल ने पुकारा तो बीच ही में वह तल्खी से कह उठा, "पर लोग मुझे कायर नहीं कहते। आजकल कोई इन बातों को सुनना तक पसन्द नहीं करता!"

काजल ने कुछ नहीं कहा।

कुछ देर चुप रहकर अविजित बिल्कुल बदले स्वर में बोल उठा, "अपना घनिष्ठ अतीत क्या इतनी आसानी से भुलाया जा सकता है, मैं···"

"भुलाया नहीं जा सकता, सही है पर उसे अपने पर हावी भी नहीं होने देना चाहिए," उसके स्वर के विषाद से द्रवित होकर काजल कह उठी। फिर तनिक-सा हंस कर बोली, "मुझ पर तो आरोप ही यह है कि मैं झूठा इतिहास नहीं पढ़ाती। अतीत की कड़ुवाहट को चीनी मिलाकर गले से उतारने लायक़ नहीं बनाती। नहीं, अविजित अतीत को सहा जा सकता है, माफ़ किया जा सकता है पर भुलाया नहीं जा सकता। जिस क़ौम का इतिहास झूठा होता है, उसे हमेशा के लिए झूठ के बल पर जीने की आदत पड़ जाती है।"

अविजित समझ गया, सत्य के आगे उसकी क्षणिक सहानुभूति दब गई है। वह कुछ देर चुपचाप बैठा रहा, फिर लम्बी सांस खींच कर बोला, "चलूं···"

दफ़्तर···श्यामा···घर···उद्योगमंत्री मुकर्जी···और कहीं दूर टिमटिमाता सोता···

"सुनो," काजल ने उसे खड़े होते देख कर कहा, "तुम्हारी किताब की कोई तो प्रति होगी।"

"शायद हो।"

"मुझे देना।"

"क्या करोगी ?"

"अपनी तीसरी किताब लिखूंगी," काजल ने हंसकर कहा, "अतीत किसी का हो, है तो इतिहास का हिस्सा ही।"

"दूंगा," अविजित ने कहा और जाने के लिए मुड़ गया, पर दरवाज़े पर पहुंचने से पहले पलट गया और बोल पड़ा, "तुम जैसा दोस्त मुझे फिर कभी नहीं मिला।"

काजल के मुंह पर लाली दौड़ गई। मधुर हंसी हंसकर उसने कहा, "देखा···बदसूरत होने में कितना फ़ायदा है।"

यह व्यंग्य नहीं है, आश्चर्य से अभिभूत अविजित ने सोचा, सिर्फ़ सच है। कितनी आसानी से बिला तल्ख़ी कह डाला इसने।

अगर हिम्मत करके, बीस-बाईस साल पहले ही वह काजल से कह पाता···काजल मैं तुम्हें प्यार नहीं कर सकता, मैं उन बेवकूफ़ आदमियों में से एक हूं जिनके लिए औरत महज़ जिस्म है और जिस्म का ख़ूबसूरत होना लाज़िम है···

क्यों नहीं समझ पाया वह कि कोई औरत ऐसी भी हो सकती है जिसके मन में ख़ूबसूरत न होने पर कोई हीन भावना न हो, जो सच का सामना करने में कतराती न हो, जिसे करुणा की ज़रूरत न हो।

करुणा ! पौरुष के दम्भ से उत्पन्न करुणा !

कैसा पौरुष ! कैसा दम्भ ? शरीर में धधकती आग जो व्यक्तित्व की पूर्णाहुति लेकर ज़हरीला धुआं उगला करती है···उम्र-भर उसका कसैलापन सांस के साथ फेफड़ों में घुलता रहता है। हर आदमी को सलीब पर लटकाया नहीं जाता। कुछ ख़ुद सलीब गाड़ते हैं और ख़ुद जाकर उस पर टंग जाते हैं··· टंगे रहते हैं उम्र-भर।

···अगर तभी मैं काजल से शादी कर लेता···कितने अभिशापों से बचा रहता ···श्यामा···अकर्मण्यता···संगीता···यह अपराध-भावना···

बचा रहता ? वाक़ई ? मेरे शरीर का अदम्य उत्ताप मुझे इस तपते मरुस्थल पर न ला पटकता ?

क्या सचमुच औरत को मैंने महज़ जिस्म समझा है। काजल के व्यक्तित्व का आदर नहीं किया, अपने समकक्ष दिमाग उसमें पाकर उसका सम्मान नहीं किया, दोस्त की हैसियत से उससे स्नेह नहीं किया ? किया है भरपूर। बस···प्यार नहीं किया। नहीं, मैंने औरत को महज़ जिस्म नहीं समझा···कभी नहीं···

आप भूलते बहुत हैं, संगीता···

संगीता ! उफ़ इस जन्म में क्या अब कभी चैन नहीं मिलेगा ?

संगीता अगर प्यार करके किसी से शादी कर लेती तो वह भी विद्रूप से बच जाती और मैं भी उसके अभिशाप से बरी हो जाता···शायद। पर अब···संगीता नहीं जानती वह मुझसे कितना भयानक बदला ले चुकी है। उसे अगर बतलाऊं··· नहीं, उसे बतलाया नहीं जा सकता···किसी को नहीं बतलाया जा सकता···

रंजना अगर मुझे पहले मिली होती। पर नहीं ··· क्या होता तब ? इतना प्यार आदमी तभी कर सकता है जब अपने से भरपूर नफ़रत कर चुका हो···कैसा श्राप

दिया तुमने संगीता कि वरदान बन खिल आया।

क्या कहा था काजल ने···अतीत को अपने पर हावी मत होने दो···अतीत को सहा जा सकता है, माफ़ किया जा सकता है···तुम्हारा बहुत शुक्रिया, काजल···सहूंगा मैं अपने अतीत को उसका सामना करके···

श्यामा से मैंने विवाह किया···

'उसे एक खूबसूरत खिलौना समझकर।' अनित्य होता तो कहता। क्यों होता अनित्य ? जब भी मैं सोचना शुरू करता हूं, अनित्य वहां क्यों मौजूद हो जाता है···

'किसी की खूबसूरती पर मुग्ध होना अपराध है क्या ?' उसने सफ़ाई दी।

'नहीं, दम्भ।'

'दम्भ ?'

'हां, दम्भ। दम्भी लालच। औरत कोई कालीन है या मूर्ति या फूलों का गुलदस्ता कि उसकी खूबसूरती देखकर आप उसे हासिल करने को बेचैन हो जाएं ?'

'पर श्यामा की तरफ तुम्हीं ने मेरा ध्यान खींचा था, याद है ?'

'मैंने ? मैंने कहा और आप मान गए ! बात यह है भाईसाहब, मैं जानता था आप सिर्फ़ ऐसी औरतों को प्यार कर सकते हैं जिन पर ऊंचाई से कृपादृष्टि डाल सकें। काजल का व्यक्तित्व आपके व्यक्तित्व से बड़ा था, इसीलिए आप···"

'मानता हूं, अनित्य, स्वीकार करता हूं, काजल का व्यक्तित्व मुझसे बड़ा है पर···'

'और संगीता का ?'

'संगीता ? वह···वह तो मेरी तरह ही···कमज़ोर है।'

'कम-अज़-कम अपने को धोखे में तो नहीं रखती।'

'धोखे में मैंने भी उसे कभी नहीं रखा। पर मेरी ज़िम्मेवारियां···श्यामा··· मुझे उसके लिए सोचना था···'

'हां, खूबसूरत खिलौना जिस्मानी खेल खेलने से इन्कार कर दे तो सोचना बहुत पड़ता है।'

'मैंने श्यामा पर कभी कोई ज़्यादती नहीं की।'

'नहीं, आप कमज़ोर पर ज़्यादती नहीं करते, बस उसकी कमज़ोरी को बढ़ाते हैं। श्यामा अनुग्रह मांगती गई, आप देते गए, वह मांगती गई···'

'अनित्य ! ज़्यादती तुम कर रहे हो मुझ पर !' अविजित ने चीखकर कहा।

कहां है अनित्य ? अनित्य मेरे मुंह पर यह सब कहेगा ? हां, कह सकता है, वह कुछ भी कह सकता है।

पर कितना कुछ है जो अनित्य नहीं जानता और अविजित जानता है···क्या सचमुच कुछ है अविजित का जो अनित्य नहीं जानता···जानता हो भी तो···उससे बड़ी त्रासदी यह है कि अविजित जानता है···अपने को खूब अच्छी तरह जानता है···

६

"अगले इतवार को संगीता की शादी है," श्यामा ने कहा।

उसके स्वर के उत्साह से अविजित चौंक उठा।

"जाना चाहती हो?" समझ कर उसने कहा।

"अभी तो पूरा हफ़्ता है," श्यामा ने रुक-रुक कर कहा, "अगर तब तक···उठ सकूंगी मैं?"

"क्यों नहीं," अविजित ने अपने स्वर को जोशीला बना कर कहा, "चलो, अभी तुम्हें कुर्सी पर बिठलाए देते हैं···शाम को गाड़ी पर चक्कर लगवा देंगे···देखना परसों तक तुम खाने की मेज़ पर बैठकर खाना खाओगी···एक हफ़्ते में क्यों नहीं होगा, ज़रूर होगा।"

यही परिपाटी है।

हर बार, कुछ दिन रोगशैया पर गुज़ार लेने पर, श्यामा यूं ही अविजित के सहारे रेंग-रेंग कर बिस्तर छोड़ती है और कुछ हफ़्तों के लिए इस लायक़ हो जाती है कि सारा दिन आराम करने के बाद, शाम को थोड़ा-बहुत बाहर घूम आए, खाने की मेज़ पर बैठकर सबके साथ खाना खा ले और जमकर प्रोत्साहित किये जाने पर, एकाध नाटक या चलचित्र भी देख आए।

ऐसे दिनों में अविजित को खूब सतर्क रहना पड़ता है। ज़रा-सी ग़लती, छोटे-से-छोटा मानसिक संताप भी उसे वापिस बिस्तर पर धकेल देने के लिए काफ़ी होता है; अनजाने बोला गया एक तल्ख़ जुमला, बच्चों की आपसी लड़ाई, नौकरों की चिख-चिख, कुछ भी।

पहले-दूसरे दिन जब उसके पांव बिस्तर और कुर्सी के बीच लड़खड़ा रहे होते हैं, इस क़दर सावधानी बरतनी पड़ती है कि सांस भरने और छोड़ने के बीच भी अवि-जित को सोच लेना पड़ता है।

अविन

अविजित ने आरामकुर्सी को पलंग से सटा कर रख दिया। दोनों हाथों का सहारा देकर श्यामा को विस्तर पर से उठाया और क़रीव-क़रीव गोदी में लेकर कुर्सी पर विठला दिया।

स्वर्णा ने पानी का गिलास आगे वढ़ा दिया। अविजित ने उसके ओठों से लगा दिया। दो घूंट भर कर श्यामा आंखें मूंदे वैठी रही। अविजित की हिम्मत नहीं हुई कि कह सके, आंखें तो खोल लो।

खोखी आकर दरवाज़े पर डले परदे के पीछे खड़ी हो गई। शुभा दबे पांव कमरे के इर्द-गिर्द चक्कर काटती रही। वरावर के कमरे में प्रभा किताब हाथ में लिए दम साधे वैठी रही।

"पांच मिनट हो गए," कुछ देर वाद श्यामा ने पूछा।

"हां," अविजित ने घड़ी देखकर कहा।

"लेटूंगी।"

उसी सदय सतर्कता के साथ अविजित ने उसे वांहों में घेरा और विस्तर पर लिटा दिया।

उसी वक्त 'अन्ना-अन्ना' पुकारता सुधांशु कमरे में घुस आया। सब लोग घवरा गए पर स्वर्णा ने आगे वढ़कर फ़ौरन उसे पकड़ लिया और वाहर भाग गई। परेशान से अविजित ने श्यामा की तरफ़ ताका पर वह बुत बनी पड़ी थी। शायद सुधांशु की आवाज़ उस तक नहीं पहुंची थी। सवने तसल्लीवख्श सुकून महसूस किया। मुहिम की पहली मंज़िल विला अड़चन तय हो गई। श्यामा ने एक वार भी नहीं कहा कि उसे चक्कर आ रहा है। अविजित के दिमाग़ को कुछ कचोटता ज़रूर रहा—सुधांशु तुतलाता क्यों है ? पर श्यामा की ढेर सारी ज़रूरतों के वीच सवाल दो-चार वार उठकर खुद दव गया।

कुल मिलाकर उस दिन वह हल्का मन लेकर ही खाने के कमरे की तरफ़ चला। कल से श्यामा भी यहां वैठकर खा पाए शायद। अच्छा लगता है जब वह उन सब के साथ होती है, जैसे वे भी एक सामान्य नार्मल परिवार के सदस्य हों। श्यामा की उनके जीवन में क्या भूमिका है ? फिर भी·· उनमें से कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि एक दिन नीम-अंधेरे कमरे के उस कोने में विस्तर पर पड़ी यह औरत नहीं रहेगी।

हर वार कोई छोटा-मोटा लक्ष्य सामने रखकर ही श्यामा विस्तर छोड़ने के अभियान में जुटती है। इस वार है संगीता की शादी। काश, कुछ और होता। संगीता का व्याह देखने जाने का अविजित को कोई चाव नहीं है। उसकी शादी को लेकर उसके मन में कोई रंजिश नहीं है। खुशी के लिए अपनी पसन्द से शादी करती तो···अविजित को मुक्त होने का एक रास्ता मिल जाता, एक तर्क। पर अव ? इतनी गहरी वितृष्णा मन में रखकर शादी कर रही है, किसे दण्ड देने को ? अपने को, अविजित को या उस

तीसरे प्राणी के जरिये पूरी दुनिया को—जिसका इसके सिवा कोई क़सूर नहीं है कि उससे नफ़रत की जा सकती है।

नहीं, अब आज यह सब नहीं सोचूंगा, अविजित ने अपने को फटकार दिया और चेहरे पर मुस्कराहट लाकर खाने के कमरे में दाखिल हुआ।

"सब भात खत्म करना है, समझा," मेज पर स्वर्णा खोखी को डांट रही थी।

"भात का एक कौर छोड़ेगा तो मालूम एक साल अकाल पड़ेगा।"

"क्यों नाहक उसे डरा रही हो," अविजित ने हंस कर कहा, "अकाल कम खाने से नहीं, ज्यादा खाने से पड़ता है।"

अविजित की हंसी का जादू स्वर्णा पर नहीं चलता।

"ज्यास्ती लेने को नहीं बोला हम," उसने कहा, "पर जो लेगा खतम करेगा। अन्न का अपमान करेगा तो अकाल पड़ेगा जरूर।"

"जितनी खुशगवार बातें खाना खाते वक़्त हमारे घर पर होती हैं, शायद ही कहीं होती हों," प्रभा ने कहा, "एक रोटी देंगी मायाजी।"

रोटी उसे पकड़ा कर स्वर्णा ने उग्र स्वर में कहा, "खाली मजाक करता है। देखा है अकाल कभी?"

"नहीं।"

"हम देखा है। बंगाल का अकाल—तैंतालीस में।"

"जाने दो," अविजित ने टोका, पर स्वर्णा ने ध्यान नहीं दिया।

"हिन्दु लोग गाय नहीं खाता न, पर हम देखा···अपना आंख से···कलकत्ता में···एकटा गाय पट कर के सड़क पर गिरा और मर गया। एक सैकिण्ड का भीतर पचास मानुष ऊपर आ कर जुट गया। हाथ से खींच-खींच कर खाल उधेड़ने लगा। एक आदमी चाकू निकाल कर वहीं उसको काट डाला। काटा तो खून गिरा। गिरने नहीं दिया वो लोग। चट-चट कर चाट गया। सारा मानुष टूट पड़ा उस पर। कच्चा मास नोच-नोच कर खाने लगा। वो धक्का-मुक्की मचा कि क्या बोले। दो बेचारा मानुष सह नहीं पाया तो पट से सड़क पर गिर पड़ा, जाने मरा कि बेहोश हो गया। हम अपनी आंख से देखा, चार आदमी चुपके से निकला और उन दो मानुष को घसीट कर गली में ले गया। हम बोलता है तुम को···उनको भी वो लोग वैसे ही नोच-नोच कर खाया होगा—गाय का माफिक···"

"ओः!" मुंह पर हाथ रख कर शुभा उठी और बाहर बेसिन पर दौड़ गई।

"एई, क्या हुआ? किधर जाता है," स्वर्णा ने पुकारा, "खाना छोड़ कर किधर गया?"

"रहने दो उसे," अविजित ने क्षुब्ध स्वर में कहा, "खाने के वक्त ये सब बातें···"

यों साहब," स्वर्णा ने कहा, "जब अकाल पड़ा तब तो कोई खाना नहीं बिहारी अढ़तिया उन्हीं दिनों चार मंजिल का मकान नहीं बनवाया ?"

अविजित के पास कोई जवाब नहीं था।

"शुभा, ओ शुभा !" स्वर्णा ने फिर पुकारा।

"छोड़ न उसे," प्रभा ने कहा, "वह अब नहीं खाएगी।"

खोखी ने शुभा की थाली पास सरकाई और उसमें बचा पड़ा खाना, कौर बना कर, जल्दी-जल्दी निगलने लगी।

"अरे-अरे, क्या करती है," प्रभा ने हतप्रभ भावसे कहा, "उसका जूठा क्यों खा रही है ?"

"भात छोड़ने से अकाल पड़ता है," खोखी ने आतंकित भाव से कहा और निवाले निगलती रही।

प्रभा एकटक उसे देखती रही। विस्मय, वितृष्णा और प्रशस्ति का मिला-जुला भाव उसकी आंखों में तैरा और धीमे से उसने अपनी थाली भी उसके आगे सरका दी। कहा, "यह भी खा ले।"

"प्रभा !" अविजित चीख उठा, "मजाक मत उड़ाओ उसका !"

"आई एम सॉरी," भौंचक प्रभा ने कहा, "पर मैंने मजाक नहीं उड़ाया उसका।"

"और रोटी लेगा ?" स्वर्णा ने पूछा।

"नहीं-नहीं !" प्रभा और अविजित ने इकट्ठा कहा और थाली में बचा खाना निबटाने लगे।

अकाल के दिनों में चौमंजिला मकान रासबिहारी अढ़तिया ने बनवाया था, मैंने नहीं, अविजित सोच रहा है, मैं तो उन दिनों जेल में था। स्वर्णा ने जो कहा, जरूर देखा होगा पर उसमें मेरा क्या क़सूर ? फिर रासबिहारी का गिल्ट मुझे क्यों खगोर रहा है ? मैं तो जेल में था और जेल से छूटने पर सीधा दिल्ली आ गया था।

ठीक है, मेरे जेल चले जाने पर श्यामा और बच्चों को कोई दिक्क़त नहीं हुई थी। कलकत्ते में मैं बिड़ला ग्रुप के साथ काम करता था, वे भले लोग हैं, मुझे जेल होने पर पूरे साल मेरी तनख्वाह श्यामा को पहुंचाते रहे थे। जेल में भी मेरे साथ १९३२ की तरह का दुर्व्यवहार नहीं हुआ। पर उसमें मैं क्या कर सकता हूं···अगर मैं बिड़ला कम्पनी में अच्छी पोज़ीशन पर था और बिड़ला ग्रुप का वॉर एफ़र्ट, ब्रिटिश सरकार के लिए मानी रखता था, तो···महज़ एक संयोग की बात है और फिर···बिड़ला जी को तो खुद गांधीजी ने मान दिया था। हर्ज भी क्या है ? अगर कोई उद्योगपति सत्याग्रह में हाथ बंटाना चाहे···आखिर पैसे के बिना सत्याग्रह चल नहीं सकता और जो शौक़ से दे उसके लेने में हर्ज क्या है ? वैसे भी यह सब सोचना मेरा काम नहीं था, कुछ भी सोचना

मेरा काम नहीं था। हमने तो गांधीजी को नेता ही नहीं भगवान माना था, सिर्फ़ मैंने नहीं, मेरे जैसे लाखों-करोड़ों लोगों ने, इसलिए सोचने का काम उनके ज़िम्मे था।

पर ऐसा हुआ क्यों ? क्यों हमने नेता नहीं, भगवान चाहा ?

क्यों ! एक प्रलयंकारी शब्द ! क्यों पूछ कर काम करो तो अपने पर निर्भर रहना पड़ेगा। क्यों पूछने का अधिकार त्याग दो एक बार, मन की सब दुविधाएं मिट जाएंगी।

अन्ध-भक्ति और निर्द्वन्द्व अनुकरण—उसने मांगा, हमने दिया। या हमने देना चाहा, वह ग्रहण करता गया।

"अवश्य ही जब मैं मरूंगा तो भी मेरी ज़बान पर अहिंसा ही होगी लेकिन जिन मायनों में मैं इसमें बंधा हुआ हूं आप नहीं बंधे इसलिए आपको अधिकार है कि आप दूसरा कार्यक्रम बनाकर देश को आज़ाद करा लें," गांधीजी ने कहा था।

उनकी तरफ़ से पूरी छूट थी। पर देश को आज़ाद करवाने के लिए जनक्रान्ति की ज़रूरत थी और जनमानस को भगवान की, इसलिए इसके सिवा कोई विकल्प नहीं था कि 'क्यों' पूछना छोड़कर भगवान के आदेशों का मूक पालन किया जाए। पर··· कुछ लोगों में 'क्यों' आसानी से नहीं मरता···फिर भी···जाने दो···अविजित ने गांधी जी को माना, गांधीजी ने बिड़लाजी को माना और अगर बिड़लाजी के कारण अविजित को जेल में 'ए' क्लास मिल ही गई तो वह मना क्योंकर करता ? कौन जाने बिड़लाजी का 'वॉर एफ़र्ट' काम आया या ससुर जज सिंघल का ओहदा ? फिर अविजित का जुर्म ही क्या था ? एक किताब ही तो लिखी थी। छपते ही ज़ब्त हो गई। जिसने छापी उसे भी गिरफ़्तार कर लिया गया···बेचारा अवधनारायण ! 'बी' क्लास में जेल काटनी पड़ी, छापाखाना अलग ज़ब्त हो गया। जेल से छूटकर आया तो सुना था, खाने तक को मोहताज···

छोड़ो···इतनी पुरानी बात हो गई··· अब उसका क्या ज़िक्र···

अविजित सिगरेट जलाकर सोफ़े पर बैठ गया···सामने पड़ी पत्रिका हाथ में उठा ली। बेकार ! वह जानता है कोई फ़ायदा नहीं होगा···वह कुछ भी कर ले···अब उसे चड्ढा याद आएगा···

लंगड़ा चड्ढा ! फतेहगढ़ जेल से छूटकर आया, हड्डियों का ढांचा चड्ढा !

'सी' क्लास का क़ैदी···बुख़ार आया···मशक्कत पूरी न हुई ··मार पड़ी··· एक टांग टूट गई···अंधी कोठरी में बंद कर दिया गया···कम्बल छीन लिया गया··· बुख़ार निमोनिया में बदल गया···

"इससे वज़न कुछ घट गया, यही बीसेक पौंड," चड्ढा ने हंसकर कहा था, "वरना अभी भी तेरे जैसे दो-तीन को···" और इतना कहकर ही हांफ गया था।

"आराम करो," अविजित ने भरे गले से कहा था, "बहुत कमज़ोर हो गए हो।"

"जब यार इन्क़लाबी शौक़ फरमाएंगे तो कुछ-न-कुछ तो होगा ही," एक बार पूरा दम लगाकर चड्ढा ठठाकर हंस दिया था। पर देर तक निढाल पड़ा रहा था।

फिर बोला, "तू बतला, तू जेल नहीं गया?"

"गया था।"

"कब छूटा?"

"बहुत दिन हो गए। साल-भर ही रहा।"

"हां, अपने को कुछ ज़्यादा ही घिस डाला सालों ने। दुनिया में क्या कुछ हो गुज़रा और हम जेल में पड़े सड़ते रहे। अच्छा यह बता, हमने लड़ाई बन्द क्यों कर दी? ब्रिटेन अपनी लड़ाई जीत गया पर हम? गांधीजी ने कहा—करो या मरो—और जब जनता कर गई तो कह दिया इस आन्दोलन से हमारा कोई ताल्लुक़ नहीं है, क्यों?"

क्यों? चड्ढा के भीतर का 'क्यों' तब भी ज़िन्दा था। बार-बार वह 'क्यों' पूछता था और अविजित…

पहली बार 'क्यों' उसने पूछा था उस दिन…सत्ताइस फरवरी उन्नीस सौ इकतीस को। उसके बाद से बदलता ही चला गया था चड्ढा…बदलता या ऊंचा होता…

उस दिन…

"देख रहा है, अविजित," चड्ढा ने कहा था।

"हां।"

"बस देखता ही रहेगा, अविजित," चड्ढा ने कहा था, "यह नहीं पूछेगा वह वहां अकेला क्यों मर गया?"

अविजित के पास जवाब नहीं था। वह देखता ही रहा था—स्तब्ध, रोमांचित, लज्जित।

वह क्या, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के हिन्दू बोर्डिंग हाउस के सभी साथी देख रहे थे। देख रहे थे कि पुलिस के सिपाही चन्द्रशेखर आज़ाद के शव को ट्रक पर लाद रहे हैं…देख रहे थे और चुप थे…

सुबह नौ बजे के क़रीब, कोतवाली से सिटी रोड पर मस्कट सम्भाले पुलिस जवानों को आता देख, अविजित और चड्ढा बाहर अहाते में खिंच आए थे। उनके देखते-देखते जवानों ने एल्फ्रेड पार्क घेर लिया था और फिर…गोलियां चलने की धांय-धांय हॉस्टल को दहलाती हुई कितने लड़कों को बाहर निकाल लाई थी।

दनादन गोलियां चलती रही थीं। एक…दो…तीन…हर धमाके के साथ अविजित का दिमाग़ आगे का नम्बर जोड़ लेता था।

जल्दी ही नम्बर बरगला गया था। न जाने कितनी गोलियां एक साथ गुर्रायी

थीं

कौन है अन्दर ? कौन ? अविजित का दिमाग़ तड़क रहा था।

भीड़ बढ़ रही थी।

लोग बौखला रहे थे।

बार-बार एक-दूसरे से पूछ रहे थे—कौन है यहां ? कौन ? कौन ?

"···कोई क्रान्तिकारी है।'

"कौन ?"

"पता नहीं।"

"कितने लोग हैं ?"

"गोलियों की आवाज़ से लगता है चार-पांच तो होंगे ही।"

"कौन लोग हैं ?"

"पता नहीं।"

"सुना है, आज़ाद है, चन्द्रशेखर आज़ाद।"

"आज़ाद इलाहाबाद में हैं ?"

"सुना है, चांद के सम्पादक से मिलने आए हैं।"

"तुम्हें कैसे मालूम ?"

"मालूम है। मैं इण्डियन प्रेस में काम करता हूं।"

"ओह···तब तो···"

"हां, वही हैं। वही !"

"और कौन है ? कौन-कौन हैं ?"

"आज़ाद हैं। पक्की बात है, आज़ाद ही हैं।"

"और···? और कौन है साथ में ?"

"और कोई नहीं है। बस आज़ाद हैं।"

"नामुमकिन ! यह कैसे हो सकता है ? अकेला आदमी···इतनी गोलियां···"

भीड़ में सन्नाटा छा गया।

अकेला ! एक आदमी, अकेला, गोलियों का सामना करता हुआ और इतने सारे लोग बाहर, गोलियों की पहुंच से दूर, सुरक्षित, निष्क्रिय !

अगर हम सब मिल कर पार्क पर धावा बोल दें, अविजित ने सोचा था, कम नहीं, यहां सौ लड़के तो होंगे।

पर···होगा क्या ? एक जलियांवाला बाग़ और बन जाएगा।

एक के बजाय सौ शहीद !

क्यों नहीं ? सत्याग्रह के मानी ही हैं शहादत, पर ·

गान्धीजी ने आन्दोलन बन्द कर रखा है···लार्ड इर्विन से समझौते की बातचीत

चल रही है।

"देख रहा है अविजित," चड्ढा चीखा था, "वह वहां अकेला है।"

अविजित चुप रहा था।

"मैं जाता हूं," चड्ढा ने कहा था और आगे दौड़ पड़ा था।

"पागलपन मत कर," अविजित ने उसे कौली में भर कर रोक लिया था।

"तू उस तक नहीं पहुंच सकता, बीच ही में भुन जाएगा।"

"तो ऐसे ही देखता रहूं ?" चड्ढा ने कहा था और देखता रहा था···

"काश, मेरे पास एक पिस्तौल होती," उसने कहा था और खड़ा रहा था···

गोलियों का शोर धीमा पड़ता हुआ दम तोड़ गया था।

एक अंतिम गोली ज़ोर से सुबकी थी···फिर मातमी चुप्पी छा गई थी···

उन्होंने देखा था, पुलिस के जवान अपना शिकार ट्रक पर लाद रहे हैं···

"आज़ाद का शव हमें दो ! आज़ाद का शव हमें दो !" चीखता चड्ढा सहसा अविजित का हाथ छुड़ा कर आगे दौड़ गया था।

पुलिस के सिपाहियों ने उसकी तरफ़ देखा तक नहीं था।

"आज़ाद का शव हमें दो !" चड्ढा मुतवातिर चीख रहा था और पुलिस के घेरे को तोड़ उन तक पहुंचने की कोशिश कर रहा था। बरबस अविजित और साथी लड़के उसके पीछे खिंचे चले आ रहे थे।

अंग्रेज पुलिस अफ़सर और हिन्दुस्तानी सिपाहियों के चेहरों पर नफ़रत और हिक़ारत ही नहीं, वहशियाना गर्व भी चिलक रहा था। सचमुच क्या यह लोग हिन्दुस्तानी हैं, अविजित ने सोचा था और समझा था कि उस वक़्त वे हिन्दुस्तानी या अंग्रेज नहीं, महज़ शिकारी थे जिन्होंने तभी-तभी शेर का शिकार खेला था। गीदड़ों की इस भीड़ की उनके लिए क्या हस्ती हो सकती थी।

"आज़ाद का शव !" इस बार चड्ढा के साथ युवकों की भीड़ भी चीखी।

पुलिस के एक सिपाही ने बड़ी लापरवाही के साथ चड्ढा की तरफ़ ताका और अपनी राइफल का कुन्दा उसके सिर पर दे मारा।

खून से लथपथ चड्ढा अविजित की बांहों में आ गिरा और···आज़ाद के शव के बजाय घायल चड्ढा को उठाए वे लोग बोर्डिंग हाउस लौट आए !

"कोई गड़बड़ नहीं होनी चाहिए," बाद में अविजित ने लड़कों से कहा था, उस क्षणिक उबाल के शान्त हो जाने के बाद। "आजकल गांधीजी और लार्ड इर्विन के बीच समझौते की बातचीत चल रही है। ऐसा कोई वारदात नहीं होनी चाहिए जिससे उस पर बुरा असर पड़े।"

"क्यों ? समझौता क्यों ?" चड्ढा ने पूछा था। और हमेशा की तरह अविजित के पास 'क्यों' का जवाब नहीं था।

जिसने सवाल पूछने का अधिकार किसी और के हवाले कर दिया हो, उसके पास जवाब होगा भी कैसे ?

घण्टे भर के अन्दर एल्फ्रेड पार्क में मेला लग गया था। लगता था पूरा इलाहाबाद शहर वहां उमड़ पड़ा है।

मैदान की खून रिसी मिट्टी को सिर लगा कर लोग शहादत के हिस्सेदार बन गए। पेड़ पर फूल मालाएं चढ़ गईं। शहीद के नाम पर चन्द आंसू बिखर गए।

किसी ने उनसे नहीं पूछा, तुम लोग तमाशबीन बने क्यों खड़े रहे। पर बहुत दिनों तक हिन्दू बोर्डिंग हाउस के लड़के एक-दूसरे से आंख नहीं मिला सके।

पांच मार्च १९३१ को गांधी-इर्विन समझौता हो गया और चड्ढा ने अखबार ला कर उसके सामने कॉमन-रूम में पटक दिया।

"यह विश्वासघात नहीं तो क्या है ?" उसने कहा।

अविजित ने आखें अखबार में गड़ा ली।

"यह देख, यह !" चड्ढा ने उंगली से दिखलाया।

अविजित ने पढ़ा—धारा नम्बर दो के अंतर्गत विधान सम्बन्धी प्रश्न पर सम्राट सरकार की अनुमति से यह तय हुआ है कि हिन्दुस्तान की वैध शासन की उसी योजनापर आगे विचार किया जाएगा जिसपर गोलमेज कान्फ्रेन्स में पहले विचार हो चुका है। वहां जो योजना बनी थी, संघ शासन उसका अनिवार्य अंग है, इसी प्रकार भारतीय उत्तर-दायित्व और भारत के हित की दृष्टि से रक्षा (सेना), वैदेशिक मामले, अल्पसंख्यक जातियों की स्थिति, भारत की आर्थिक साख और जिम्मेदारियों की अदायगी जैसे विषयों के प्रतिबन्ध या संरक्षण भी उसके आवश्यक भाग है —

"यह कैसे हो सकता है ?" अविजित के मुंह से निकला।

"एक साल पहले ही तो पूर्ण स्वाधीनता का लक्ष्य हमने धूम-धड़ाके के साथ अपनाया था और अब गोलमेज कान्फ्रेन्स के लिए लन्दन जाना स्वाधीनता का पर्याय हो गया," चड्ढा ने कहा।

"ऐसा नहीं हो सकता," अविजित ने कहा, "ज़रूर इसमें और धारा होगी··· कुछ तो लिखा होगा कहीं···पूरा पढने दो मुझे।"

"कहीं कुछ नहीं है," हरीश ने भीतर घुसते हुए कहा था, "मैंने पूरा पढ लिया है। गांधीजी ने नमक बनाने की इजाजत के लिए देश को बेच दिया।"

"बकवास मत कर।" सरण ने तमक कर कहा।

वह हरीश के साथ उससे लड़ता-झगड़ता ही भीतर आया था।

"गांधीजी की बात तेरे भेजे में नहीं आती तो बेकार टिर-टिर क्यों किए

जा रहा है। यह देख, साफ़ लिखा तो है यहां—गांधीजी ने अखबार वालों से बातचीत करते हुए कहा है कि वे स्वतंत्रता के प्रश्न पर अटल हैं। 'भारत के हित में' शब्दों का अर्थ उन्होंने यही लगाया है।" उसने सफ़ाई देते हुए कहा।

"गान्धीजी के अर्थ लगाने से क्या होता है। बाक़ी लोग अन्धे-बहरे हैं क्या? अगर कल को गान्धीजी कहने लगें कि भारत की स्वतंत्रता का अर्थ है अंग्रेजी शासन का और तीस बरस टिके रहना तो तुम लोग उसे भी मानकर बैठ जाओगे," हरीश ने बिदक कर कहा।

"क्या इसी लिए हमने साइमन कमीशन का विरोध किया था? इसीलिए पुलिस के डंडे खाये थे? इसीलिए एक साल से हमारे लोग बहादुरी दिखला रहे थे?" पास बैठा निखिल बेहद उत्तेजित हो कर बोल उठा।

"और मालूम है," हरीश ने कहा, "भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव का जिक्र तक करना गान्धीजी ने जरूरी नहीं समझा। इतनी बड़ी-बड़ी सिद्धान्त की बातें और वक़्त आने पर अपना संगठन सब कुछ हो गया। कांग्रेस के सत्याग्रही जेलों से छोड़ दिये जाएँ, बस सविनय-आज्ञा-भंग-आन्दोलन वापिस ले लिया जाएगा। उन लोगों से कोई सरोकार नहीं है जो स्वतंत्रता के लिए अपनी जान की बाज़ी लगा चुके हैं।"

"अरे, बंगाल में सैकड़ों आदमी नज़रबन्द है, सैंकड़ों। मुक़दमा चला नहीं, सजा हुई नहीं पर जेल में बन्द है। उनका क्या होगा? कौन सोचेगा उनके लिए?" चटर्जी बोला।

"मेरे मामा एक खबर सुना रहे थे," निखिल ने इधर-उधर देख कर स्वर धीमा करके कहा।

"क्या?" सब चौकन्ने हो गए।

"कह रहे थे, कुछ दिन पहले चन्द्रशेखर आज़ाद जवाहरलाल जी से मिले थे।"

"क्यों?"

"यही सवाल उठाने। उन्होंने यही पूछा था उनसे, समझौता होने पर उन क्रांतिकारियों का क्या होगा जो गांधीजी के आन्दोलन से अलग रह कर काम कर रहे थे। क्या वे लोग वैसे ही पुलिस की निगाहों से छिपते फिरते रहेंगे। उन्हें क्या कभी चैन से बैठने नहीं दिया जाएगा?"

"फिर?"

जवाहरलाल जी ने कहा, "वे उनके लिए कुछ नहीं कर सकते।"

लड़कों के बीच सकता छा गया। छह दिन पहले का दृश्य आंखों के सामने उभर आया। अविजित के बदन की खाल सिकुड़ उठी, जैसे कोई भूत उल्टे पांव कमरे में घूम गया हो। जो आदमी अकेला, एक पिस्तौल के सहारे बत्तीस मिनट तक चालीस पुलिस सिपाहियों से लड़ता रह कर और गोलियों से बदन छलनी हो जाने पर भी, तब तक नहीं मरा जब तक अपने हाथ की गोली खुद न खा ली, कितनी भयंकर स्थिति में किसी के पास यह पूछने गया होगा, सभी समझ रहे थे।

एल्फ्रेड पार्क के बीच खड़ा वह दीर्घकाय पेड़ जिसके पीछे से आज़ाद लड़े थे अब नहीं है। उसकी पूजा-अर्चना होती देख अंग्रेज़ कलेक्टर ने उसे जड़ से उखड़वा दिया है। फिर भी पूजा जारी है। लोग उखड़े पेड़ की पोली धरती पर ही मालाएं चढ़ा जाते हैं। अब कुछ दिन बाद भगतसिंह और उनके साथियों को भी फांसी हो जाएगी। यही सब तब भी होगा। लोग उनका नाम लेकर रोएं-पीटेंगे, फूल मालाएं चढ़ाएंगे और···सत्याग्रही छूट जाएंगे···गांधीजी लंदन जाएंगे···हम लोग हाथ-पर-हाथ धरे इन्तजार करेंगे कि वे एक और समझौता ब्रिटिश सरकार से हमारे लिए करें···बस ! बलिदान का ऋण क्या ऐसे ही चुकाया जाता है ?

"वे कर भी क्या सकते थे ?" अविजित ने सुना, सरण कह रहा है।

"क्यों, कम-अज़-कम सरदार भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव की फांसी रद्द करने को समझौते की आवश्यक शर्त बना सकते थे," हरीश ने कहा।

"इर्विन कभी नहीं मानता।"

"तो आन्दोलन चालू रखते। छब्बीस जनवरी की प्रतिज्ञा कुछ सोच कर की थी न ? इसलिए तो नहीं कि गांधीजी जब चाहें डुगडुगी बजा कर तमाशा समेट लें।"

"मामा कह रहे थे," निखिल ने कहा, "गांधीजी ने अलग से सरदार भगतसिंह और उनके साथियों की रिहाई की बात की थी पर वाइसराय ने इन्कार कर दिया।"

"अलग से !" चड्ढा जो देर से चुप था फट पड़ा था, "अलग से बात करने के मानी ? बिना दबाव के सरकार भला कोई बात क्यों मानने लगी। मैं तो कहता हूं वे चाहते ही हैं कि आतंकवादियों को फांसी लग जाए।"

"कोरी बकवास है," सरण ने कहा, "सब जानते हैं गांधीजी हिंसा के खिलाफ़ हैं इसलिए आतंकवादियों के लिए कुछ करना उनके सिद्धान्त के खिलाफ है। गोपीमोहन साहा की भी उन्होंने इसीलिए निन्दा की थी। १९२४ में ही अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की बैठक में उन्होंने यह बात साफ़ कर दी थी।"

"निन्दा तो उन्होंने वाइसराय की ट्रेन के नीचे बम विस्फोट करने की भी कम नहीं की थी। हमारा कहना है कि इस तरह की बातें ब्रिटिश सरकार को एक तरह का बढ़ावा देती हैं।"

"हां, यह तो है," अविजित ने कहा, "पर उनके सिद्धान्त की बात जो है, [illegible] वे कैसे छोड़ सकते हैं। गांधीजी किसी को अहिंसा पर चलने पर मजबूर तो नहीं करते; उन्होंने कहा तो था, जो अहिंसा को नहीं मानते उन्हें [illegible] से बाहर रह कर लड़ाई छेड़नी होगी।"

"और बाहर रह कर लड़ाई करने का [illegible] हरीश ने [illegible] कि अगवार में आंखें गड़ाए बैठा [illegible] शेखर आज़ाद के इलाहाबाद आने की खबर [illegible]

"अरे पुलिस तो [illegible]

"वही तो। [illegible]

"उनके दल के दो-तीन आदमी मुखबिर जो हो गए थे। वह जयगोपाल···और फनीन्द्र घोष और क्या नाम था···पढ़ा नहीं था अखबार में। उन्हीं की मदद से···"

"अमां, उसे तो तीन साल होने को आए। उनकी मदद से पकड़े गए होते तो अब तक कब के···"

"तुम कहना क्या चाहते हो?"

"सोच कर अजीब-सा लगता है, जवाहरलाल जी से मिले और इतनी जल्दी पकड़ लिए गए।"

"क्या मतलब!" अविजित तन कर खड़ा हो गया," तुम्हारा इशारा किस तरफ़ है?"

"मैं तो सिर्फ़ यह कह रहा हूं कि सोच कर अजीब-सा लगता है···"

"क्यों लगता है अजीब-सा! यह सोचने की हिम्मत कैसे हुई तुम्हारी? फिर ऐसी बात जबान पर मत लाना वरना···"

"वरना क्या कर लोगे तुम?"

"क्या करूंगा?" अविजित ने दोनों बाजू फैलाए और करीमबख्श को बांहों में थाम कर ऊपर उठा लिया।

उसी तरह हवा में उसे टांगे-टांगे कहा, "कर तो बहुत कुछ सकता हूं।" फिर धीरे-धीरे वापिस धरती पर उतार कर बोला, "पर करूंगा नहीं।"

"इसे कहते हैं अहिंसा," दबी जबान में हरीश ने कहा तो सब लड़के ठठा कर हंस पड़े।

गुस्से से थर-थर कांपता क़रीमबख्श कमरे से बाहर निकल गया। अविजित को लगा वह कुछ ग़लती कर गया। एक मुसलमान लड़के की इतने हिन्दू लड़कों के सामने बेइज्जती नहीं करनी चाहिए थी। पर कुछ करना भी जरूरी था वरना शक़ का वह बीज···अब हंसी के दौर में बहुत-सी कड़ुवाहट छंट गई है। बस चड्ढा···

"खामख्वाह नाराज होने का कोई फ़ायदा नहीं है," उसने कहा, "बाजुओं के जोर से तू समझौता नहीं बदल सकता।"

"समझौता जब हो ही चुका है तब हम क्या, कांग्रेस भी उसे नहीं बदल सकती, अविजित ने कहा, "गांधीजी को नेता चुना है तो उनकी बात रखनी ही पड़ेगी।"

"नेता बदले भी जा सकते हैं," हरीश ने उग्र स्वर में कहा।

"तो बदल लो," सरण ने चुनौती दी," हिम्मत हो तो मुखालफ़त करो। तलाश कर लो नया नेता।"

"हो सकता है, जवाहरलाल इसकी मुखालफ़त करें," निखिल ने कहा।

"कभी नहीं," चटर्जी बोला, "जवाहरलाल गांधीजी के खिलाफ़ कभी नहीं जाएंगे।

"फिर उपाय क्या है?" निखिल ने स्वर बदल कर कहा, "और नेता है कौन गांधीजी की टक्कर का हिन्दुस्तान में?"

"गान्धीजी के बिना कुछ नहीं हो सकेगा," अविजित ने समझदारी से कहा,

"दो-चार वारदातें कर देने से आजादी नहीं मिलेगी। शान्ति चाहे सशस्त्र हो चाहे अहिंसात्मक, सफल तभी हो सकती है जब पूरे हिन्दुस्तान में फैल सके। उसके लिए ऐसे नेता की ज़रूरत है जिसकी एक बात पर लोग मर मिटने को तैयार हों।"

"तेरा मतलब, हमें नेता नहीं, भगवान चाहिए," हरीश ने कहा।

"यही समझो। चूंकि गान्धीजी में वह शक्ति है जो लाखों-करोड़ों इन्सानों को अपने साथ बहा कर ले जा सकती है, इसलिए हमारे पास इसके सिवा कोई चारा नही है कि हम वही करें जो वे कहते हैं।"

सब लोग चुप हो रहे। सहमत हो कर नहीं, जवाबों की खोज में।

कुछ देर ठहर कर चड्ढा ने कहा, "अच्छा, अविजित, सच-सच बतला, तू क्या वाकई यह मानता है कि अहिंसा का रास्ता अपनाने से ब्रिटिश सरकार का दिल बदल जाएगा और वे लोग हिन्दुस्तान को आज़ाद कर देंगे?"

हां—ना, अविजित के मुंह से कुछ नही निकला। 'हां' कहना अपने प्रति झूठ होता और 'ना' कहना गान्धीजी के प्रति।

"अगर गान्धीजी ऐसा सोचते हैं तो हो भी सकता है," कुछ देर चुप रहकर उसने कहा।

"यानी तूने अपने लिए सोचना बन्द कर दिया है।"

"लड़ाई में आदेश-पालन खुद सोचने से ज्यादा महत्व रखता है। एक बार नेता चुन लेने पर उसके क़दम से कदम मिलाकर चलने पर ही कुछ हासिल हो सकता है," अविजित ने कहा।

कुछ देर चुप रहकर करीब क़रीब सभी लड़कों ने अविजित की बात का समर्थन किया। पर चड्ढा बोल उठा, "ऐसे नेता का क्या करो जो चार क़दम पूरब की तरफ बढ़ाये और जब तक आप उसके पीछे चलें-चलें, वह कलाबाजी खाकर अगला कदम पश्चिम की तरफ बढ़ा दे?"

"बाजीगरी करो उसके साथ, और क्या", हरीश ने कहा और सब लड़के हंस दिये।

सरण चिढ़कर बोला, "हंसना आसान है। गांधीजी में कोई तो बात होगी जो नेहरू और पटेल जैसे लोग उनके पीछे चलते हैं।"

"जादू जानते हैं, जादू," हरीश ने कहा।

"जादू कहो या आन्तरिक शक्ति। अविजित ठीक कहता है, नेता वही हो सकता है जो लाखों-करोड़ों को अपने साथ बहाकर ले जा सके।"

सरण का समर्थन अविजित को रास नही आया। सरण उन खुशकिस्मत लोगों में से है जो सोचने की जहमत ही नही उठाते, इसलिए किसी को अपने सोच पर अंकुश लगाने में क्या तकलीफ होती है, इसका अन्दाजा उन्हें नही हो सकता।

सब वह रहे थे कि अविजित की बात ठीक है और अविजित को ही अपनी बात सबसे ज़्यादा ग़लत लग रही थी।

आज चड्ढा को याद करके जो बात उसे तंग कर रही है, वही उस दिन भी परेशान कर रही थी पर···

गांधीजी का अनुयायी होने से ही क्या अविजित में अहिंसा के प्रति सच्चा विश्वास पैदा हो गया था? क्या गांधीजी की इस बात में ज़रा भी दम था कि भारत की जनता में हिंसा की भावना नहीं है। खुद कांग्रेस के सदस्य क्या सचमुच अहिंसा के हिमायती थे?

उस दिन भी अविजित सोच रहा था—पिछले दस वर्षों से कांग्रेस अहिंसा के सिद्धान्त का प्रचार कर रही है पर जब स्वयं गांधीजी ने कांग्रेस अधिवेशन में वाइसराय की स्पेशल पर बम फेंकने की निन्दा का प्रस्ताव रखा तो उनके तमाम आतंक के बावजूद वह केवल इकतीस अधिक मतों से पारित हो सका।

आतंक! बिल्कुल ठीक शब्द था। यह गांधीजी का आतंक ही था कि हमारे नेता चुपचाप उनकी बात मानते चले जाते थे।

हमारे यहां व्यक्ति पहले आता है, फिर संगठन, और सबसे बाद में सिद्धान्त। बुद्ध के ज़माने से यही पद्धति चली आ रही है। बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि का मन्त्र यही सिखलाता है; पहले व्यक्ति, फिर संगठन और सबसे बाद में सिद्धांत।

बहुत ही खतरनाक पद्धति है। व्यक्ति-पूजा का ज़हर आम आदमी को नपुंसक बना डालता है।

दूसरों के इशारों पर चलने के लिए आदमी पहले अपने से समझौता करता है, फिर औरों से और धीरे-धीरे···

समझौता उसका स्वभाव बन जाता है।

गांधीजी कहते हैं—समझौता मेरे स्वभाव का अंश है।

भगतसिंह कहते हैं—समझौता अपने में बुरा नहीं है बशर्ते कि समझौता हमारा ध्येय न हो, सिर्फ़ खुद को अगली लड़ाई के लिए मज़बूत बनाने के लिए लिया गया अवकाश हो···

कांग्रेस का ध्येय क्या है, समझौता, शासन-सुधार या स्वाधीनता? हमारे लिए हमारा लक्ष्य अधिक महत्वपूर्ण है या उस तक पहुंचने का तरीका?

आन्तरिक विश्वास के बिना आदमी अगर किसी मार्ग को अपनाये···

फिर वही प्रश्न—अहिंसा में अविजित का विश्वास था कभी···उन दिनों भी जब वह गांधीजी के नाम की माला जपता था?

वह पुलिसमैन, जिसके हाथ की लाठी उसके कन्धे और पीठ पर बरसी थी! नफ़रत

और हिक़ारत से सना उसका चेहरा ! आज भी याद आ जाता है तो मन एक गहरी प्रतिहिंसा की भावना से भर जाता है।

विदेशी कपड़े की दूकानों की पिकेटिंग करने उनका जुलूस शान्ति के साथ आगे बढ़ रहा था जब पुलिस के एक दस्ते ने उन्हें तितर-बितर करने को ललकारा। चड्ढा और अविजित सबसे आगे थे। खूब उत्तेजित होकर चड्ढा 'महात्मा गांधी की जय' चिल्लाने लगा था। चड्ढा जो काम करता था, दीवानगी की हद पर। चाहे जय बोलनी हो चाहे मुर्दाबाद का नारा लगाना हो।

और तब···घुड़सवार अंग्रेज सार्जेण्ट घोड़ा दौड़ाता हुआ आगे बढ़ आया था। एक क्षण को अविजित ने महसूस किया था कि वह उन्हें रौंदता हुआ आगे बढ़ गया। पर ठीक उनके सिर पर आकर घोड़ा रुक गया था। खूब तौलकर उस अंग्रेज ने हाथ की लाठी ठीक चड्ढा के सिर पर चलाई थी। अनायास, उसे बचाने के खयाल से या बस यूं ही अकारण, अविजित ने हाथ से उसे पीछे धकेल दिया था और खुद एक क़दम आगे बढ़ आया था। लाठी चड्ढा पर पड़ने के बजाय अविजित के कन्धे पर बरसी थी और फिर पूरे ज़ोर से पीठ पर।

उसका दिमाग़ एकदम खाली हो गया था। बदन सिर से पैर तक इस तरह थरथराया था कि वह गिरते-गिरते को हो गया था। पर वह खड़ा रहा था, एक तीखी नफ़रत का अहसास उसे सहारा दिये रहा था।

साफ़ उसने देखा था···लाठी समेत खींचकर उसने उस गोरे अफ़सर को ज़मीन पर पटक दिया है और खुद घोड़े पर सवार हो गया है। चाबुक मारकर घोड़े को आगे दौड़ाया है और उस सख्त लाल चेहरे को रौंदता हुआ आगे बढ़ गया है। मुड़कर देखा है और जुगुप्सा के साथ एक वहशी संतोष का अनुभव किया है—हां, कभी वह खून से सना मांस का लोथड़ा दम्भ से गढ़ा गोरा लाल चेहरा था, उसके प्रतिद्वन्द्वी का !

···नहीं, वह अपनी जगह अड़ा खड़ा रहा था। हाथ उठाकर वार नहीं किया था, आवाज़ बुलन्द करके प्रतिवाद नहीं किया था·· वह इम्तिहान में पास हो गया था। लाठियां बरसती रही थीं, बदन थरथराता रहा था, सिर में भट्टी धधकती रही थी पर अंग्रेज सार्जेंट घोड़े पर सवार रहा था और अविजित नीचे ज़मीन पर खड़ा मार खाता रहा था।

पर यह जीत अहिंसा की नहीं, अनुशासन की थी। दो साल से वे अपने को ऐसी वारदात के लिए तैयार कर रहे थे। दो बार पहले भी लाठी-चार्ज के शिकार हो चुके थे पर यह पहली मर्तबा था कि अविजित ने मारने वाले को इतने क़रीब से देखा था। वरना एक हुजूम लड़कों का होता था, एक टुकड़ी पुलिसवालों की। वे सिर्फ़ लाठियों का बरसना महसूस करते थे, मारनेवालों को देख नहीं पाते थे।

पर उस दिन···उस अंग्रेज सार्जेंट का चेहरा उसके ज़ेहन पर ऐसे खुद गया है

सब कह रहे थे कि अविजित की बात ठीक है और अविजित को ही अपनी बात सबसे ज्यादा ग़लत लग रही थी।

आज चड्ढा को याद करके जो बात उसे तंग कर रही है, वही उस दिन भी परेशान कर रही थी पर···

गांधीजी का अनुयायी होने से ही क्या अविजित में अहिंसा के प्रति सच्चा विश्वास पैदा हो गया था? क्या गांधीजी की इस बात में ज़रा भी दम था कि भारत की जनता में हिंसा की भावना नहीं है। खुद कांग्रेस के सदस्य क्या सचमुच अहिंसा के हिमायती थे?

उस दिन भी अविजित सोच रहा था—पिछले दस वर्षों से कांग्रेस अहिंसा के सिद्धान्त का प्रचार कर रही है पर जब स्वयं गांधीजी ने कांग्रेस अधिवेशन में वाइसराय की स्पेशल पर बम फेंकने की निन्दा का प्रस्ताव रखा तो उनके तमाम आतंक के बावजूद वह केवल इकतीस अधिक मतों से पारित हो सका।

आतंक! बिल्कुल ठीक शब्द था। यह गांधीजी का आतंक ही था कि हमारे नेता चुपचाप उनकी बात मानते चले जाते थे।

हमारे यहां व्यक्ति पहले आता है, फिर संगठन, और सबसे बाद में सिद्धान्त। बुद्ध के ज़माने से यही पद्धति चली आ रही है। बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि का मन्त्र यही सिखलाता है; पहले व्यक्ति, फिर संगठन और सबसे बाद में सिद्धांत।

बहुत ही खतरनाक पद्धति है। व्यक्ति-पूजा का ज़हर आम आदमी को नपुंसक बना डालता है।

दूसरों के इशारों पर चलने के लिए आदमी पहले अपने से समझौता करता है, फिर औरों से और धीरे-धीरे···

समझौता उसका स्वभाव बन जाता है।

गांधीजी कहते हैं—समझौता मेरे स्वभाव का अंश है।

भगतसिंह कहते हैं—समझौता अपने में बुरा नहीं है बशर्ते कि समझौता हमारा ध्येय न हो, सिर्फ़ खुद को अगली लड़ाई के लिए मजबूत बनाने के लिए लिया गया अवकाश हो···

कांग्रेस का ध्येय क्या है, समझौता, शासन-सुधार या स्वाधीनता? हमारे लिए हमारा लक्ष्य अधिक महत्वपूर्ण है या उस तक पहुंचने का तरीका?

आन्तरिक विश्वास के बिना आदमी अगर किसी मार्ग को अपनाये···

फिर वही प्रश्न—अहिंसा में अविजित का विश्वास था कभी···उन दिनों भी जब वह गांधीजी के नाम की माला जपता था?

वह पुलिसमैन, जिसके हाथ की लाठी उसके कन्धे और पीठ पर बरसी थी! नफ़रत

ग्रौर हिक़ारत से सना उसका चेहरा ! ग्राज भी याद ग्रा जाता है तो मन एक गहरी प्रतिहिंसा की भावना से भर जाता है।

विदेशी कपड़े की दूकानों की पिकेटिंग करने उनका जुलूस शान्ति के साथ ग्रागे बढ़ रहा था जब पुलिस के एक दस्ते ने उन्हें तितर-बितर करने को ललकारा। चड्ढा ग्रौर ग्रविजित सबसे ग्रागे थे। खूब उत्तेजित होकर चड्ढा 'महात्मा गांधी की जय' चिल्लाने लगा था। चड्ढा जो काम करता था, दीवानगी की हद पर। चाहे जय बोलनी हो चाहे मुर्दाबाद का नारा लगाना हो।

ग्रौर तब···घुड़सवार ग्रंग्रेज सार्जेण्ट घोड़ा दौड़ाता हुग्रा ग्रागे बढ़ ग्राया था। एक क्षण को ग्रविजित ने महसूस किया था कि वह उन्हें रौंदता हुग्रा ग्रागे बढ़ गया। पर ठीक उनके सिर पर ग्राकर घोड़ा रुक गया था। खूब तौलकर उस ग्रंग्रेज ने हाथ की लाठी ठीक चड्ढा के सिर पर चलाई थी। ग्रनायास, उसे बचाने के खयाल से या बस यूं ही ग्रकारण, ग्रविजित ने हाथ से उसे पीछे धकेल दिया था ग्रौर खुद एक क़दम ग्रागे बढ ग्राया था। लाठी चड्ढा पर पड़ने के बजाय ग्रविजित के कन्धे पर बरसी थी ग्रौर फिर पूरे ज़ोर से पीठ पर।

उसका दिमाग एकदम खाली हो गया था। बदन सिर से पैर तक इस तरह थरथराया था कि वह गिरने-गिरने को हो गया था। पर वह खड़ा रहा था, एक तीखी नफ़रत का महसास उसे सहारा दिये रहा था।

साफ़ उसने देखा था···लाठी समेत खींचकर उसने उस गोरे ग्रफ़सर को ज़मीन पर पटक दिया है ग्रौर खुद घोड़े पर सवार हो गया है। चाबुक मारकर घोड़े को ग्रागे दौड़ाया है ग्रौर उस सख्त लाल चेहरे को रौंदता हुग्रा ग्रागे बढ़ गया है। मुड़कर देखा है ग्रौर जुगुप्सा के साथ एक वहशी संतोष का ग्रनुभव किया है—हां, कभी वह खून से सना मांस का लोथड़ दम्भ से गढ़ा गोरा लाल चेहरा था, उसके प्रतिद्वन्द्वी का !

···नहीं, वह ग्रपनी जगह ग्रड़ा खड़ा रहा था। हाथ उठाकर वार नहीं किया था, ग्रावाज़ बुलन्द करके प्रतिवाद नहीं किया था··· वह इम्तिहान में पास हो गया था। लाठियां बरसती रही थीं, बदन थरथराता रहा था, सिर में भट्टी धधकती रही थी पर ग्रंग्रेज सार्जेंट घोड़े पर सवार रहा था ग्रौर ग्रविजित नीचे ज़मीन पर खड़ा मार खाता रहा था।

पर यह जीत ग्रहिंसा की नहीं, ग्रनुशासन की थी। दो साल से वे ग्रपने को ऐसी वारदात के लिए तैयार कर रहे थे। दो बार पहले भी लाठी-चार्ज के शिकार हो चुके थे पर यह पहली मर्तबा था कि ग्रविजित ने मारने वाले को इतने क़रीब से देखा था। वरना एक हुजूम लड़कों का होता था, एक टुकड़ी पुलिसवालों की। वे सिर्फ़ लाठियों का बरसना महसूस करते थे, मारनेवालों को देख नहीं पाते थे।

पर उस दिन···उस ग्रंग्रेज सार्जेंट का चेहरा उसके ज़ेहन पर ऐसे खुद गया है

ग्रवि

जैसे वह उसका अज़ीज़म नातेदार हो। अगर अविजित भी लौटाकर दो-चार लाठियां उस पर बरसा सकता तो शायद उसे माफ़ करके दोस्त बना लेने में उसे दिक्क़त न होती। और शायद उस सार्जेण्ट की आंखों में नफ़रत और हिक़ारत भी कम हो जाती। जो क्रान्तिकारी ईंट का जवाब पत्थर से देते थे, उनके लिए अंग्रेजों के मन में भय और आक्रोश चाहे जितना रहता था, हिक़ारत नहीं होती थी। शायद मन-ही-मन वे उनकी इज्ज़त करते थे। अहिंसा नफ़रत को कम नहीं करती, बढ़ावा देती है, निकास न पाने पर दिल के कोने में जमती चली जाती है और फिर एक दिन जब विस्फोट होता है तो बहुत कुछ और, चाहत के क़ाबिल, जल कर राख हो जाता है।

तभी न ठीक उन्हीं दिनों जब गांधीजी अहिंसा के प्रयोग सिखला रहे थे, देश में जहां-तहां हिन्दू-मुस्लिम दंगे होते रहते थे, जिनमें हिन्दुस्तानियों के दिलों में छिपी हिंसा अपने जघन्य से जघन्य रूप में प्रकट होती थी। एक तरफ़ करांची में कांग्रेस अधिवेशन में गान्धी-इर्विन समझौते को पास किया जा रहा था, दूसरी तरफ़ कानपुर में भयानक हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो रहा था, जिसमें गणेशशंकर विद्यार्थी जैसे नेता को क़त्ल किया गया था।

और आखीर में उन्नीस सौ सैंतालीस की वह नाक़ाबिले बयान मारकाट··· दिलों में जमी हिंसा का नंगा नाच···किन्हीं अंग्रेज सार्जेण्टों की ठोकरों से शुरू हुआ सिलसिला···

आज भी अगर कहीं वह अंग्रेज सार्जेंट अविजित को मिल जाए···!

"पिताजी !" कमरे में आतंक से सना एक शब्द गूंजा।

चौंककर अविजित ने सिर ऊपर उठाया।

कौन ? कौन है यह ?

शुभा ? हां, शुभा। उसकी बेटी।

पर···वह अंग्रेज सार्जेंट ? चड्डा ? लड़कों का हुजूम ! नफ़रत से सनी लाठियां ! बीते हुए वक़्त की कचोटती अकर्मण्यता !

"पिताजी !" शुभा कह रही है, "क्या हो गया आपको ?"

बीता हुआ वक़्त ! बीत जाने दो। नहीं क्यों बीत रहा ··

वह अपने घर पर है। लड़ाइयां खत्म हो चुकीं। हासिल कुछ नहीं हुआ, काजल कहती है। कुछ तो हुआ है हासिल···हां कुछ···मानना पड़ेगा···नहीं क्यों मान पा रहा···

"आपका चेहरा···क्या हुआ पिताजी ?"

"क्या···कुछ तो नहीं···" अविजित सम्भल रहा है।

"आपका चेहरा ऐसे लग रहा था जैसे आप किसी को जान से मार रहे हैं," शुभा ने कहा।

उसकी आंखों में भय लहरा रहा है, अविजित ने और सम्भल आने पर देखा।

उसने कोनिशा की ओर हंस दिया।

"तू नाटक बहुत देखती है," आवाज में सहज परिहास पैदा करके उसने कहा। वैसे अदाकार मैं भी बुरा नही···

शुभा भी हंसी।

"मेरा मतलब," उसने कहा, "लगा जैसे कोई बहुत बुरा आदमी आपके सामने हो।"

बेटी बात बना गई। अविजित हंस ही पड़ा।

"पिताजी," शुभा ने सहसा कहा, "स्वर्णा जो बतलाती है, १९४३ में ऐसे ही हुआ था?"

अविजित समझ गया कि भय से पीड़ित शुभा यही पूछने कमरे में घुसी होगी, उसे देखकर कुछ देर के लिए और ही किसी भय में···

"हां," अपने को सम्भालकर उसने कहा।

शुभा कुछ देर चुप रही, फिर बोली, "१९४३ में आप कलकत्ते में ही थे?"

"नही। मैं जेल में था।"

शुभा के चेहरे पर रिलीफ़ उभर आया, फिर हल्का-सा गर्व का भाव।

क्या हुआ कि अविजित कड़वे स्वर में कह उठा, "मैं सिर्फ़ एक साल के लिए जेल मे था। उसका कोई महत्व नही है।"

"मम्मी कह रही थीं, १९३२ में भी आप जेल गए थे, इसीलिए आई. सी. एस. नही बन पाए," शुभा ने जैसे अपने से कहा।

"मामूली बात है," अविजित ने टोका।

"मेरी सहेलियां कहती हैं, तेरे पिताजी जेल गए थे तो उन्हें आज मिनिस्टर वगैरह कुछ होना चाहिए," शुभा ने कहा तो अविजित एकदम फट पड़ा।

"नही, शुभा, नही! ऐसा मत सोचो तुम लोग। कभी मत सोचो! आज़ादी के लिए हम सब अपने-अपने तरीके से लड़े थे; कुछ को मुआवज़ा मिल गया, कुछ को नहीं पर मुआवज़े के लिए हम नही लड़े। एक ग़लती कभी मत करना। उन बातो का विश्वास मत कर लेना जिनका सबसे अधिक प्रचार हो रहा हो। देश को आज़ादी दिलवाने में सिर्फ़ उन लोगों का हाथ नही है जो आज सरकार चला रहे हैं। सैकड़ो क्रान्तिकारी ऐसे हैं जो हम लोगों को दो-दो साल की सज़ा के मुकाबले फांसी के तख़्तों पर झूल गए थे, अण्डमान के नरक मे ता-उम्र सड़ते रहे थे। उनमें से न जाने कितने अभी भी ज़िन्दा हैं और किसी पद की मांग नही कर रहे। फिर मुझे क्या अधिकार है···"

कोई अधिकार नही है! इस तरह भाषण देने का भी अधिकार नही है, उसने साफ़ सुना, काजल कह रहो है।

"अपनी हिस्ट्री की लेक्चरार से पूछना," क्षण-भर रुककर उसने थके स्

जोड़ा, "वह ठीक से बतला सकेंगी।"

"कौन ? मिस बनर्जी, प्रभा की टीचर? वह तो हमें अगले साल पढ़ाएंगी…"

अविजित ने और सुना नहीं। उठ कर खड़ा हो गया।

आज इतवार है। काजल से मिला जा सकता है। इतना गुबार मन में रखकर सिर्फ़ काजल से मिला जा सकता है।

७

"आओ अविजित," काजल ने कहा, "अच्छे वक़्त आए। बतलाओ मैं रहूं या जाऊं?"

"कहां?" अविजित ने अचरज से दरवाज़े के पास ठिठककर कहा।

"कॉलेज में? इस्तीफ़ा दूं या नहीं?"

"हुआ क्या?"

"झगड़ा! खूब ज़ोरदार! प्रिंसिपल का कहना है कि मैं कोर्स के बाहर की चीज़ें पढ़ाकर समय बरबाद करती हूं।"

"उसे कैसे मालूम? वह तुम्हारी क्लास में बैठती है क्या?"

"नहीं। पर इन्फॉरमर्स सिर्फ़ राजनैतिक दलों में ही नहीं और जगह भी पाए जाते हैं। राष्ट्रीय चरित्र है यह तो हमारा!"

इस क़दर उत्तेजित काजल के लिए अविजित तैयार नहीं था। अपने मन के गुबार को निकालने आया पर यहां तो…

"बैठ जाऊं?" उसने कहा।

"क्या?" काजल ने चौंककर कहा।

"तुमने बैठने को नहीं कहा। पूछ रहा हूं, बैठ जाऊं?"

"हां-हां," काजल फिर भी सभ्य औपचारिकताओं में नहीं लौटी।

अविजित बैठ गया और माहौल को हल्का करने की कोशिश में हंसकर बोला, "तो कोर्स के मतलब की चीज़ें पढ़ाया करो न।"

काजल नहीं हंसी।

उग्र स्वर में बोली, "कोर्स में लिखा है, पढ़ाना है—भारत में राष्ट्रीयता का उदय और विस्तार। तुम्हारा क्या खयाल है मुझे सिर्फ़ कांग्रेस का इतिहास पढ़ाना

चाहिए, यह भी ब्रिटिश नजरिये से ?"

"मैंने तो यह नहीं कहा···" अब प्रविजित अचकचा गया।

"प्रिंसिपल साहिबा तो कहती हैं।"

"तुमने पढ़ाया क्या था ?" स्वर को मधुर बनाकर प्रविजित ने पूछा।

"भगतसिंह का प्रगतिवादी दृष्टिकोण।"

"ओह।"

"क्या हुआ ? जंचा नहीं ?" काजल ने तल्खी से पूछा।

प्रविजित क्षण-भर चुप रहा, फिर बोला, "नहीं, वह बात नहीं है। मैं तो सोच रहा था सामग्री कहां से जुटाई तुमने।"

काजल ने उठ कर सामने की अलमारी खोलकर एक मोटी-सी फ़ाइल निकाली और बोली, "यह देखो। उनके जो भी लेख वगैरह उन दिनों छपे थे, इसमें जमा कर रखे हैं। पत्रों की खोज कर रही हूं। एक दिन···जरूर···किताब लिखूंगी उन पर।"

प्रविजित ने देखा, काजल का मुंह उत्साह से दमक रहा है। उसे यह बहुत अच्छी लगी।

हाथ बढ़ाकर उसने फाइल उससे ले ली और पन्ने पलटने लगा।

"प्रिंसिपल का कहना है, भगतसिंह आतंकवादी थे, उन्होंने असेंबली में बम फेंका जिसके लिए उन्हें फांसी हो गई; इतना बतला देना काफी है। तीन-तीन लैक्चरार क्लास इस टॉपिक पर बरबाद करने का प्रयोजन ? क्या प्रयोजन बतलाऊं उन्हें···"

"लड़कियां तो दिलचस्पी लेती होंगी···" प्रविजित ने कहना शुरू किया तो काजल और उत्तेजित हो गई।

"कोई नहीं जानना चाहता। इतिहास पढ़ते हैं पर स्वतन्त्रता आन्दोलन के बारे में जानने में बिल्कुल रुचि नहीं है। आज़ादी मिली, मिल गई। जो आज़ादी के लिए लड़े, राज कर रहे हैं। हिसाब बराबर। किस्सा खत्म ! जानते हो लड़कियां क्या कहती हैं ? कहती हैं, इस टॉपिक पर इम्तिहान में सवाल आने से रहा, बेकार माथापच्ची क्यों करें ?"

"प्रभा भी तो तुम्हारी क्लास में है," प्रविजित ने बुदबुदा कर कहा।

"हां," सहसा काजल हंस दी।

"ओ प्रविजित !" उसने कहा, "तुम्हारी लड़की तो बिल्कुल मुझ पर गई है। जो मैंने बोला, इतना तीता बनाकर लिख डाला कि पढ़कर मैं ही तिलमिला गई।"

"अच्छा," खुश होकर प्रविजित ने कहा, "तब तो प्रभा जैसी कुछ और लड़कियां···"

"हां-हां, प्रविजित," काजल उत्साहित होकर बोली, "इसीलिए तो पढ़ाती हूं। कभी-न-कभी तो युवा पीढ़ी में जिज्ञासा पैदा होगी ··होगी न···"

अविजित फ़ाइल के पन्ने पलट रहा था कि एक जगह नज़र अटक गई। लगा ये शब्द पहले भी कहीं सुने थे या शायद पढ़े हों···

"···क्रान्ति से हमारा अभिप्राय समाज की वर्तमान प्रणाली और वर्तमान संगठन को पूरी तरह उखाड़ फेंकना है। इस उद्देश्य के लिए हम पहले सरकार की ताक़त को अपने हाथ में लेना चाहते हैं···

"जिन लोगों के सामने इस महान क्रान्ति का लक्ष्य है उनके लिए नये शासन-सुधारों की कसौटी क्या होनी चाहिए ? हमारे लिए निम्नलिखित तीन बातों पर ध्यान रखना किसी भी शासन-विधान की परख के लिए ज़रूरी है—(१) शासन की ज़िम्मेवारी कहां तक भारतवासियों को सौंपी जाती है।

(२) शासन-विधान को चलाने के लिए किस प्रकार की सरकार बनाई जाती है और उसमें हिस्सा लेने का आम जनता को कहां तक मौक़ा मिलता है।

(३) भविष्य में उससे क्या आशाएं की जा सकती हैं ? उस पर कहां तक प्रतिबन्ध लगाए जाते हैं ? सर्वसाधारण को वोट देने का हक़ दिया जाता है या नहीं ?

"हमारे दल का लक्ष्य एक सोशलिस्ट सामाजिक संगठन की स्थापना है। कांग्रेस और इस दल के लक्ष्य में यही भेद है कि जब राजनैनिक क्रांति से शासन-शक्ति अंग्रेज़ों के हाथ से निकल कर हिंदुस्तानियों के हाथों में आ जाएगी···तब हमारा लक्ष्य शासन-शक्ति को उन हाथों में सुपुर्द करना है जिनका लक्ष्य समाजवाद हो। इसके लिए मज़दूरों और किसानों को संगठित करना आवश्यक होगा क्योंकि उन लोगों के लिए लार्ड रीडिंग या इर्विन की जगह तेजबहादुर या पुरुषोत्तम दास, ठाकुरदास के आ जाने से कोई भारी फ़र्क़ न पड़ सकेगा।

"पूर्ण स्वाधीनता से भी इस दल का यही अभिप्राय है। जब लाहौर कांग्रेस ने पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास किया तो हम लोग पूरे दिल से इसे चाहते थे परन्तु कांग्रेस के उसी अधिवेशन में महात्मा जी ने कहा कि 'समझौते का दरवाजा अभी भी खुला है।' इसका अर्थ यह था कि वह पहले से जानते थे कि उनकी लड़ाई का अन्त इसी प्रकार के किसी समझौते में होगा और वे पूरे दिल से स्वाधीनता की घोषणा न कर रहे थे। हम लोग इसी बेदिली से घृणा करते हैं···"

"तुम्हें याद है···" काजल ने कहा।

अविजित ने सिर उठा कर नहीं देखा। वह पूरी तकह फ़ाइल के पन्नों में खोया हुआ था। दो फरवरी १९३१ को कालकोठरी से दिया गया क़ौम के नाम वह संदेश ! कितना कुछ···

काजल चुप हो गई। टक लगा कर उसे अपनी आत्मा को पढ़ते देखती रही।

अविजित ने पढ़ा···

"···इस उद्देश्य के लिए नौजवानों को कार्यकर्ता बन कर मैदान में निकलना चाहिए, नेता बनने वाले तो पहले ही बहुत हैं···

"हमारे इस दल का एक सैनिक विभाग भी संगठित होना चाहिए। इस सम्बन्ध

में मैं अपनी स्थिति बिल्कुल साफ़ कर देना चाहता हूं। मैं जो कुछ कहना चाहता हूं उसमें ग़लतफ़हमी की सम्भावना है। परन्तु आप लोग मेरे शब्दों और वाक्यों का कोई गूढ़ अभिप्राय न गढ़ें।

"यह बात प्रसिद्ध है कि मैं आतंकवादी रहा हूं परन्तु मैं आतंकवादी नहीं हूं। मैं एक क्रान्तिकारी हूं जिसके कुछ निश्चित विचार और निश्चित आदर्श हैं और जिसके सामने एक लम्बा प्रोग्राम है···मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि हम बम से कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकते। केवल बम फेंकना न केवल व्यर्थ है परन्तु बहुत बार हानिकारक भी है। उसकी आवश्यकता किन्हीं खास अवस्थाओं में ही पड़ा करती है। हमारा मुख्य लक्ष्य मजदूरों और किसानों का संगठन होना चाहिए। सैनिक विभाग युद्ध सामग्री को खास मौक़े के लिए केवल संग्रह करता रहे···"

आज बाईस-तेईस साल बाद, आज़ादी मिलने पर भी ये शब्द उतने ही प्रासंगिक हैं, अविजित सोच रहा है···अगर भगतसिंह कुछ दिन और जिन्दा रहे होते और युवा वर्ग का नेतृत्व कर पाते तो शायद १९३२ से १९४२ तक के वे दस साल समझौतों की नजर न होते और देश के युवक अपने को बुरी तरह दुविधाग्रस्त न पाते। तब शायद आज़ादी कुछ ठोस अर्थ लिये आती···

कितने छोटे-से एक सांकेतिक कारनामे के लिए किस आला हस्ती का बलिदान हो गया। न हुआ होता तो···

"तुम्हें याद है···" अविजित ने कहा।

"हां," बीच ही में काजल ने कहा।

उसकी आखें गीली हो गईं।

वह दिन···चौबीस मार्च उन्नीस सौ इकतीस !

काजल की आंखों से टप-टप गिरते आंसू अविजित साफ़ अपनी आंखों के सामने देख रहा है···

सुबह-सुबह विपण्ण मुख लिए काजल उसके कमरे में घुस आई थी।

"कल शाम सरदार भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी हो गई," रुंधे कण्ठ से उसने कहा।

फांसी होगी, वे जानते थे पर फांसी हो गई, सुन कर···

शायद कहीं मन में आशा थी कि सरकार जनमत के आगे झुक जाएगी। कितनी बेवकूफ़ी की बात थी। महीना-भर पहले ही तो अपार भीड़ के देखते-देखते आज़ाद को गोलियों से भून डाला गया था और शव तक उनके हाथ नहीं आया था। क्या कर लिया था जनमत ने ? बस, पेड़ पर फूल मालाएं चढ़ा कर रो लिये थे।

बहुत देर तक काजल और अविजित चुपचाप बैठे रहे थे, कुछ कहने-सुनने को मन नहीं हुआ था। पता नहीं क्यों, काजल के सामने अविजित छोटा महसूस कर उठा

था, शायद इसलिए कि इतने दिन उसके मन में आशा रही थी कि गान्धी-इर्विन समझौते में चाहे उनके बारे में कुछ नहीं कहा गया था फिर भी गान्धीजी कोई-न-कोई ऐसा चमत्कार ज़रूर कर दिखाएंगे जिससे आखिरकार फांसी रद्द हो जाएगी···पर कुछ नहीं हुआ था, क्योंकि कुछ होना नहीं था।

एक-एक कर के हरीश, निखिल, चड्ढा और चटर्जी उसके कमरे में आ पहुंचे थे। सबके मुंह उतरे हुए थे। कहने को कुछ नहीं था। सारा जोश जैसे एक झटके में निचुड़ गया था।

"सुना है," आखिर चड्ढा ने कहा, "उनके शव रिश्तेदारों को नहीं दिए गए। मिट्टी का तेल डाल कर जला दिए गए।"

उसके स्वर में कोई उत्तेजना नहीं थी। चड्ढा के लिए यह अनहोनी बात थी। अविजित समझ रहा था, वह सत्य कितना भयानक है जिससे साक्षात्कार कर के चड्ढा जैसा आदमी भी स्तब्ध हो गया है।

"शाम को फांसी देने का नियम नहीं है," हरीश ने कहा, "उन्हें वक़्त से पहले फांसी दी गई जिससे रिश्तेदारों और जनता को खबर न हो।"

"खबर होने से ही क्या हो जाता ?" निखिल ने कहा।

"सब कुछ खत्म हो गया," चड्ढा बुदबुदा कर कहता गया, "पहले रामप्रसाद बिस्मिल···अशफ़ाकउल्ला खां, फिर आज़ाद···अब भगतसिंह···सुखदेव···सब खत्म··· अब बस कांग्रेस बची है।"

"और समझौते," हरीश ने कहा, "ताक़तवर और कमज़ोर के बीच समझौते। अपनी कमज़ोरी की इन्तिहा तो देखो कि सारा देश जिनकी जयनाद बोल रहा था, उन्हीं का अंतिम संस्कार तक करने की इजाज़त न मिली। याद है यतीन्द्रनाथ का दाह संस्कार किस शान से हुआ था···क्योंकि तब भगतसिंह और उनके साथी ज़िन्दा थे। उन्होंने जेल के भीतर अनशन करके वह कर दिखलाया जो हम जेल के बाहर रह कर न कर सके।"

"सब कुछ खत्म हो गया," चड्ढा के मुंह से फिर निकला।

"नहीं," सहसा काजल ने कहा, "सब खत्म नहीं हुआ।"

साड़ी की पटलियों के बीच खोंसा एक परचा उसने निकाला और पढ़ना शुरू कर दिया :

"···इस समय हमारा आन्दोलन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थितियों में से गुज़र रहा है। एक साल के कठोर संग्राम के बाद गोलमेज कांफ्रेन्स ने हमारे सामने शासन विधान में परिवर्तन के सम्बन्ध में कुछ निश्चित बातें पेश की हैं और कांग्रेस के नेताओं को निमंत्रण दिया है कि वे आकर शासन-विधान तैयार करने के काम में मदद दें···यह बात निश्चित है कि वर्तमान आन्दोलन का अन्त किसी-न-किसी प्रकार के समझौते के रूप में होना लाज़मी है।

"वस्तुतः समझौता कोई हेय और निन्दा योग्य वस्तु नहीं है जैसा कि साधारणतः हम लोग समझते हैं। बल्कि समझौता राजनैतिक संग्रामों का एक आवश्यक अंग है। यह जरूरी है कि कोई भी कौम जो किसी अत्याचारी शासन के विरुद्ध खड़ी होती है प्रारम्भ में असफल हो और अपनी लम्बी जद्दोजेहद के मध्यकाल में इस प्रकार के समझौतों के जरिये कुछ राजनैतिक सुधार हासिल करती जाए, परन्तु वह अपनी लड़ाई की आखिरी मंजिल तक पहुँचते-पहुँचते अपनी ताक़तों को इतना संगठित और दृढ कर लेती है कि उसका दुश्मन पर आखिरी हमला ऐसा जोरदार होता है कि शासक लोगों की ताक़तें उनके उस वार के सामने चकनाचूर हो कर गिर पड़ती हैं। ऐसा भी हो सकता है कि उसकी चाल थोड़े समय के लिए धीमी हो जाए तथा उनके नेता पीछे पड़ जाएं किन्तु जनता की बढ़ती हुई ताक़त समझौतों को ठुकरा कर उस आन्दोलन को जय-युक्त करा ही देती है, नेता पीछे रह जाते हैं, आन्दोलन आगे बढ जाता है। यही विश्व-इतिहास का सबक़ है।

"···जिस बात को मैं बताना चाहता हूं वह यह है कि समझौता भी एक ऐसा हथियार है जिसे राजनैतिक जद्दोजेहद के बीच में पद-पद पर इस्तेमाल करना आवश्यक हो जाता है, जिससे एक कठिन लड़ाई से थकी हुई कौम को थोड़ी देर के लिए आराम मिल सके और वह आगे के युद्ध के लिए अधिक ताक़त के साथ तैयार हो सके परन्तु इन सारे समझौतों के बावजूद जिस चीज़ को हमें भूलना न चाहिए वह हमारा आदर्श है, जो हमेशा हमारे सामने रहना चाहिए। जिस लक्ष्य के लिए हम लड रहे हैं उसके सम्बन्ध मे हमारे विचार बिलकुल स्पष्ट और दृढ होने चाहिए। यदि आप सोलह आने के लिए लड़ रहे हैं और एक आना मिल जाता है तो वह एक आना जेब मे डाल कर बाक़ी पन्द्रह आने के लिए फिर जंग छेड़ दीजिए। हिन्दुस्तान के माडरेटों की जिस बात से हमें नफरत है वह यही है कि उनका आदर्श कुछ नही है। वे एक आने के लिए ही लड़ते हैं और उन्हें मिलता कुछ भी नहीं।

"भारत की वर्तमान लड़ाई ज्यादातर मध्य श्रेणी के लोगों के बलबूते पर लड़ी जा रही है, जिनका लक्ष्य बहुत सीमित है। यदि देश की लड़ाई लड़नी हो तो मजदूर, किसानों और सामान्य जनता को आगे लाना होगा, उन्हें लड़ाई के लिए संगठित करना होगा।

"···अगर आप दुनियादार हैं, बाल-बच्चों और गृहस्थी में फंसे हैं तो हमारे मार्ग पर मत आइए। आप हमारे उद्देश्य से सहानुभूति रखते हैं तो और तरीक़ों से हमें सहायता दीजिए। सख्त नियन्त्रण में रह सकने वाले कार्यकर्ता ही इस आन्दोलन को आगे ले जा सकते हैं। जरूरी नही कि दल इस उद्देश्य के लिए छिप कर ही काम करे। हमें युवकों के लिए स्वाध्याय-मंडल खोलने चाहिए। पेम्फलेटों और लीफलेटों, छोटी पुस्तकों, छोटे-छोटे पुस्तकालयों और लेक्चरों, बातचीत से हमें अपने विचारों का सर्वत्र प्रचार करना चाहिए···

"···हमारे दल का एक सैनिक विभाग भी संगठित होना चाहिए। कभी-कभी

उसकी भी ज़रूरत पड़ जाती है।

"···यदि हमारे नौजवान इसी प्रकार प्रयत्न करते जाएंगे तब जाकर एक साल में स्वराज्य तो नहीं किंतु भारी कुर्बानी और त्याग की कठिन परीक्षा में से गुज़रने के बाद वे अवश्य विजयी होंगे। क्रान्ति चिरजीवी हो!"

अविजित की आंखें एक साथ उस दिन का दृश्य भी देख रही थीं और फ़ाइल के पन्नों पर लिखे भगतसिंह के शब्द भी पढ़ रही थीं। याद आ गया था, पहले कब ये शब्द सुने थे···काजल के मुंह से, और फिर पढ़े थे, कई बार।

काजल के हाथ से परचा लेकर उसने दो फरवरी १९३१ को फांसी की कोठरी से लिखा गया भगतसिंह का वह संदेश कई बार पढ़ डाला था। 'पंजाब केसरी' में छपे लेख की कटिंग एक हाथ से दूसरे हाथ में जाती रही थी और सब अपने-अपने भीतर झांक कर मौन बने रहे थे।

शायद हीन भावना की एक बहुत बड़ी खाई थी जो उन्हें भगतसिंह से अलग करती थी···शायद वे सब उसी मध्य वर्ग के बाशिंदे थे जो सख्त नियंत्रण और कुर्बानी का रास्ता छोड़ कर आसान-से-आसान तरीक़े ढूंढ़ते हैं···और सबसे आसान है समझौता। परचा चड्ढा के पास पहुंचा तो वह कएदम उठ कर खड़ा हो गया। फिर···धीरे-धीरे वापिस बैठ गया।

"क्या फ़ायदा," वह बुदबुदाया, "अब जाऊंगा भी कहां···सब खत्म होगया···"

हां सख्त नियंत्रण में रह कर काम करना मामूली आदमी के लिए तभी सम्भव होता है जब कोई नेता उसका पथ-प्रदर्शन करे। कोई लेनिन···गारिबाल्डी···मैज़िनी···भगतसिंह···नेतृत्व मिले तो मामूली से मामूली आदमी भी···दस साल बाद चड्ढा ने साबित कर तो दिया था, कोई आदमी इतना मामूली नहीं होता कि बलिदान कर ही न पाये···सचमुच करना चाहे तो···

चुपचाप बैठे-बैठे जब आखिर एक-दूसरे से आंख मिलाना मुश्किल होने लगा तो हरीश ने कहा, "हम भी एक युवक-मंडल बनाकर किसानों के बीच काम कर सकते हैं।"

"हां," फ़ौरन निखिल ने अनुमोदन किया, "गान्धी-इर्विन समझौते ने उन्हें मंझदार में छोड़ दिया है। कांग्रेस के कहने पर बीसियों हज़ार किसानों ने लगान देने से इन्कार कर दिया था पर समझौते में उनको बाबत कोई क़दम नहीं उठाया गया है। पता नहीं अब कांग्रेस क्या करेगी?"

"करेगी क्या," चटर्जी ने कहा, "कह देगी हमारा तो समझौता हो गया; तुम लगान दे दो।"

"अगर हम उनसे कहें, लगान मत दो और किसानों का एक आन्दोलन चलाए,"

हरीन ने कहा।

"तो यह किसानों का आन्दोलन होगा। मारे वे जाएंगे, कुर्की उनकी होगी, जमीन से बेदखल वे होंगे, बेंतें उन पर बरसेंगी। हमें ले जाकर सरकार जेलों में सुरक्षित बन्द रखेगी और कोई उसकी परवाह नहीं करेगा। किसान बर्बाद जरूर हो जाएंगे पर फायदा कुछ नहीं होगा।" अविजित ने कहा।

"तो?"

"जेल जाने में तभी फायदा है जब हमारे साथ कोई ऐसा नेता हो जिसकी बात का असर सरकार पर पड़ता हो वरना सीधे-सीधे सैनिक क्रान्ति होनी चाहिए।"

"तो?" ललकार कर चड्ढा ने कहा।

"इस वक्त गान्धीजी ही एकमात्र ऐसे नेता हैं। हम लोग युवक मंडल अवश्य बनाएं पर समझ-बूझकर क़दम उठाएं। गान्धी-इर्विन समझौते के अन्तर्गत देखें क्या होता है।"

अविजित की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि चड्ढा उछल कर उसके सामने आ खड़ा हुआ। उसका पूरा बदन थरथरा रहा था, चेहरा किसी गहरी मानसिक यंत्रणा से भिंचुड़ कर विकृत हो उठा था। अविजित को अचानक उस अंग्रेज सार्जेंट का खयाल हो आया जिसने दो साल पहले उस पर लाठी बरसाई थी। लाठी की पहली चोट ने अविजित का यही हाल कर दिया था। पर चड्ढा···

"क्या हुआ?" अविजित के मुंह से निकला।

"दलीलें···दलीलें···" घुटी-घुटी आवाज में चड्ढा ने कहा

"अविजित की बात ग़लत नहीं है," हरीन ने कहा।

"नहीं," चड्ढा ने गहरी भर्त्सना के साथ कहा था, "अविजित से अच्छा वकील तुम्हें नहीं मिलेगा।" और कमरे से बाहर निकल गया था।

उसके पीछे-पीछे काजल भी बाहर चली गई थी···

क्या हुआ था समझौते के अन्तर्गत ? बस यह कि अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन के बन्दी जेलों से छोड़ दिये गए थे। साथ ही क्रान्तिकारी बन्दियों पर सरकार का अत्याचार बढ़ता ही गया था।

'इस अत्याचार और दमन के लिए जितना जिम्मेवार ब्रिटिश राज है उतने ही गान्धीजी।" काजल ने गहरे दुख के साथ कहा।

अविजित के पास प्रतिवाद में दलील नहीं थी उस बार।

"जेलों में हो रहे अत्याचार के खिलाफ न केवल उन्होंने खुद कोई आवाज़ नहीं उठाई है बल्कि हिंसा-अहिंसा का भूत खड़ा करके देश भर में ऐसा वातावरण पैदा कर दिया है कि भारतीय जनमत इस दमन के प्रति उदासीन हो गया है। जब-जब राजनैतिक कैदियों को छुड़ाने का प्रश्न आता है, वे हिंसात्मक और अहिंसात्मक क़ैदियों में

फ़र्क करते हैं। इतिहास महात्मा गान्धी को इन दुहरे मूल्यों के लिए कभी माफ़ नहीं करेगा।" काजल ने कहा था।

पर···कौन लिखता है इतिहास ? वही जिसके पास सत्ता होती है और जिनके हाथों में सत्ता होती है, उनके मूल्य दुहरे हुआ ही करते हैं।

"ऐसा कैसा जादू होता है एक आदमी में कि बाकी के लोग सोचना ही बन्द कर दें ?" अनित्य ने कहा था।

समझौते के बाद लखनऊ की सड़क पर···फूल मालाओं से लदा अनित्य···!

ॆ

अविजित अपने विद्यार्थी मंडल के सभापति की हैसियत से लखनऊ गया था। यह पता करने कि किसानों को लगान की छूट दिलवाने के लिए प्रान्तीय कांग्रेस आगे क्या करने वाली है। सोचा था अनित्य से भी मिलता आएगा।

मिलना हुआ भी था पर हॉस्टल के कमरे में नहीं, बीच सड़क पर।

गले में फूल मालाएं पहने, जुलूस में चलता अनित्य! अविजित भौंचक खड़ा रह गया था।

उसे देख कर अनित्य ने बड़ी अदा के साथ हाथ जोड़े थे।

अविजित झपट कर उसके पास पहुंच गया था।

"कहां से आ रहे हो ?" उसने पूछा था।

"जेल से छूट कर। आपको पता नहीं, गान्धी-इर्विन समझौता हो गया है और सत्याग्रही रिहा किए जा रहे हैं। खुद जवाहरलाल नेहरू लखनऊ तशरीफ़ लाए हुए हैं। हमें फूल मालाएं ही नहीं मिलीं, उनका दीदार भी हासिल हुआ।"

"पर तुम किसलिए गए थे जेल।"

"गान्धीजी की जय बोलने और किस लिए ? गान्धीजी ने कहा, अंग्रेज़ों को यहां से भगाओ, जेल जाओ; हम चले गए। गान्धीजी ने कहा, अंग्रेज़ों को अभी टिके रहने दो, आन्दोलन बन्द कर दो; हम बाहर आ गए। लोग खुश हुए, जुलूस निकले, सभाएं हुईं, फूल मालाएं पहनाई गईं···कांग्रेस अब अवैध नहीं रही···"

"चुप रहो," अविजित ने कहा, "हज़ारों लोग हैं जो अब भी जेलों में बन्द हैं।"

"जी हां," अनित्य गम्भीर हो गया। "वे लोग अपने ज़मीर के क़ैदी हैं, गान्धीजी के नहीं। मौत और काले पानी के सिवा उन्हें मिल भी क्या सकता है ? सरकार और उनमें बीच-बचाव करने वाला कौन है ?"

"और तुम्हारा ज़मीर ?"

"वह तो बचपन में ही मर गया था।"

"तो अब गान्धीवादी कैसे बन गए ?"

"मैं और गान्धीवादी ! तौबाह !"

"फिर जेल क्या करने गए थे ?"

"सज़ा से बचने," अनित्य ने धीमी आवाज़ में कहा।
"क्या मतलब ?"
"यहां नहीं। ज़रा इस मय से निबट लूं। कमरे पर पहुंचकर सब बतलाता हूं।"

अनित्य की कहानी बिल्कुल अनित्य की तरह थी—

"हुआ यह कि मैं ऐसा काम कर बैठा जिसकी सज़ा भयानक होती। हज़रतगंज की एक संकरी गली से गुज़र रहा था। देखा, एक गोरा सिपाही एक औरत को तंग कर रहा है। गुस्सा आना नहीं चाहिए था पर आ गया। आदमी का ज़मीर भी क्या कमबख्त चीज़ है। बरसों घोंटते रहो, मर कर नहीं देता। तो उस गोरे के ही हाथ से बेंत छीन कर मैंने उसकी अच्छी तरह ठुकाई कर डाली। या तो मुझसे कहीं तगड़ा पर पिये हुए था इसलिए मुकाबला न कर सका, पिट गया। कुछ ही देर में वही ज़मीन पर लुढ़का पड़ा था, मार की वजह से नहीं, शराब के असर से। मज़ाक देखिये, मैं न भी मारता तो भी थोड़ी देर बाद होश वह ज़रूर खो देता। पर मेरे माथे पर बहादुरी जो लिखी थी। खैर···औरत तो भाग गई पर मैं बुरी तरह डर गया। पकड़ा गया तो कौन जाने फांसी ही हो। तंग-सी गली थी इसलिए इक्का-दुक्का लोग ही वहां थे। और वे भी ऐसी अनहोनी घटना देख, ठगे-से रह गए थे। पर कितनी देर? वहीं बना रहा तो कोई-न-कोई होश में आएगा और मुझे पकड़ कर पुलिस के हवाले कर देगा, यह सोच कर मैं जिधर पांव उठा उधर ही दौड़ पड़ा।

"क़िस्मत बुलन्द थी। जिधर मैं दौड़ा, उधर सामने से नारे लगाता सत्याग्रहियों का जुलूस आ रहा था···चौक पर नमक बना कर आ रहे थे, खूब जोश में थे। बस मैं उनमें जा मिला और ज़ोर-ज़ोर से 'गान्धीजी की जय' चिल्लाने लगा। पुलिस का सामना तो देर-सबेर होना ही था, सो हुआ और सबके साथ मैं भी लखनऊ ज़िला जेल की बैरक नम्बर छह में बन्द कर दिया गया।"

"बहुत तकलीफ़ में रहे ?" कुछ देर चुप रह कर अविजित ने पूछा।

अनित्य हंस पड़ा।

"मुझे तकलीफ़ क्या होनी थी। मैं तो कोयले की बोरी पर सोने और रूखी रोटी खाने का आदी हूं।"

"वह बचपन की बात है···" अविजित ने टोका।

"हां, हमारे पिताजी ने मां के मरने के तेरहवें दिन दूसरी शादी पक्की कर ली तो मुझे पालने आगरा धाय के पास भेजना ज़रूरी हो गया। आखिर एक और छोटे बच्चे को पालने की ज़हमत वे अपनी बीवी पर कैसे डाल सकते थे। इसीलिए दस साल तक मुझे घर नहीं बुलाया जा सका। आपको याद होगा, जब मैं घर आया तो रसोई के पास के स्टोर में कोयले की बोरी पर जा कर सो गया। दाल-सब्ज़ी खाने की आदत थी नहीं, खाई तो दस्त लग गए। तब नई बीवी ने कहा, 'यह तो एकदम जंगली है, इसको

फ़र्क करते हैं। इतिहास महात्मा गान्धी को इन दुहरे मूल्यों के लिए कभी माफ़ नहीं करेगा।" काजल ने कहा था।

पर···कौन लिखता है इतिहास ? वही जिसके पास सत्ता होती है और जिनके हाथों में सत्ता होती है, उनके मूल्य दुहरे हुआ ही करते हैं।

"ऐसा कैसा जादू होता है एक आदमी में कि बाकी के लोग सोचना ही बन्द कर दें ?" अनित्य ने कहा था।

समझौते के बाद लखनऊ की सड़क पर···फूल मालाओं से लदा अनित्य···!

अविजित अपने विद्यार्थी मंडल के सभापति की हैसियत से लखनऊ गया था। यह पता करने कि किसानों को लगान की छूट दिलवाने के लिए प्रान्तीय कांग्रेस आगे क्या करने वाली है। सोचा था अनित्य से भी मिलता आएगा।

मिलना हुआ भी था पर हॉस्टल के कमरे में नहीं, बीच सड़क पर।

गले में फूल मालाएं पहने, जुलूस में चलता अनित्य ! अविजित भौंचक खड़ा रह गया था।

उसे देख कर अनित्य ने बड़ी श्रद्धा के साथ हाथ जोड़े थे।

अविजित झपट कर उसके पास पहुंच गया था।

"कहां से आ रहे हो ?" उसने पूछा था।

"जेल से छूट कर। आपको पता नहीं, गान्धी-इर्विन समझौता हो गया है और सत्याग्रही रिहा किए जा रहे हैं। खुद जवाहरलाल नेहरू लखनऊ तशरीफ़ लाए हुए हैं। हमें फूल मालाएं ही नहीं मिलीं, उनका दीदार भी हासिल हुआ।"

"पर तुम किसलिए गए थे जेल।"

"गान्धीजी की जय बोलने और किस लिए ? गान्धीजी ने कहा, अंग्रेज़ों को यहां से भगाओ, जेल जाओ; हम चले गए। गान्धीजी ने कहा, अंग्रेज़ों को अभी टिके रहने दो, आन्दोलन बन्द कर दो; हम बाहर आ गए। लोग खुश हुए, जुलूस निकले, सभाएं हुईं, फूल मालाएं पहनाई गईं···कांग्रेस अब अवैध नहीं रही···"

"चुप रहो," अविजित ने कहा, "हज़ारों लोग हैं जो अब भी जेलों में बन्द हैं।"

"जी हां," अनित्य गम्भीर हो गया। "वे लोग अपने ज़मीर के क़ैदी हैं, गान्धीजी के नहीं। मौत और काले पानी के सिवा उन्हें मिल भी क्या सकता है ? सरकार और उनमें बीच-बचाव करने वाला कौन है ?"

"और तुम्हारा ज़मीर ?"

"वह तो बचपन में ही मर गया था।"

"तो अब गान्धीवादी कैसे बन गए ?"

"मैं और गान्धीवादी ! तौबाह !"

"फिर जेल क्या करने गए थे ?"

"सज़ा से बचने," अनिरुद्ध ने धीमी आवाज़ में कहा।

"क्या मतलब ?"

"यहां नहीं। ज़रा इस सब से निबट लूं। कमरे पर पहुंचकर सब बतलाता हूं।"

अनिरुद्ध की कहानी बिल्कुल अनिरुद्ध की तरह थी—

"हुआ यह कि मैं ऐसा काम कर बैठा जिसकी सज़ा भयानक होती। हज़रत-गंज की एक संकरी गली से गुज़र रहा था। देखा, एक गोरा सिपाही एक औरत को तंग कर रहा है। गुस्सा आना नहीं चाहिए था पर आ गया। आदमी का ज़मीर भी क्या कमबख़्त चीज़ है। बरसों घोंटते रहो, मर कर नहीं देता। तो उस गोरे के ही हाथ से बेंत छीन कर मैंने उसकी अच्छी तरह ठुकाई कर डाली। वह तो मुझसे कहीं तगड़ा पर पिये हुए था इसलिए मुक़ाबिला न कर सका, पिट गया। कुछ ही देर में वहीं ज़मीन पर लुढ़का पड़ा था, मार की वजह से नहीं, शराब के असर से। मज़ाक़ देखिये, मैं न भी मारता तो भी थोड़ी देर बाद होश वह ज़रूर खो देता। पर मेरे माथे पर बहादुरी की लिखी थी। ख़ैर···औरत तो भाग गई पर मैं बुरी तरह डर गया। पकड़ा गया तो कौन जाने फांसी ही हो। तंग-सी गली थी इसलिए इक्का-दुक्का लोग ही वहां थे। और वे भी ऐसी अनहोनी घटना देख, सन्न-से रह गए थे। पर कितनी देर? वहीं बना रहा तो कोई-न-कोई होश में आएगा और मुझे पकड़ कर पुलिस के हवाले कर देगा, यह सोच कर मैं जिधर पांव उठा उधर ही दौड़ पड़ा।

"क़िस्मत बुलन्द थी। जिधर मैं दौड़ा, उधर सामने से कोई सत्या-ग्रहियों का जुलूस आ रहा था···चौक पर सड़क रोका कर बैठ गए थे, सब जोश में थे। बस मैं उनमें जा मिला और ज़ोर-ज़ोर से 'गान्धीजी की जय' चिल्लाने लगा। पुलिस का सन्देह तो हेर-फेर होना ही था, सो हुआ और सबके साथ मुझे भी गिरफ़्तार किया और जेल की [illegible] अन्दर डाल के बन्द कर दिया गया।"

"बहुत दुख उठाने पड़े होंगे?" कुछ देर चुप रह कर अरविन्द ने पूछा।

अनिरुद्ध हँस पड़ा।

"मुझे [illegible] होते तो [illegible] पर [illegible] और [illegible] खाने का आदी हूं।"

"यह मज़ाक की बात है···" अरविन्द ने टोका।

"पर [illegible] हूं [illegible] तो [illegible] कर [illegible] दूसरी कर ली। [illegible] और [illegible] के [illegible] पर [illegible] थे; [illegible] यह [illegible] मुझे [illegible] नहीं [illegible] पर [illegible] कर [illegible] कि [illegible] के [illegible] न [illegible] कर [illegible] पर [illegible] हैं [illegible] पर [illegible]

सोहबत में छोटे लड़के भी बिगड़ जाएंगे' और इसलिए…"

"कमउम्र थीं इसी से हो गया," अविजित ने उसकी बात काट कर कहा।

"अब वे बदल गई हैं। मुझे तो मां से कोई शिकायत नहीं है।"

"क्यों नहीं है? होनी चाहिए। मैं तो भूला नहीं हूं कि दस-ग्यारह बरस की उम्र में ही आप घर-भर में झाड़ू लगाते थे, बर्तन मांजते थे और दोनों छोटे लड़कों को लादे-लादे स्कूल की पढ़ाई किया करते थे। मुझे घर से बाहर न भेज दिया गया होता तो…"

"तो क्या…बुरा वक़्त था गुज़र गया…अब उसका क्या ज़िक्र?"

"जो गुज़र जाता है उसे आप फ़ौरन भूल जाते हैं?

"कोशिश तो ज़रूर करता हूं।"

"मैं नहीं करता। जो गुज़र चुका है मेरे साथ जीता रहता है।"

अविजित चुप रहा।

"होता आप के साथ भी यही है," अनित्य ने कहा, "बस आप लोग उसे नकारते रहते हैं और इसीलिए दो स्तरों पर जीने को मजबूर हो जाते हैं।"

ठीक कह रहा था अनित्य…इसी से बात बदलनी पड़ी थी।

"कितने दिन रहे जेल में?" उसने पूछा।

"चार महीने। भला हो गान्धीजी का, जो समझौता कर लिया वरना न मालूम कितने दिन और रहना पड़ता।"

"तुमने मुझे नहीं लिखा?"

"इसमें लिखने को क्या था?"

"मैं आकर मुलाक़ात कर जाता। चिट्ठी-पत्री भी देता…जेल के अकेलेपन से कुछ तो निजात मिलती।"

"अकेलापन था कहां? एक बैरक में पचास क़ैदी ठुंसे पड़े थे। सोते-सोते भी एक का पैर दूसरे को छूता रहता, दो फुट की जगह तो हुआ करती थी बीच में। मैं तो तन्हाई को तरस गया। सबके सामने नहाओ, लाईन में बैठ कर खाना निगलो और चौबीसों घण्टे गान्धीजी का बखान सुनो…एक दोस्त मिलने आया तो यही कहा उससे, और कुछ नहीं तो थोड़ी-सी रुई भिजवा देना। कानों में ठूंस लूंगा तो कुछ राहत मिलेगी। ज़रा सोचिए तो सही, अगर उन्चास आदमी हर जुमले की शुरुआत 'गान्धी जी कहते हैं…' से करेंगे तो पचासवें की क्या हालत होगी?"

अविजित हंस पड़ा।

"बस यही तकलीफ़ थी जेल में?"

"मेरी खुशकिस्मती कि अपना जेलर गोहरबाई का खास…दोस्त…निकला। मेरी चिट्ठी मिलने पर वे जो मुलाक़ात करने आई तो उसके बाद कोई तकलीफ़ मुझे नहीं रही। खाना बाहर से मंगाने की इजाज़त मिल गई, साबुन-तेल की सुविधा हो गई—पैसा दोस्त लोग जमा करा गए थे—और सबसे अच्छा हुआ यह कि बैरक के बाहर अहाते में सोने की इजाज़त मिल गई।"

"तुम्हारे साथियों में से किसी और ने भी अपने लिए खास सहूलियतें मांगी थीं ?"

"नहीं।"

"एक आदमी सिर्फ अपने लिए खास सहूलियतें मांगे इसे तुम गलत नहीं समझते ?"

जानबूझकर आज अविजित बार-बार अनिरुद्ध पर चोट कर रहा है, क्यों, वह खुद नहीं समझ पा रहा।

"समझता हूँ," अनिरुद्ध ने कहा, "पर जितना ग़लत यह जेल के अन्दर है उतना ही जेल के बाहर। एक गरीब आदमी के मुक़ाबले हम कितनी सहूलियतें पाये हुए हैं, कभी सोचा है किसी ने ?"

"गान्धीजी सोचते हैं। उनका रहन-सहन देश के सबसे ग़रीब आदमी की तरह है।"

"भाई साहब," अनिरुद्ध ने कहा, "ग़रीबी झेलना और ग़रीबी से सहानुभूति रखना दो अलग चीज़ें हैं। जानबूझकर तीसरे दर्जे में सफर करना और लंगोट पहनना एक बात है और न चाहते हुए भी ऐसा करने पर मजबूर होना दूसरी बात है। फिर यह बतलाइए कितने गरीब किसान हैं जो दूध, फल और बादाम खा पाते हैं।"

"क्या मतलब ?"

"छोड़िये। जेल में रहकर एक ही बात मेरी समझ में आई, जो बाहर है वही अन्दर। वही ऊँच-नीच, वही तिकड़मबाज़ी, वही रसूख, वही रिश्वतखोरी, वही पार्टी-बन्दी। आप ऊँचे वर्ग के हैं, घर पर खानसामा रखकर खाना बनवाते हैं तो जेल में भी खाना पकाने के लिए आपको निचले वर्ग का कैदी मिल जाएगा। आपके पास पैसा है, वार्डनों को सिगरेट-बीड़ी पिला सकते हैं तो वह भी आपसे दोस्ताना ताल्लुक़ात रखेगा। वरना चक्की पीसिए, उबले चने चबाइए, मिट्टी मिली रोटी और कंकड़ मिली दाल पर गुज़ारा कीजिए, बात-बात पर बेंत खाइए···"

"तुम अपराधियों की बात कर रहे हो। राजनैतिक बन्दी···"

"राजनैतिक बन्दी ! लाला लाजपतराय को शिकायत थी कि मद्रासी छोकरे का बनाया खाना रुचता नहीं, पंजाबी आदमी चाहिए और अण्डमान के बन्दियों को शिकायत है कि बैल की जगह उन्हें कोल्हू में जोत कर तेल निकलवाया जाता है। दोनों ही राजनैतिक बन्दी हैं न ?"

"हाँ," अविजित ने कहा, "पर···"

पर ··वह जानता है कोई दलील अण्डमान के नरक की यातनाओं को नकार नहीं सकती।

उसके दिमाग़ में यह सब घूम गया था जो अण्डमान की जेलों के बारे में सुनने में आता रहा है।

अठारह-बीस साल के कम-उम्र लड़कों को कोल्हू में जोता जाता है। तीस पौंड तेल निकालना आवश्यक है और उतना निकाला ही नहीं जा सकता। काम पूरा न होने

पर रोज शाम को मार पड़ती है, खाना नहीं मिलता और कोल्हू में जुता रहना पड़ता है। काम करने पर प्यास लगती है पर पानी मांगने पर पीठ पर डंडा बरसता है। बेहोश होने पर भी काम से छुटकारा नहीं है।

जेल प्रशासन का उद्देश्य ही है उन्हें तिल-तिल करके मारना या आत्मघात पर बाध्य करना। नहाते-धोते समय वन्दी आपस में इशारे भी कर लें तो खड़ी हथखड़ी की सजा मिल जाती है। सिर से ऊँचे कुंडे से दोनों हाथ हथकड़ी से फिट कर के वन्दी को खड़ा कर दिया जाता है। जागना-सोना उसी हालत में···सात दिन तक !

मिट्टी का तेल और कीड़े मिला खाना मिलता है और उसे खाने के लिए भी इतना कम समय कि पूरा खा नहीं पाते। और न खाने पर भी दंड मिलता है।

उल्हासकरदत्त के बारे में सुना है। उसे हाथ-पैर बांध कर कोल्हू घुमाने वाली लकड़ी से बांध दिया गया था। बाकी वन्दी कोल्हू तेज़ी से घुमाते और बँधा हुआ उल्हासकर साथ घिसटता रहता। सिर ज़मीन से टकराता, शरीर लहूलुहान हो जाता। फिर उसे ईंट ढोने और ऊँची चढ़ाई पर चढ़ कर पानी लाने-पहुंचाने का काम दिया गया। शक्ति ने जवाब दे दिया सो जंजीर से बांध कर लटका दिया गया और उसी हालत में वह पागल हो गया। और भी कितने ही वन्दी वहां पागल हो गए या उन्होंने आत्महत्या कर ली।

इन लोगों के बारे में कितने लोग जानते हैं? जानते हुए कितने हैं जो इस सबसे उद्वेलित होते हैं?

"आतंकवादियों को सरकार राजनैतिक वन्दी नहीं मानती, क़ातिल और डकैत मानती है," अविजित ने कहा।

"गान्धीजी भी यही मानते हैं," अनित्य ने कहा।

"नहीं।"

"नहीं कैसे? अपनी हालत में सुधार लाने के लिए वे लोग स्वयं अनशन कर रहे हैं। यतीन्द्रनाथ की पिछले साल मौत हुई। गान्धीजी ने तो उनके लिए उपवास नहीं रखा।"

१९३२ में अविजित खुद जेल गया तो बात अच्छी तरह समझ में आ गई। जेल की यातनाएं सह कर क्रान्तिकारियों ने जो अनशन किया था उसका नतीजा यह निकला था कि क़ैदियों की खुल्लमखुल्ला तीन श्रेणियां बन गई थीं—ए, बी और सी। बाहर के समाज का वर्ग-विभेद भीतर जेल में भी लागू हो गया था। लागू तो पहले से था, अब स्वीकार कर लिया गया। कैसी विडम्बना थी कि जिन लोगों ने अनशन किया था वही 'सी' क्लास में जा पड़े।

पंडित नेहरू ने उन दिनों कहा था, "···सर्वसाधारण तो लड़ेंगे और क़ुर्बानी करेंगे और जब क़ामयाबी का वक़्त आएगा तब ऐन मौक़े पर दूसरे लोग बड़ी खूबी से

आकर जीत का लाभ हड़प लेंगे। इसबात का भारी खतरा था क्योंकि खुद कांग्रेस के इसके बारे में निश्चित विचार नहीं थे कि हम लोगों को किस तरह की सरकार स्थापित करना चाहिए। कुछ कांग्रेसी तो···यही चाहते थे कि मौजूदा सरकार में ब्रिटिश या विदेशी अंश को निकालकर उसकी जगह स्वदेशी अंश दे दी जाए।"

एक लम्बी लड़ाई का अन्त आखिर इसी तरह हुआ। अनित्य···काजल··· भगतसिंह···जवाहरलाल नेहरू···सब जानते थे फिर भी···हुआ वही जिसका सबको डर था। जानता तो अविजित भी था···जानता है···बस महसूस तब करता है जब कोई काजल या चड्ढा उसकी याद दिला दे।

८

"जो स्वतन्त्रता लड़कर ली जाए उसका मूल्य और होता है," काजल ने कहा।

"तब हम शासक को ही नहीं, उसके द्वारा आरोपित मानदण्डों और सामाजिक व्यवस्था को भी उखाड़ फेंकते हैं।"

"अहिंसात्मक लड़ाई भी तो लड़ाई है," अविजित ने कहा।

न चाहते हुए भी अविजित के लिए दलील देना जरूरी क्यों हो जाता है?

"हां," काजल ने कहा, "पर उसका अन्त समझौते में होता है। शासकों से समझौता करने का अर्थ ही है स्वाभिमान का ह्रास और नपुंसकता का उदय। ऐसे लोग हमेशा परिवर्तन से डरते हैं। हमीं को देखो न। हमने न अपने शासकों की शासन-प्रणाली बदली न शिक्षा-प्रणाली।"

अविजित ने काजल पर से नजरें हटाकर फ़ाइल पर जमा लीं पर वहां भी तो···

"···हिंसा का अर्थ है," उसने पढ़ा, "अन्याय के लिए किया गया बल प्रयोग। पर क्रान्तिकारियों का यह उद्देश्य नहीं है, दूसरी ओर अहिंसा का आम अर्थ है आत्मिक शक्ति और सिद्धान्त। अपने-आपको कष्ट देकर आशा की जाती है कि इस प्रकार अन्त में विरोधी का हृदय परिवर्तन सम्भव होगा। सत्याग्रह का अर्थ है सत्य के लिए आग्रह। उसकी स्वीकृति के लिए केवल आत्मिक शक्ति के प्रयोग का आग्रह क्यों? इसके साथ-साथ शारीरिक बल प्रयोग भी क्यों न किया जाए? क्रान्तिकारी स्वतन्त्रता प्राप्ति के

पर रोज शाम को मार पड़ती है, खाना नहीं मिलता और कोल्हू में जुता रहना पड़ता है। काम करने पर प्यास लगती है पर पानी मांगने पर पीठ पर डंडा बरसता है। बेहोश होने पर भी काम से छुटकारा नहीं है।

जेल प्रशासन का उद्देश्य ही है उन्हें तिल-तिल करके मारना या आत्मघात पर बाध्य करना। नहाते-धोते समय वन्दी आपस में इशारे भी कर लें तो खड़ी हथखड़ी की सजा मिल जाती है। सिर से ऊँचे कुंडे से दोनों हाथ हथकड़ी से फिट कर के वन्दी को खड़ा कर दिया जाता है। जागना-सोना उसी हालत में···साल दिन तक !

मिट्टी का तेल और कीड़े मिला खाना मिलता है और उसे खाने के लिए भी इतना कम समय कि पूरा खा नहीं पाते। और न खाने पर भी दंड मिलता है।

उल्हासकरदत्त के बारे में सुना है। उसे हाथ-पैर बांध कर कोल्हू घुमाने वाली लकड़ी से बांध दिया गया था। बाकी वन्दी कोल्हू तेजी से घुमाते और बँधा हुआ उल्हास-कर साथ घिसटता रहता। सिर जमीन से टकराता, शरीर लहूलुहान हो जाता। फिर उसे ईंट ढोने और ऊँची चढ़ाई पर चढ़ कर पानी लाने-पहुंचाने का काम दिया गया। शक्ति ने जवाब दे दिया सो जंजीर से बांध कर लटका दिया गया और उसी हालत में वह पागल हो गया। और भी कितने ही वन्दी वहां पागल हो गए या उन्होंने आत्महत्या कर ली।

इन लोगों के बारे में कितने लोग जानते हैं ? जानते हुए कितने हैं जो इस सबसे उद्वेलित होते हैं ?

"आतंकवादियों को सरकार राजनैतिक वन्दी नहीं मानती, क़ातिल और डकैत मानती है," अविजित ने कहा।

"गान्धीजी भी यही मानते हैं," अनित्य ने कहा।

"नहीं।"

"नहीं कैसे ? अपनी हालत में सुधार लाने के लिए वे लोग स्वयं अनशन कर रहे हैं। यतीन्द्रनाथ की पिछले साल मौत हुई। गान्धीजी ने तो उनके लिए उपवास नहीं रखा।"

१९३२ में अविजित खुद जेल गया तो बात अच्छी तरह समझ में आ गई। जेल की यातनाएं सह कर क्रान्तिकारियों ने जो अनशन किया था उसका नतीजा यह निकला था कि क़ैदियों की खुल्लमखुल्ला तीन श्रेणियां बन गई थीं—ए, बी और सी। बाहर के समाज का वर्ग-विभेद भीतर जेल में भी लागू हो गया था। लागू तो पहले से था, अब स्वीकार कर लिया गया। कैसी विडम्बना थी कि जिन लोगों ने अनशन किया था वही 'सी' क्लास में जा पड़े।

पंडित नेहरू ने उन दिनों कहा था,"···सर्वसाधारण तो लड़ेंगे और क़ुर्बानी करेंगे और जब क़ामयाबी का वक़्त आएगा तब ऐन मौक़े पर दूसरे लोग बड़ी खूबी से

आकर जीत का लाभ हड़प लेंगे। इसबात का भारी खतरा था क्योंकि खुद कांग्रेस के इसके बारे में निश्चित विचार नहीं थे कि हम लोगों को किस तरह की सरकार स्थापित करना चाहिए। कुछ कांग्रेसी तो…यही चाहते थे कि मौजूदा सरकार में ब्रिटिश या विदेशी अंश को निकालकर उसकी जगह स्वदेशी छाप दे दी जाए।"

एक लम्बी लड़ाई का अन्त आखिर इसी तरह हुआ। अनित्य…काजल…भगतसिंह…जवाहरलाल नेहरू…सब जानते थे फिर भी…हुआ वही जिसका सबको डर था। जानता तो अविजित भी था…जानता है…बस महसूस तब करता है जब कोई काजल या चड्ढा उसको याद दिला दे।

८

"जो स्वतन्त्रता लड़कर ली जाए उसका मूल्य और होता है," काजल ने कहा।

"तब हम शासक को ही नहीं, उसके द्वारा आरोपित मानदण्डों और सामाजिक व्यवस्था को भी उखाड़ फेंकते हैं।"

"अहिंसात्मक लड़ाई भी तो लड़ाई है," अविजित ने कहा।

न चाहते हुए भी अविजित के लिए दलील देना जरूरी क्यों हो जाता है?

"हां," काजल ने कहा, "पर उसका अन्त समझौते में होता है। शासकों से समझौता करने का अर्थ ही है स्वाभिमान का ह्रास और नपुंसकता का उदय। ऐसे लोग हमेशा परिवर्तन से डरते हैं। हमी को देखो न। हमने न अपने शासकों की शासन-प्रणाली बदली न शिक्षा-प्रणाली।"

अविजित ने काजल पर से नजरें हटाकर फाइल पर जमा ली पर वहां भी तो…

"…हिंसा का अर्थ है," उसने पढ़ा, "अन्याय के लिए किया गया बल प्रयोग। पर क्रान्तिकारियों का यह उद्देश्य नहीं है, दूसरी ओर अहिंसा का आम अर्थ है आत्मिक शक्ति और सिद्धान्त। अपने-आपको कष्ट देकर आशा की जाती है कि इस प्रकार अन्त में विरोधी का हृदय परिवर्तन सम्भव होगा। सत्याग्रह का अर्थ है सत्य के लिए आग्रह। उसकी स्वीकृति के लिए केवल आत्मिक शक्ति के प्रयोग का आग्रह क्यों? इसके साथ-साथ शारीरिक बल प्रयोग भी क्यों न किया जाए? क्रान्तिकारी स्वतन्त्रता प्राप्ति के

लिए शारीरिक एवं नैतिक शक्ति दोनों के प्रयोग में विश्वास करता है परन्तु नैतिक शक्ति का प्रयोग करने वाले, शारीरिक बल को निषिद्ध मानते हैं। इसलिए अब सवाल यह नहीं है कि आप हिंसा चाहते हैं या अहिंसा बल्कि प्रश्न यह है कि आप अपनी उद्देश्य की पूर्ति के लिए शारीरिक बल सहित नैतिक बल का प्रयोग करना चाहते हैं या केवल आत्मिक शक्ति का।

"आतंकवाद सम्पूर्ण क्रान्ति नहीं और क्रान्ति भी आतंकवाद के बिना पूर्ण नहीं। यह तो क्रान्ति का एक आवश्यक और अवश्यम्भावी अंग है। इस सिद्धान्त का समर्थन इतिहास की किसी भी क्रान्ति का विश्लेषण कर जाना जा सकता है। आतंकवाद आततायी के मन में भय पैदा करके पीड़ित जनता में प्रतिशोध की भावना जाग्रत कर उसे शक्ति प्रदान करता है। अस्थिर भावना वाले लोगों को इससे हिम्मत बंधती है तथा उनमें आत्म-विश्वास पैदा होता है। इसमें दुनिया के सामने क्रान्ति के उद्देश्य का वास्तविक रूप प्रकट हो जाता है क्योंकि ये किसी राष्ट्र की स्वतन्त्रता की उत्कट महत्वाकांक्षा के विश्वास दिलाने वाले प्रमाण हैं।

"···क्रान्तिकारी जानते हैं कि कांग्रेस ने जन-जाग्रति का महत्वपूर्ण कार्य किया है। उसने आम जनता में स्वतन्त्रता की भावना जाग्रत की है। क्रान्तिकारी तो उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे हैं जब कांग्रेस आन्दोलन से अहिंसा की यह सनक समाप्त हो जाएगी और वह क्रान्तिकारियों के कन्धे से कन्धा मिलाकर पूर्ण स्वतन्त्रता के सामूहिक लक्ष्य की ओर बढ़ेगी।

"···वास्तव में गांधीजी जिस रूप में सत्याग्रह का प्रचार करते हैं वह इस प्रकार का आन्दोलन है जिसका स्वाभाविक परिणाम समझौते में होता है जैसा कि प्रत्यक्ष देखा गया है···"

दरअसल अहिंसा की सनक खत्म नहीं हुई थी, बढ़ती ही चली गई थी। अन्त में स्वतन्त्रता मिली भी तो समझौते के रूप में। दूसरे विश्वयुद्ध में भारत को आर्थिक रूप से पूरी तरह निचोड़ लेने के बाद ही अंग्रेज शासकों ने उसे छोड़ा था, वह भी इसलिए कि निगल पाना असम्भव हो रहा था।

"वह समय ही ऐसा था कि गान्धीजी के सिवाय दूसरा आदमी जन-जाग्रति ला ही नहीं सकता था," फिर भी अविजित ने कहा, "यह भगतसिंह ने भी माना है। और जन-जाग्रति के बिना आजादी···"

"भूल गए, गांधीजी ने करांची कांग्रेस में काले झण्डों से स्वागत होने पर क्या कहा था—इतनी जन-जाग्रति मैं दस वर्ष में नहीं ला पाया जितनी भगतसिंह को फांसी लगने से पैदा हो गई।"

"हां···वह तो है···" अविजित ने कहा, "तुम्हें भगतसिंह पर बहुत मोह है··· हमेशा से रहा है, है न ?"

"तुम जो मुकर्जी बाबू की तरह बोल रहे हो," काजल ने कहा।

"मुकर्जी बाबू कौन ?"

"मेरे पति।"

"...."

"कांग्रेसी हैं। १९४२ में माफ़ी मांगकर जेल से छूट गए थे। आदमी तिकड़म-बाज़ हैं...आज़ादी मिलने पर बसकर लीडरों की चापलूसी की। मन्त्री बन गए। कहने लगे, तुम्हें भगतसिंह पर इतना मोह क्यों है? कांग्रेसी की पत्नी को यह शोभा नहीं देता। मैंने कहा, मोह मुझे भगतसिंह पर नहीं, इतिहास पर है।"

प्रविजित उसके जवाब को झेलता कुछ देर चुप रहा, फिर बोला, "मुकर्जी बाबू से तुम्हारी शादी कैसे हुई?"

"क्यों?" काजल ने कहा, "तुम्हारी तरह क्या सभी शादी से इन्कार कर देते हैं।"

प्रविजित का मुंह सूख गया।

काजल सहसा हंस दी। बोली, "मुकर्जी बाबू सिर में तेल मालिश बढ़िया करते हैं।

प्रविजित ने मुंह उठाकर उसकी तरफ़ देखा और उसकी हंसी से वशीभूत होकर खुद भी हंस दिया।

बोला, "इसीलिए शादी कर ली?"

"और जो बुराई उनमें हो," काजल ने कहा,"सिर-दर्द के लिए अच्छे आदमी हैं।"

"मालिश मैं भी बढ़िया करता हूं," प्रविजित ने कहा।

"मेरे सिर में अब दर्द नहीं होता," काजल ने फ़ौरन कहा, "मुकर्जी बाबू ने हमेशा के लिए ठीक कर दिया।"

"फिर छोड़ क्यों दिया उन्हें?" तिलमिला कर प्रविजित कह गया पर कह कर बुरी तरह लज्जित हो उठा।

"माफ करना काजल", उसने कहा, "यह सब पूछने का..."

"अधिकार तुम्हें नहीं है, यह सच है," काजल ने कहा, "फिर भी बतलाने में मुझे एतराज़ नहीं है।"

कुछ देर चुप रह कर काजल एकदम गम्भीर हो उठी।

"छोड़ने से इतना डरना नहीं चाहिए, प्रविजित," उसने कहा, "गलत मूल्य को सिर्फ़ इसलिए छाती से चिपकाए रखना क्योंकि एक दिन उचित समझ कर उसे ग्रहण किया था, अपने को छलना भर है और कुछ नहीं।"

बात उससे कही गई है, प्रविजित समझ गया पर जवाब देने को कुछ नहीं मिला।

कुछ ठहर कर काजल ने कहा, "उनकी सिर मालिश की कला से ही शायद प्रभावित हो कर बाबा मुकर्जी बाबू को इतना बड़ा सर्टिफिकेट दे गए कि बिना सोचे-विचारे ही मैंने उनसे ब्याह कर लिया।"

"तुम्हारे बाबा..."

उन्हेंछोड़ दिया न।"

"तो ? मेरे पति न सही, मान्य पुरुष तो अब भी हैं। उद्योगमंत्री मुकर्जी कोई छोटी चीज़ तो हैं नहीं।"

"उद्योगमंत्री मुकर्जी !" अविजित के मुंह से निकला, "वही क्या तुम्हारे पति हैं ?"

"थे।"

"थे ही सही।"

"हां। तुम उन्हें जानते हो ?"

"नहीं, जानता तो नहीं···यानी निजी तौर पर नहीं जानता···मुझे उनसे काम है।"

"हो जाएगा।"

"यानी ?"

"बस रक़म तगड़ी लगेगी। दिक्क़त क्या है ? तुम लोग 'ए' क्लास के आदमी हो। कम्पनी के पास रुपयों की कमी तो होगी नहीं।"

ए क्लास के आदमी !

अविजित का सारा शरीर जल उठा।

"रुपयों की कमी तो तुम्हारे पास भी नहीं होगी," उसने कहा, "तुम्हारी सम्पत्ति···"

"वह तो मैंने दहेज में दे दी।"

उठने को उद्यत अविजित लज्जित-सा बैठा रह गया।

"घर छोड़ते वक़्त मुकर्जी बाबू से कहा था, रुपया-पैसा सब आप रखें, बस बेटे को मैं ले जाऊंगी। ले आई थी पर···जानते हो अविजित, देश का क़ानून बेटे को बाप के हवाले करता है और मौक़ापरस्त आदमी अच्छा बाप नहीं बन सकता, कोई कोर्ट यह दलील मानने को तैयार नहीं है।"

"तुम्हारा बेटा वहीं है ?" अविजित ने कोमल स्वर में पूछा।

"हां। पहले कुछ नहीं कहा···बाद में···कोर्ट आर्डर दिखला कर मेरे पास से ले गए···" एक क्षण को काजल विह्वल हो उठी, फिर बोली, "मेरी लड़ाई जारी है। एक दिन···ज़रूर···"

नहीं जीत पाओगी, अविजित ने नहीं कहा। सोचा ज़रूर, मौक़ापरस्त आदमी देश पर राज कर सकता है तो बाप क्यों नहीं बन सकता।

पंडित नेहरू ने कहा था—क़ामयाबी तभी हासिल होनी चाहिए जब आदमी उसके क़ाबिल हो वरना क़ुर्बानी कोई देगा और ऐन मौक़े पर हुकूमत मौक़ापरस्त लोगों के हाथों में चली जाएगा।

उसके ससुर जज सिंघल ने कहा था—हुकूमत चाहे अंग्रेज के नाम पर चले चाहे कांग्रेस के या किसी और पार्टी के, हुक्मरान वही रहेंगे···हुकूमत अफ़सर करते हैं, नारे नहीं और अफ़सर का दूसरा नाम है हुकूमत का तजुर्बा···मेरी जगह जज उस किसान

को नहीं बनाया जा सकता जिसे १६४२ में मुझे देश के क़ानून के नाम पर सज़ा सुनानी पड़ी थी।

सुनानी पड़ी ! समय की मांग थी ! लड़े, क्योंकि लड़ना पड़ा···समझौता किया क्योंकि करना पड़ा···सज़ा दी क्योंकि देनी पड़ी । रिश्वत···देते हैं क्योंकि देनी पड़ती है···समय की मांग है ! अकेली काजल किस-किस से लड़ेगी ?
मैं भी कितना पागल हूं, पर के रास्ते में अविजित ने सोचा, शान्ति की खोज में काजल के पास गया था । काजल और शान्ति···

"वैसा बात है । आदमी आखिर अपने क़द से कितना ऊंचा उठेगा ?"

अनित्य ! अनित्य तुम मेरे पीछे-पीछे हर जगह क्यों आ जाते हो ?

"मैं आपके पीछे-पीछे नहीं आता । आप ही हरदम मुझे साथ लेकर चलते हैं ।"

"पर तुम्हारी बात ग़लत है ।"

"क्यों ?"

"व्यतीत में जी कर कोई आदमी शान्ति नहीं पा सकता ।"

"और अगर किसी का वर्तमान व्यतीत में से निकलता हो ?"

"काजल इतिहास पढ़ाती है, इतिहास पर उसका मोह स्वाभाविक है···व्यतीत में उसका जीना भी स्वाभाविक है पर मैं···"

"पर आप ?"

"मैं वह सब भूल चुका हूं ।"

अनित्य हंस दिया ।

"नहीं भूला तो भूल जाना चाहिए । १६४२ में जो कुछ मुझसे हुआ मैंने किया । जो नहीं हुआ उसके लिए क्या मैं ज़िम्मेवार हूं ?"

"ज़िम्मेवार वह है जो ज़िम्मेवारी माने ।"

"मैं क्यों ? मैं ही क्यों ?"

अजीब थी अगस्त १६२४ की लड़ाई ! जनक्रान्ति और किसे कहेंगे ! मध्यम वर्ग के युवा विद्यार्थी और साधनहीन किसान एकजुट होकर अंग्रेज़ी सत्ता के विरुद्ध टूट पड़े । दस हज़ार के ऊपर लोग मारे गए; लाख से ऊपर जेलों में बन्द हो गए । पर···नतीजा कुछ नहीं निकला ।

बहादुरी संगठन बिना हार गई ।

संगठन इसलिए नहीं हुआ कि नेता 'जेलों' में बन्द थे या इसलिए कि वे जानते नहीं थे पार्टी से चाहते क्या हैं ?

और नेता · क्या पार्टी के लोग दुविधा में थे या दुविधा में रहना राजनीति की दृष्टि से लाभदायक था ?

"ग़लत यह हुआ कि आप लोगों में राष्ट्रीय जागृति आने से पहले ही अन्तर्राष्ट्रीय

जाग्रति आ गई।"

किसने कहा था?···मिस्टर मार्शल ने।

मिस्टर मार्शल न मिले होते तो शायद अविजित वह किताब भी न लिखता जिसके कारण···

१९४२ का अन्त हो चला था···

शाम के घिरते झुटपुटे में, बीते दिनों की याद दिलाता, चड्ढा एक दिन अचानक उसके घर आ पहुंचा। नुकीली दाढ़ी और क्रिश्चियन पादरी के लबादे में अविजित उसे पहचान नहीं पाया था···खुद उसी को अपना नाम बतलाना पड़ा था। एक बार जान लेने पर, तो खैर···

"लगता है," चड्ढा ने कहा था, "मैं अब जल्दी गिरफ़्तार हो जाऊंगा।"

"मैं कुछ कर सकता हूं तेरे लिए?" अविजित ने पूछा था।

"इसीलिए तो आया हूं। तुझ पर कोई शक़ नहीं करेगा···"

"क्यों नहीं करेगा?" अविजित को उसका संकेत बींध गया था, "मेरा रिकार्ड काफ़ी खराब है," उसने कहा था।

"इसीलिए तो तेरे पास आया हूं," चड्ढा ने मुस्करा कर कहा था, "मुझे ऐसे आदमी की जरूरत है जिस पर न मुझे शक़ हो और न सरकार को।"

"करना क्या है?"

"यह रुपया और कागज़ रख ले, बस। बाक़ी का तू कुछ न जाने तो ही अच्छा है। अगर मैं पकड़ा नहीं गया तो खतरा कम होने पर आकर ले जाऊंगा। वरना हमारा कोई आदमी आएगा। पासवर्ड होगा—पीला साफ़ा।" चड्ढा ने उसे काम की बात समझा दी थी।

अपने बारे में खोल कर कुछ बतलाया नहीं था पर अविजित समझ गया था कि वह किसी भूमिगत दल के लिए काम कर रहा है। यह भी कि कुछ दिनों से वह महसूस करता रहा है कि पुलिसवालों को उसका सुराग़ मिल गया है, इसलिए दल को छोड़कर दूर निकल आया है···बिहार की सरहद पार करके कलकत्ता। दल के सदस्यों को बचाए रखने के लिए ज़रूरी है कि वह उनकी गतिविधियों के स्थानों से दूर रह कर गिरफ़्तार हो। अविजित पर शक़ नहीं होगा, वह लड़ने वालों की क़तार में नहीं है। दस साल पहले विद्यार्थी जीवन में भले ही अनाचार हो गया हो पर आज, प्रसिद्ध उद्योगपति के मैनेजर और जज सिंघल के दामाद होने की हैसियत से वह शक़ के घेरे से बाहर है।

अविजित ने रुपया और कागजात ले जाकर दफ़्तर की मेज़ में बन्द कर दिये थे। अपने सेक्रेटरी भण्डारी से कह दिया था कि वह बंडल निजी और गोपनीय है। और कुछ कहने की ज़रूरत नहीं थी। भण्डारी भरोसे का आदमी था···इसीलिए तो कलकत्ता छोड़ कर दिल्ली आने पर ढूंढ कर उसे साथ लेता आया है···उसकी वफ़ादारी सिर्फ़ अविजित से ताल्लुक़ रखती थी। उसके लिए वह सब कुछ करने को तैयार था—

पतिव्रता पत्नी की तरह। मन, कितना सुखद, कितना सहज है व्यक्तिगत, स्वामिभक्ति का अस्तित्व और निर्वाह। दुविधाहीन! व्यक्तिगत मोह के सहारे ठोस धरती पर खड़ा!

पांच दिन के अन्दर अंग्रेज पुलिस इन्सपेक्टर मार्सल उसके दफ्तर में आ धमका।

"पुलिस इन्सपेक्टर मार्सल," अपना परिचय देकर उसने कहा, "तलाशी लेनी है।"

इतनी जल्दी!

"क्या लेनी है?" अविजित ने अवकाश प्राप्त करने के लिए पूछा।

"तलाशी।"

"तलाशी? हमारे दफ्तर की? किसलिए?"

"हमारी सूचना है कि आपका 'सियाराम क्रांतिकारी दल' से सम्बन्ध है," मार्सल ने अंग्रेजी में कहा।

अविजित ने नोट किया, मार्सल ने 'रेवोल्यूशनरी' शब्द का प्रयोग किया है, 'टैररिस्ट' या 'क्रिमिनल' का नहीं। क्रांतिकारी शब्द का इस्तेमाल भी निहायत शालीनता से किया गया है, हिकारत या व्यंग्य का पुट तक नहीं है। एक क्षीण-सी आशा उसके मन में उभर आई। शायद···

"हमारा?···बिड़ला ग्रुप का?" विक्षुब्ध स्वर में उसने ऐसे पूछा जैसे बुरी तरह अपमानित कर दिया गया हो।

मार्सल के ओंठ हल्के-से काँपे। शायद वह मुस्कराया था।

"नहीं, मिस्टर वसन, आपका। बिड़ला ग्रुप से अलग आप एक व्यक्ति भी हैं।" उसने कहा।

"माफ़ कीजिए, इन्सपेक्टर मार्सल," राजभक्त जोश के साथ अविजित ने कहा, "आपको बतलाने की जरूरत मुझे नहीं होनी चाहिए कि युद्ध के दौरान व्यक्ति, व्यक्ति नहीं, कर्त्तव्य निभाने वाला पुर्जा भर होता है। मैं बिड़ला ग्रुप का मैनेजर हूं, बस, और कुछ नहीं। हमारी फ़ौजों को इस वक्त कपड़े की जरूरत है। मेरा काम है, कपड़े का अधिकतम उत्पादन करना। बस! और कुछ नहीं। मैं देखता नहीं हूं, सुनता नहीं हूं, बस काम करता हूं। आप जानते हैं, इन्सपेक्टर मार्सल, 'वार एफ़र्ट' में हमारा कितना बड़ा योगदान है?" अविजित का स्वर बराबर ऊपर उठता चला जा रहा था।

उसने देखा भण्डारी आकर कमरे के दरवाजे पर खड़ा हो गया है। यही मौका है, उसने तय किया।

गुस्से से उसका बदन थरथरा उठा। आंखों में सुर्ख डोरे खिंच गए। आवाज को भरसक तोड़ कर ऊपर उठाते हुए उसने कहा, "आप हमारी तलाशी लेना चाहते हैं, हमें जलील करना चाहते हैं। यही इनाम है बरसों की हमारी वफ़ादारी का, सालों सर्व्हिस का? इन्सपेक्टर मार्सल, आपको मालूम होना चाहिए, हमी हैं वे लोग जिनके बलबूते पर ब्रिटेन आज फ़ख्र से कह सकता है—फासिज्म से जीत हमारी होगी। आप

समझते हैं, यह सिर्फ़ आपकी लड़ाई है, हमारी नहीं ? क्यों हम आपके मोर्चों पर जान दे रहे हैं, क्यों तंगहाली में रह कर आपकी फ़ौजों के लिए माल जुटा रहे हैं, इसलिए कि आप जब चाहें हमें ज़लील कर लें···?" अविजित की आवाज़ रुंध गई, आंखों में विक्षिप्त चमक आ गई।

"मिस्टर वंसल···" मार्शल ने बाधा दी।

"मिस्टर वंसल ! कौन मिस्टर वंसल ? आपके लिए मैं एक अपराधी हूं। एक देशद्रोही ! तलाशी लेने आए हैं न आप ? लीजिए, तलाशी लीजिए···लीजिए···" अविजित ने मेज़ की दराज़ खींच कर बाहर निकाल ली।

भीतर पड़े कागज़ों को उछाल-उछाल कर कमरे में चारों तरफ़ फेंकने लगा। फिर, मार्शल और भण्डारी के देखते-देखते उसने खटाक से खाली दराज़ बन्द कर दी और तान कर एक लात मेज़ पर जमाई। तेज़ी से लुढ़कती हुई मेज़ दरवाज़े पर खड़े भण्डारी के पास जा रुकी।

"लीजिए तलाशी," अविजित ने कहा, "शौक़ से लीजिए···पर इतना याद रखिएगा, एक दोस्त आज आपने खो दिया···"

"सर···सर···प्लीज़ अपने पर क़ाबू रखिए," कहता भण्डारी मेज़ सीधी कर रहा था।

"···एक वफ़ादार हिन्दुस्तानी। साम्राज्य का ईमानदार मददगार। यह मेरी ही नहीं, तमाम भारतीय उद्योग की बेइज़्ज़ती है, खुद सरकार की बेइज़्ज़ती है···" अविजित चीखे चला जा रहा था।

"पानी···चपरासी···पानी···नहीं, मैं लाता हूं···" भण्डारी ने चिल्ला कर कहा और बाहर दौड़ गया।

अविजित समझ गया उसने कागजात दराज़ में से निकाल लिये हैं।

"आई रिज़ाइन···मैं इस्तीफ़ा दे रहा हूं," अविजित चीखा और मेज़ पर रखी चाभियां उठाकर मार्शल के पैरों के पास फेंक दीं।

"यू आर द मास्टर। जो जी में आए कीजिए···मैं जाता हूं···" लड़खड़ाते-से क़दम उसने आगे बढ़ाए और कुर्सी में ढह गया।

"तलाशी ले लो," मार्शल ने साथी हिन्दुस्तानी सब-इन्स्पेक्टर से कहा।

तभी पानी का गिलास हाथ में लिए चपरासी भीतर घुसा।

मार्शल ने उसके हाथ से गिलास ले लिया और अविजित के पास चला आया। गिलास उसके हाथ में थमाता हुआ नीचे झुका और क़रीब-क़रीब उसके कान में फुसफुसाता हुआ बोला, "वेल डन, मिस्टर वंसल।"

अविजित कुछ कहे, इससे पहले ही वह कमरे से बाहर हो गया। भण्डारी वापस आया तो अविजित खूब खुश था।

"हिप्पोक्रेट को हिप्पोक्रेट ही हरा सकता है," उसने कहा था।

कागज़ भण्डारी ने जला डाले थे। बीस हज़ार रुपये दूर के अपने रिश्तेदार के

नाम बैंक में जमा कर दिये थे। रुपया या कागजात लेने कोई नहीं आया था। अविजित को काफ़ी अचरज हुआ था कि आगे तहक़ीक़ात क्यों नहीं हुई। कोई आया नहीं, इसका मतलब था कि चड्ढा के दल के सभी सदस्य गिरफ्तार हो चुके थे।

तीन साल बाद १९४५ में जब चड्ढा मिला था तो उसने इस बात की पुष्टि की थी।

···कुछ दिनों तक वह सोचता रहा था आगे कारंवाई क्यों नहीं हुई···भण्डा-फोड़ होने पर बात अविजित तक कैसे नहीं पहुंची···पर ज्यादा दिन नहीं···जल्दी ही राज खुल गया था···

जीत अविजित की नहीं, मिस्टर मार्शल की हुई थी।

दस दिन बाद, सादी पोशाक में मार्शल को अपने दफ्तर में आया देख अविजित चौंक उठा था।

"फिर तलाशी लेनी है?" उसने पूछा।

"मैं यूनिफ़ार्म में नहीं हूं," मार्शल ने कहा।

"तो क्या हुआ, पुलिस में तो हैं।"

"वह भी नहीं हूं। इस्तीफ़ा दे चुका।"

"क्या कह रहे हैं, इन्स्पेक्टर मार्शल!"

"मिस्टर मार्शल।"

"पर क्यों?"

"मिस्टर बंसल, मेरा यक़ीन कीजिए, मैं कोई राज जानने नहीं आया। आपको अपने घर बुलाने आया हूं।"

"मुझे? क्यों?"

"मुझे बात करने के लिए आदमी चाहिए।"

"पर मैं क्यों?"

"आप हिन्दुस्तानी हैं।"

"तो···?"

"प्लीज़ मिस्टर बंसल," मार्शल ने कहा और जेब से निकाल कर एक तार उसे पकड़ा दिया।

अविजित ने पढ़ा—"···ईराक के मोर्चे पर बहादुरी से लड़ते हुए आपका बेटा शहीद हुआ···"

तीन दिन पहले की ख़बर है। तार आज ही पहुंचा है।

मार्शल के बेटे की मौत की ख़बर से उसका, अविजित का क्या ताल्लुक़?

"मैं···आप···" उसने कहा, "चलिए।"

सादा ढंग से सजी बैठक में एक ही नौजवान का चित्र कई जगह टंगा था। भोला

सा चेहरा। खूबसूरत। मार्शल से एकदम फ़र्क।

"मेरा बेटा···" मार्शल ने कहा।

"वही···"

"हां, एक ही बेटा था मेरा।"

"आपकी पत्नी···"

"नहीं है।"

दोनों चुपचाप नौजवान का चित्र देखते रहे।

"मिस्टर बंसल," सहसा मार्शल ने कहा, "आप मुझे बतला सकते हैं, मेरा बेटा ईराक के मोर्चे पर क्यों मरा?"

"मैं समझा नहीं," सकपका कर अविजित ने कहा।

"आप उसकी मौत को जायज़ मानते हैं?"

"लड़ाई के मैदान में, मिस्टर मार्शल, जायज़-नाजायज़ का सवाल कहां उठता है?" अविजित ने व्यथित बाप से हमदर्दी जतलाने वाले स्वर में कहा।

"किसकी लड़ाई है यह?" मार्शल ने तड़पकर कहा, "आपकी तो नहीं।"

"जी?" अविजित भौंचक था।

"क्यों इतने हज़ार हिन्दुस्तानी ब्रिटिश फ़ौज में भरती होकर जान गंवा रहे हैं? यह उनकी लड़ाई तो नहीं है।"

"फ़ासिज़्म के खिलाफ़ लड़ाई सब की लड़ाई है।" अविजित ने कहा पर उसे अपना वाक्य एकदम खोखला लगा।

"हिप्पोक्रेट्स! हिप्पोक्रेट्स! आप लोग इतने ढोंगी क्यों हैं?" मार्शल ने तल्खी के साथ कहा।

अविजित ने बेहद अपमानित महसूस किया। अपने को संयत रखने के लिए उसे याद करना पड़ा कि इस आदमी को अभी-अभी अपने बेटे की मौत की खबर मिली है।

"मैं आपका मतलब नहीं समझा," उसने कहा।

"जो आदमी अपने देश की आज़ादी के लिए लड़ने को तैयार न हो और दुनिया की स्वाधीनता के नाम पर लड़ता फिरे, उसे और क्या कहेंगे?"

अविजित को जवाब नहीं सूझा।

"गलत यह हुआ कि आप लोगों में राष्ट्रीय जाग्रति आने से पहले ही अंतर्राष्ट्रीय जाग्रति आ गई," मार्शल ने धीमे से कहा।

उसकी बात अविजित को भीतर तक चीरती चली गई। चुप रह कर वह उसे, झेलता रहा।

जब उनके बीच की चुप्पी भारी हो चली तो उसने कहा, "यह आप कह रहे हैं, मिस्टर मार्शल?"

मार्शल ने एक लम्बी सांस खींच कर सिर कुर्सी से टिका दिया। देर तक अपने में डूबा रहा, फिर बोला, "मेरा बेटा भी हिन्दुस्तानी था।"

छोड़कर अविजित उसकी तरफ ताकता रह गया।

“१९१६ [illegible] “हावड़ा में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ था…वहीं एक घर के अन्दर से टोकरी में जतन से छिपा कर रखा, यह छोटा-सा बच्चा मुझे मिला…बस्ती मुसलमानों की थी, बच्चा भी मुसलमानों का रहा होगा पर मुसलमान हुई नहीं थी, पर कुछ नहीं कहा जा सकता था…हिन्दू-मुस्लिम परिवारों में से कोई भी उसे पालने को तैयार नहीं था। मैंने सोचा मैं ही पाल लूं। सोचा क्या बस मोह हो गया। साथ रख लिया। देश से दूर यहां अकेला पड़ा था। शादी की नहीं। बच्चा पलने लगा। पता नहीं कब मेरा बेटा बन गया। हम लोगों के यहां बहुत सुविधा है, मिस्टर बगल। कोई भी इन्सान निश्चिन्त बन सकता है!”

“जब आपने गोद ले लिया तो वह हिन्दुस्तानी नहीं अंग्रेज ही हुआ,” अविजित ने कहा।

“नहीं-नहीं, मिस्टर बगल, गलत है यह, बिल्कुल गलत! वह इस देश में पैदा हुआ। हिन्दुस्तानी रहेगा वह। उसे…इस देश के लिए लड़ना चाहिए था।”

“आपने उसे बतलाया था कि वह हिन्दुस्तानी है?”

मार्शल चुप रहा, फिर गहरी निःश्वास छोड़ कर बोला, “इन्सान की कमजोरी की कोई हद नहीं है, मिस्टर बगल। सारी उम्र मैंने उसे नहीं बतलाया कि वह मेरा असली बेटा नहीं है पर…एक दिन जब वह मुझे बिना बताये फौज में भरती हो गया तो मैं बेहद डर गया। कायर की तरह उससे कह बैठा—तू तो हिन्दुस्तानी है, अंग्रेजों की लड़ाई लड़ने क्यों जा रहा है? ठीक नहीं हुआ। नहीं, यह तरीका नहीं है किसी को रोकने का। उसने कहा—मैं अकेला तो नहीं, कितने हजार हिन्दुस्तानी हैं जो यह लड़ाई लड़ रहे हैं। वह चला गया…मैं…”

इस बार की चुप्पी अविजित नहीं तोड़ पाया।

“अगर वह क्रान्तिकारी होता और फांसी पर लटका दिया जाता तो कम-से-कम मैं उसकी शहादत पर फख्र तो कर सकता था,” मार्शल ने धीमे से कहा।

“आप…पर आप तो…”

“पुलिस में था। हां, था। पर जो मदद पुलिस में रहकर मैं क्रान्तिकारियों की कर सकता था, बाहर रह कर नहीं।”

अविजित के चेहरे पर गहरा अविश्वास तैर गया।

‘मिस्टर बगल,” मार्शल ने कहा, “उस दिन मैंने आपके सेक्रेटरी को कागज निकालते देख लिया था।”

चेहरे को एकदम भावशून्य बनाए अविजित चुप बैठा रहा। कहीं यह जानकारी हासिल करने की साजिश तो नहीं।

“आप ‘हां-ना’ कुछ मत कहिए,” मार्शल बोला, “मैं आपसे इकरार करवाना नहीं चाहता। वैसे आपको बतला रहा हूं कि अब मैं पुलिस में नहीं हूं और न हिन्दुस्तान में ही रहूंगा। मैं जा रहा हूं वापिस अपने देश…मेरी उम्र सिर्फ पचास है…वहां जाकर

फ़ौज में भरती हो जाऊंगा···दुआ कीजिए, मिस्टर वंसल, मैं अपने देश के लिए लड़ते-लड़ते मारा जाऊं।"

अविजित ने चुपचाप अपना हाथ आगे बढ़ा दिया। मार्शल ने सरगर्मी से हाथ मिलाया और कहा, "आपके लिए क्या दुआ करूं, मिस्टर वंसल ?"

चाह कर भी अविजित देश की आज़ादी की बात मुंह पर न ला पाया।

"लड़ाई जारी रखिएगा," मार्शल ने ही कहा, "ज़िन्दा रहा तो आज़ाद हिन्दुस्तान को देखने एक बार लौट कर ज़रूर आऊंगा···होगा न आज़ाद ?"

"हां," अविजित ने कहा पर लगा जज सिंघल के दामाद और बिड़ला ग्रुप के फ़रमाबरदार मैनेजर को यह कहने का कोई अधिकार नहीं है।

"खुदा हाफ़िज़, मिस्टर वंसल," मार्शल ने कहा था और···वह चला आया था।

मार्शल हिन्दुस्तान छोड़कर चला गया था···

हारे हुए हताश सिपाही की तरह अविजित ने किताब लिख डाली थी और उसके चलते एक साल की जेल भी काट आया था। आज़ाद हिन्दुस्तान को देखने मार्शल लौट कर नहीं आया···अच्छा ही हुआ···

अविजित ने देखा, गाड़ी घर के दरवाज़े पर पहुंच गई···और अपने-आप रुक गई। मशीन है न। पर कनपटी की उसकी नस ! पिंजरे में बंद पक्षी-सी फड़फड़ाए चली जा रही है। सिर भट्टी-सा सुलग रहा है जैसे रेगिस्तान में मीलों लम्बा सफ़र तय करके लौटा हो···हां, लम्बा तो था ही सफ़र···मीलों नहीं, वरसों लम्बा। सफ़र मीलों में हो तो बदन टूटता है, दिमाग़ नहीं फटता···पर वक़्त के रेगिस्तान पर यह अन्तहीन सफ़र···एक दिशा से दूसरी दिशा में, हमेशा तपते सूरज के नीचे···एक चक्कर पूरा हुआ नहीं कि दूसरा शुरू। रेतीले भंवर में आदमी एक बार फंस जाए तो धंसता चला जाता है, उबर कर बाहर आना नामुमकिन ही है···नामुमकिन ? नहीं-नहीं, इतनी निराशा नहीं···एक बार···कमर कस कर, पूरा ज़ोर लगा कर बाहर निकलना ही है···अभी···फ़ौरन···

"प्रभा ! शुभा !" गाड़ी रुकते ही उसने ज़ोर से आवाज़ लगाई।

दोनों लड़कियां बाहर दौड़ आईं।

"चलो मेरे साथ," उसने कहा, "टेनिस खेलने !"

"अभी ?" दोनों ने एक साथ पूछा।

उसके इस आकस्मिक जोश ने उन्हें हतप्रभ कर दिया था।

"फ़ौरन !" उसने उसी जोशीली आवाज़ में कहा, "पूरी शाम बाक़ी है, दो-चार सेट हो जाएंगे।"

"पिताजी, मैं हमेशा प्रभा से हार जाती हूं," रास्ते में शुभा ने कहा।

"अब नहीं हारोगी। मैं सिखाऊंगा तुम्हें टेनिस खेलना। पता है मैं इलाहाबाद

यूनिवर्सिटी का टेनिस चैम्पियन था···आज देखते हैं कौन हमें हराता है !"

इधर-उधर भटकने संतप्त मन को क़ाबू में रखने का एक ही उपाय को थका डालो, थकाए रखो, एक पल का भी विश्राम मत करने दो। काम हो या खेल, बस जुटे रहो···हर पल···हर क्षण।

९

दफ़्तर जाने से पहले बैठक में सोफ़े पर बैठा अविजित आख़िरी सिगरेट पी रहा था कि स्वर्णा आकर दरवाज़े पर खड़ी हो गई।

"साहब," उसने धीमे स्वर में कहा।

अविजित डर गया।

स्वर्णा धीरे बोलती है तो डर लगता है। आदमी बहस-मुबाहसे के घेरे से बाहर हो तो लगेगा ही।

"क्या है ?" अविजित ने कहा।

"अगला माह में हम जाएगा।"

"कहाँ ?"

"कलकत्ता। उसका चिट्ठी आया है। वह कलकत्ता में डेरी खोल लिया है।"

"पहले देख तो लो, चलती है या नहीं।"

"चलेगा साहब," स्वर्णा ने कहा, "चलना ही होगा।"

स्वर्णा चली गई तो कैसे होगा ? क्या कहकर इसे रोकना होगा, समझ में नहीं आ रहा था।

"तुम्हें यहाँ कोई तकलीफ़ है ?" उसने पूछा।

वह जानता है, यह बिलकुल बेतुका सवाल है, फिर भी पूछ रहा है। पूछ सकता है क्योंकि वह कुर्सी पर बैठा है और स्वर्णा उसके सामने खड़ी है।

"नहीं, साहब," उसने कहा, "तकलीफ़ क्या होगा।"

"अगर तुम चाहो·· किसी चीज़ की कमी हो तो···" कोशिश करके भी अविजित तनख्वाह बढ़ाने की बात ज़बान पर न ला सका।

"बच्चा लोग तो है···फिर कमी क्या होगा," स्वर्णा ने कहा, "बच्चा लोग को

छोड़ेगा तो छाती फट जाएगा हमारा। आप जानता तो है हम किधर भी और नौकरी नहीं कर सकता···सुधांशु···खोखी···ये ही तो···किसी बच्चा को रोते सुनेगा तो हमारा दिल भी रोयेगा···अरे कहीं ये सुधांशु तो नहीं है···"

"फिर···"

"वह लिखा है, गाय-भैंस ले लिया।"

"तुम नहीं गईं तो वह लौट आएगा," अविजित ने कहा।

"लौटेगा तो···" स्वर्णा की आवाज़ डूब गई। जैसे कोई सपना देख रही हो, ऐसे देर तक चुपचाप खड़ी रही, फिर जो आवाज़ उभरी उसमें उमंग और सच्चाई की खनक थी।

"दो ठो गाय है, तीन ठो भैंस···एकटा साथी लिया तो है पर वो क्या करेगा। दोनों तो खूंट आदमी है···औरत रहेगा तब न···प्यार-पुचकार कर थन हाथ में लेगा तभी न···अच्छा, उज्ज्वल दूध का मोटा धार देख कर मन कैसा तो नाच उठता है, नहीं···?"

"अब कहां उस झंझट में पड़ोगी। नई जगह···नया काम···मवेशी पालना कोई हंसी-खेल नहीं है।" अविजित ने कहा।

यह ब्लैकमेल है, और कुछ नहीं। किसी की भावनाओं का यूं फायदा उठाना··· मनोबल ऐसे ही गिराया जाता है···पर वह क्या करे···आदमी का स्वार्थ···

उसने देखा, प्रभा आकर स्वर्णा के पीछे खड़ी हो गई है।

"झंझट!" स्वर्णा ने कहा, "झंझट तो ज़रूर होगा, साहब। बारह बरस हो गए हम लोग अपना गांव छोड़ दिया। ज़मीन···ढोर-डंगर···सब बिसरा दिया···हां, कितना तो झंझट था! अच्छा साहब, आप लोग तो कहता है, देश आज़ाद हो गया। अंग्रेज लोग सब इधर से चला गया पर हमारा ज़मीन तो वापिस नहीं मिला। अंग्रेज लोग उसको भी तो छोड़ा होगा न? मिलेगा नहीं, हम जानता है। हमीं लोग तो छोड़-कर भाग आया···होगा कोई दूसरा जो उधर खेती करता होगा। करने दो। ज़मीन नहीं मिलेगा। पर मवेशी जो मिला है तो पोसेगा ज़रूर! दो ठो गाय है···तीन ठो भैंस···" स्वर्णा का स्वर आकाश में उन्मुक्त उड़ते पक्षी-सा बह चला।

अविजित के अन्तस्तल को उसने छू लिया। वह शर्मिंदा हो आया।

सहसा अपनी बांहें स्वर्णा के गले में डालकर प्रभा बोल उठी, "ज़रूर पोसना ज़रूर!"

स्वर्णा ने चौंक कर उसकी तरफ़ देखा।

"क्या करता है!" संकुचित होकर उसने कहा।

"अपना काम शुरू किया है तो कलकत्ते ज़रूर जाना।" प्रभा उसके गले में झूल गई, फिर अविजित की तरफ़ ताक कर दृढ़ स्वर में बोली, "तू नहीं गई तो तेरी जगह मैं चली जाऊंगी।"

दंग रह कर अविजित ने उसे देखा।

ठीक कहा था काजल ने···लड़की तो बिल्कुल उस पर गई है। बस, जैसे प्रभा नहीं, काजल सामने खड़ी हो।

"प्रभा···?" वह फुसफुसाया।

प्रभा की बातें भूली नहीं।

"आज़ादी में झंझट तो होगा ही," उसने कहा, "इसीलिए क्या···"

"नहीं," अविजित बीच ही में बोल पड़ा, "हमारा रोकना जायज़ नहीं है। ठीक है, तुम लोग जो तय करो, मुझे बतला देना।"

वह कह कर कमरे से बाहर आ गया।

बस, गाड़ी चलाते हुए उसने सोचा, मैं सब कुछ अपने ऊपर क्यों ले लेता हूं। इन लोगों को तय करने दो। दफ़्तर का काम निबटा कर आज शाम मैं रंजना के पास जाऊंगा···आज, ज़रूर···ज़रूर!

दफ़्तर में सारा दिन काफ़ी गहमागहमी रही।

सिंघानिया जी का फ़ोन आया।

मुकर्जी बाबू से मुलाक़ात के बाद काफ़ी भन्नाये हुए थे।

"अजीब आदमी है। हाथ ही नहीं रखने देता। मैंने कितनी तरह से भेद लेना चाहा पर वहां कोई असर नहीं," उन्होंने कहा।

"पर मेरी सूचना तो है कि उनके यहां रक़म चलती है," अविजित ने कहा।

सिंघानिया जी एकदम गरम हो गए।

"ग़लत सूचना है बंसल! मेरी आंखें कभी धोखा नहीं खातीं। मुझे तो लगता है इस बार तुमने कोई बहुत ही कमज़ोर सोर्स पकड़ लिया है।"

तो क्या काजल का इल्ज़ाम ग़लत था? आपसी विद्वेष होने पर ग़लत इल्ज़ाम लगाना क्या मुश्किल है? पर काजल···आंखें तो उसकी भी आसानी से धोखा नहीं खातीं पर है वह इतनी आदर्शवादी कि छोटा-सा ग़लत क़दम भी उसका विश्वास खोने के लिए काफ़ी है। हो सकता है मुकर्जी बाबू का कसूर सिर्फ़ यह रहा हो कि मौक़े का फ़ायदा उठा कर जेल से जल्दी छूट गए और उसी सूझ-बूझ के सहारे मंत्री बन गए।

"मुझे लगता है," सिंघानिया जी कहते जा रहे थे, "या तो वाक़ई उस आदमी के ख़यालात ऊंचे क़िस्म के हैं या खेल वह गहरा खेलता है।"

"जी!"

"मेरा तो ख़याल है लाइसेंस किसी कांग्रेसी को मिलेगा। क्या विडम्बना है। इलेक्शन के वक़्त पार्टी को चंदा दें हम लोग और मलाई लूट कर ले जाए कोई फटेहाल खद्दरधारी।"

"जी।"

"अरे भई बंसल," सहसा उनकी आवाज़ में सरगर्मी आ गई, "तुम भी तो

'फ्रीडम फ़ाइटर' हो। जेल काट आए थे न उन दिनों ? बस, फिर क्या है, तुम मिलो न उनसे। देखो, यह काम होना ज़रूर चाहिए। मैं कहता हूं, भाई, ज़रूरत पड़ने पर गांधी टोपी लगा लेने में कोई हर्ज नहीं है···क्यों, ठीक है न ?"

"जी," कह कर अविजित ने फ़ोन रख दिया पर उसके बदन में आग लग गई।

समझते क्या हैं मिस्टर सिंघानिया ! एक लाइसेंस लेने की खातिर अविजित बहुरूपिये का स्वांग रचेगा ? बढ़िया सिला सूट उतार कर खद्दर का धोती-कुर्ता पहन, गांधी टोपी सिर पर लगा कर मुकर्जी बाबू के पास जाएगा और अपनी जेल यात्रा का बखान करेगा !

हिम्मत कैसे हुई उनकी उससे यह कहने की !

और हिम्मत क्यों नहीं हुई अविजित की कि उसी वक़्त उनके मुंह पर तीते शब्द उछाल कर इन्कार कर दे ?

इसमें हिम्मत की क्या बात है। उस समय शालीनता बरत गया वरना··· इसका यह मतलब नहीं है कि वह सचमुच अपने को ज़लील होने देगा। इस्तीफ़े का क्या है, किसी वक़्त भी दिया जा सकता है।

"भण्डारी !" उसने आवाज़ लगाई, "जितनी पेंडिंग फ़ाइलें हैं, सब निकाल डालो, आज ही। इस हफ़्ते के अन्दर पिछला सारा काम निबट जाना चाहिए, समझे।"

अविजित काम में डूब गया। दुपहर को खाना खाने घर नहीं गया, वहीं सामने के रेस्तरां से कुछ मंगाकर खा लिया।

तीसरे पहर सरण आ धमका। वही इलाहाबाद यूनिवर्सिटी और जेल का साथी, सरण। आजकल मेरठ में है और छठे-छमासे दिल्ली चला आता है।

खादी का कुर्ता-पाजामा, सिर पर गांधी टोपी, चेहरे पर अपार संतोष !

आज उसे देखकर अविजित खीज से भर उठा।

"यार, तू ढंग के कपड़े क्यों नहीं पहनता ?" उसके मुंह से निकला।

"क्या मतलब ?"

"अंग्रेज़ गए, स्वराज्य आ चुका, फिर गांधी टोपी लगाने में क्या तुक है भला ?"

"क्यों,स भी लगाते हैं।"

"सभी नेता लगाते हैं। तू तो नेता नहीं है।"

"नेता गांधीजी थे, हम टोपी लगाते हैं," सरण ने मासूमियत से कहा।

अविजित बेसाख्ता हंस पड़ा।

"इसमें हंसने की क्या बात है," सरण ने बुरा मानते हुए कहा, "एक वक़्त था जब तू भी खादी पहनता था और टोपी लगाता था, याद नहीं ?"

"हां, तब ये विरोध के प्रतीक थे। अब नहीं हैं। आजकल, जब हम खुद मिलों में कपड़ा बना रहे हैं, पिकेटिंग करके विदेशी माल जला नहीं रहे तो इस सबका मक़सद ?"

"हम तो भइया, गांधीजी को मानते हैं। गांधीजी ने कहा था, स्वदेशी के बिना

स्वतंत्रता किसी काम की नहीं है। खादी बुनना छोड़ दोगे तो स्वराज्य भी नहीं रहेगा।"

"और जो ये इतनी बड़ी-बड़ी मिलें खोली जा रही हैं, उनका बुना कपड़ा कौन पहनेगा?"

"तुम पहनो।"

"यानी मेरे पहनने में हर्ज नहीं है," प्रविजित फिर हंस दिया।

सरण नाराज हो गया।

"तुम लोग सदा मुझ पर हंसते रहे पर बात मेरी ही ठीक निकली, हर बार। तू ही बतला, जिसने देश की सेवा की होगी, वह चाहेगा नहीं कि लोग जानें वह देश-सेवक है। सूट पहनने पर कौन विश्वास करेगा?"

"अगर कोई देश-सेवा किये बग़ैर गांधी टोपी लगा कर खादी पहन ले, तो?"

"क्यों पहनेगा भला? हां, यह हो सकता है कि किसी कारण पहले दिनों में देश का काम न कर पाया हो और आगे करने का इरादा रखता हो···बस यही तो चाहिये।"

सरण से बहस बेकार होती है, प्रविजित जानता है। पर उसकी बातों में उसे मज़ा आ रहा था।

"ऐसा कर," उसने कहा, "इस बार तू इलेक्शन में खड़ा हो जा।"

"इलेक्शन में खड़ा होना होता तो बावन में ही न हो जाता। अपने पन्तजी ने कितना कहा, विधान सभा में आ जाओ, मंत्री पद सम्भालो पर हमने मना कर दिया। अपने सीधे-सादे आदमी ठहरे, सरकार चलाना बस की बात नहीं है।"

"तब तो तेरा टोपी पहनना बेकार ही रहा!"

"अपना काम तो सेवा करना है, भइया," सरण कहता गया, "आज़ादी मिलने पर जो सीमेंट एजेंसी सरकार ने हमें दी थी, वह भी हमने छोटे भाई को दे डाली। पेट्रोल पम्प का लाइसेंस मिला तो लड़का कहने लगा, मैं चला लूंगा। मैंने कहा, ठीक है भइया, चला लो, अपने बस का यह रोग है नहीं। हां, सरकार ने गांधी सस्थान चलाने के लिये नियुक्त कर दिया तो रास आ गया मानने को। छह बरस हो गये, आनन्द ही आनन्द है।"

"सीमेंट की एजेंसी, पेट्रोल पम्प का लाइसेंस···और कुछ नहीं दिया सरकार ने?" प्रविजित ने छेड़ा।

"हां," बिना हिचक सरण बोला, "स्टील का कोटा मिला था। पत्नी ने कहा, बच्चे बड़े हो गए, वक्त काटे नहीं कटता, कहो तो स्टील के बर्तनों की छोटी-सी फ़ैक्टरी लगा लूं। मैंने कहा, लगा लो देवी, हम तो स्त्री-पुरुष को समबरा मानते हैं।"

प्रविजित निरुत्तर हो गया।

आगे केवल यही पूछ सका, "चाय पियोगे?"

"पी लूंगा," सरण ने तटस्थ भाव से कहा, "एक भाप कप ले लेता हूं कभी-

कभाक।"

इत्मीनान से चाय पीकर सरण ने झोला सम्भाला और दरवाज़े की तरफ़ बढ़ गया। अविजित ने फ़रटीलाइज़र फ़ैक्ट्री वाली फ़ाइल आगे खींच ली।

दरवाज़े पर पहुंच कर सहसा सरण पलटा और बोला, "अपने साथ एक चड्ढा हुआ करता था, याद है ?"

"हां-हां," अविजित ने तत्परता से कहा।

"बेचारा चल बसा।"

"क्या !" अविजित उठ कर खड़ा हो गया, "कब ?"

"आज सुबह। किरया करके ही तो चला था दिल्ली के लिए।"

"आज ! सुबह ! पहले क्यों, नहीं, बतलाया ?" अविजित ने उग्र स्वर में कहा।

"क्यों, पहले बतलाने से तू क्या करता ?"

"इतनी देर यहां बैठा हंसी-ठट्ठा करता रहा, उसके मरने की बात याद नहीं आई तुझे !" अविजित का स्वर फट गया।

"हंसी ठट्ठा मैंने तो नहीं किया।"

हां, हंसा सिर्फ़ अविजित था।

वह वापिस कुर्सी में गिर पड़ा।

"क्या हुआ था चड्ढा को ?" सूखे गले से पूछा।

"बेचारा बड़ी तंगहाली में मरा। मैंने कितना कहा, चलो सरकारी अस्पताल में भरती करवा दूं पर वह माना ही नहीं..."

"हुआ क्या था ?" अविजित ने बाधा दी।

"एक गुर्दा तो तभी खराब हो गया था जब १९४२ में जेल गया था...इलाज हुआ नहीं। बस, जब दूसरा गुर्दा भी जवाब दे गया..."

"वह मेरठ में ही था ?"

"हां।"

"तूने कभी उसके बारे में बतलाया नहीं।"

"तूने पूछा कब ?"

"मुझे पता नहीं था वह मेरठ में है।"

"पता मुझे भी नहीं था। लगाने से चल गया। बाद में चाहे ग़लत रास्ते पर पड़ गया हो, एक समय में था तो अपना ही साथी।"

"ग़लत रास्ते पर वह कब पड़ा ?"

"१९४२ में छिप कर काम नहीं कर रहा था ?"

"तो ?"

"गान्धीजी ने छिप कर काम करने को ग़लत बतलाया था। उन्होंने सभी भूमिगत विद्रोहियों को सलाह दी थी कि वे सरकार के आगे समर्पण कर दें।"

"गान्धीजी जानते भी थे उनके साथ जेलों में क्या सुलूक होता है ? उनके खुद

के साथ कभी कोई जुल्म हुआ नहीं, इसी से···"

"नहीं हुआ क्योंकि अहिंसा से उत्पन्न उनकी नैतिक शक्ति के आगे ब्रिटिश सरकार भी नतमस्तक थी।"

"तुम जानते हो चड्ढा के साथ फतेहगढ़ जेल में क्या हुआ था ?"

"जानता क्यों नहीं ? मैं तो खुद तुम्हें बतला रहा था···"

"फिर भी तुमने उसे बिना इलाज मर जाने दिया।"

"मैंने ? मैंने तो भइया, उसे बचाने की बहुत कोशिश की। कितनी बार कहा, सरकार के नाम अर्जी दे दो; आखिर बत्तीस में दो साल सविनय आज्ञा-भंग-आंदोलन के अंतर्गत जेल काटी है, इलाज का बन्दोबस्त जरूर हो जाएगा। मैं खुद सिफारिश कर दूंगा, पर वह माना ही नहीं। अब मैं···"

"शटअप !" तड़प कर अविजित ने कहा, "और चले जाओ यहां से !"

"ठीक," सरण ने कहा, "मुझ पर क्यों बिगड़ रहे हो। मुझसे जो हुआ मैंने कर दिया। तुम कहो न, तुमने क्या किया उसके लिए ?"

अविजित फिर निरुत्तर था।

सरण कमरे से बाहर चला गया।

चड्ढा बिना इलाज मर गया और उसका बीस हज़ार रुपया अब तक अविजित के पास पड़ा है।

जब-जब चड्ढा मिला, रुपया उसे देना चाहा पर उसने लिया ही नहीं।

पहली बार मिला था १९४५ में, जेल से छूटने पर। अविजित ने रुपया देना चाहा तो बोला, "रुपया मेरा नहीं, दल का था और दल अब तितर-बितर हो चुका।"

"तो क्या करूं रुपये का ?" अविजित ने पूछा था।

"रख अभी। देखें आगे क्या होता है।"

दुबारा चड्ढा मिला था पचास में, आज़ादी मिलने के तीन बरस बाद।

"तेरा रुपया···" अविजित ने फिर कहा था।

"मेरा नहीं, दल का।"

"हां, पर अब तो दल के लोग भूमिगत नहीं हैं। रुपया आपस में बांट लो।"

"किस हिसाब से ? रुपया हम लोगों ने अपने लिए नहीं, दल के काम के लिए जमा किया था।"

"फिर यूं ही पड़ा रहेगा रुपया ? कुछ तो करना होगा।"

"क्यों ?"

"क्या मतलब ? रुपया ऐसे ही बेकार पड़ा रहेगा ?"

"आदमी बेकार पड़ा रह सकता है, रुपया नहीं ?"

"पर···मुझे तो उबार इस ज़िम्मेवारी से। क्या करूं उसका, बतला ?"

"किसी संस्था को दान कर दे।"

"किसे ?"

"मैं क्या जानूं।"

दो क्षण चुप रह कर चड्ढा तल्खी से कह उठा था, "कांग्रेस के इलेक्शन फ़न्ड में दे देना।"

उसके बाद चड्ढा से मिलना नहीं हुआ था।

रुपया अभी भी अविजित के पास है। सूद मिला कर तीस हज़ार हो गया होगा। दान उसने नहीं किया, सोचता रहा, शायद कभी ज़रूरत हो और चड्ढा मांगने आए···यही बात थी और कुछ नहीं।

कुर्सी में बैठे रहना नामुमकिन हो गया···हज़ारों कांटे उग आए उसमें···शरीर के रोमछिद्रों में गड़ने लगे।

वह उठा और फ़र्श को रौंदने लगा।

दस क़दम आगे···दस क़दम पीछे···फिर आगे···उठ कर भागेगा कहां···कांटे कुर्सी में नहीं, उसके शरीर में उग रहे हैं।

कितने दिन रुपया बेकार पड़ा रहा, बैंक में। फिर···अविजित मकान बनवा रहा था···रुपये की ज़रूरत थी···वह रुपया उसने मकान में लगवा लिया था, सिर्फ़ उधार के तौर पर···साल-दो साल के अन्दर सारा रुपया लौट आया था, बैंक में। चड्ढा लेने आता तो फ़ौरन सूद-समेत वह उसे लौटा देता या जिस संस्था को वह कहता, दान कर देता। उसने ठीक से कभी कुछ कहा ही नहीं, इसमें मेरा क्या क़सूर है। मैं जानता नहीं था, वह मेरठ में है···बिल्कुल नहीं जानता था वह तंगी में है, बीमार है, उसे इलाज की ज़रूरत है; वरना यह कैसे हो सकता था मैं उसके पास गया न होता, उसका इलाज न कराता···मेरा सबसे प्यारा दोस्त···

अपने को समझाते-समझाते अविजित का स्वर क्षीण पड़ता गया···

'जब पिछली बार चड्ढा मिला था तो पूछा था, कहां रहता है ?' कोई बोल उठा।

'पूछा था, बिल्कुल पूछा था। तब वह इलाहाबाद में किसी पत्रिका का सम्पादन कर रहा था। यही जानने को तो पूछा था मैंने कि उसके पास आमदनी का ज़रिया क्या है ?'

'पत्रिका को लिखते तो पता न चल जाता वह कहां गया।'

'हां। पर···मैंने दो-तीन ख़त उसे लिखे थे, जवाब नहीं मिला। मैंने सोचा वह ताल्लुक़ात रखना नहीं चाहता···मेरा मतलब किसी से ज़बरदस्ती तो दोस्ती नहीं रखी जा सकती···'

'पत्रिका में किसी दूसरे सम्पादक का नाम छपा देखा तो क्या सोचा, चड्ढा

मर गया।'

'नहीं-नहीं। मैंने पत्रिका देखी ही नहीं। सच, मुझे पता ही नहीं चला कब चड्ढा इलाहाबाद और नौकरी छोड़ कर चला गया और…'

'और पता करने की जरूरत महसूस नहीं की?'

'मैं इतना व्यस्त रहा…घर…बच्चे…दफ्तर…कारोबार…'

'पैसा, भाई साहब, पैसा! पैसा कमाने का सिर्फ एक तरीका है कि आदमी सिर्फ पैसा कमाए।'

'मैंने नाजायज ढंग से पैसा नहीं कमाया, अनित्य। परिवार का पालन-पोषण करने के लिए…'

'हर तरीका जायज है।'

'यह मैंने नहीं कहा।'

'नहीं, मैंने कहा है। पूंजीवादी समाज की सबसे बड़ी खूबी यही है—नाजायज सिर्फ आदमी होता है, पैसा नहीं।'

"अनित्य!"

'सिर्फ बात है। आप परेशान क्यों हो रहे हैं?'

चड्ढा का रुपया जो मेरे पास पड़ा हुआ है। बीस हजार…नहीं' सूद मिला कर तीस…

क्या करूं उसका? काजल से पूछूं? हां, काजल को चड्ढा की मौत की खबर भी देनी चाहिए।

काजल ने भी तो कभी चड्ढा का जिक्र नहीं किया…खबर न भी दूं तो…मैं काजल से मिलना नहीं चाहता…

'क्यों? जमीर पर भारी पड़ता है?'

'शटअप!'

मैंने सोचा था, आज रंजना के पास जाऊंगा…हां, जाऊंगा, जरूर जाऊंगा। काजल को फोन पर भी खबर की जा सकती है। या पत्र दे कर। बस। चड्ढा मेरा दोस्त था, काजल का नहीं। हमदर्दी की जरूरत मुझे है, उसे नहीं। हमदर्दी पाने का हक हर आदमी को है। मुझे क्यों नहीं?

तो जाता हूं…हां, जा रहा हूं…अभी…फौरन…

'भण्डारी, मैं जा रहा हूं,' अविजित ने आवाज लगाई और जवाब का इन्तजार किए बिना कमरे से बाहर निकल गया।

करीब-करीब दौड़ कर वह पार्किंग लॉट में पहुंचा और झटके से गाड़ी स्टार्ट कर दी।

'रंजना के घर—दाएं,' वह बुदबुदाया और एक्सलरेटर पर पांव रख दिया। जल्दी…जल्दी…पांव का दबाव बढ़ा…गाड़ी सड़क पर दौड़ चली…फिर…गुद-ब गुद उसकी रफ्तार धीमी होती चली गई…

जहर होता है तो बाहर के जहर को भी अन्दर खींच लेता है। मेरे कहने-न-कहने से···"

"काजल," अविजित का स्वर दयनीय हो उठा, "मैं बहुत परेशान हूँ। तुम्हारे पास मदद के लिए आया हूं, जहर निगलने के लिए नहीं।"

"क्या हुआ ?"

अविजित देर तक चुप बना रहा, फिर बोला," चड्ढा ने दल का बीस हजार रुपया मेरे पास रखवाया था। चड्ढा जेल से लौटा तो रुपया उसे लौटाना चाहा पर उसने लिया नहीं।"

"और वह···इस तरह···" काजल लम्बी सांस खींचकर चुप हो गई।

"मैंने बहुत इसरार किया पर वह नहीं माना।"

"अच्छा।"

"मेरा यक़ीन नहीं है तुम्हें ?" अविजित का स्वर फिर उग्र हो गया।

"न भी हो तो क्या," काजल ने कहा, "उनका तो है।"

"तुम मुझसे इतनी नफ़रत क्यों करती हो ?"

"नहीं तो।"

"ज़रूर करती हो ! ठीक है, करो। फिर भी मैं तुम्हीं से पूछता हूं, उस रुपये का मैं क्या करूं ?"

"उन्होंने नहीं बतलाया ?"

"कहा था, किसी संस्था को दे देना। किस संस्था को देना होगा, उसने नहीं बतलाया। मैं तुमसे पूछता हूं, किसे देना होगा ?"

"रुपया तो क्रान्तिकारी दल का था न ?"

"हां।"

"जिस काम के लिए रुपया जमा किया गया था उसी के लिए इस्तेमाल भी होना चाहिए।"

"हां। यही मैं चाहता हूँ।"

काजल की आंखें भक से जल उठीं।

"यही चाहते हो ?" उसने कहा।

अविजित को लगा ऊँची चट्टान पर खड़ी काजल ठाठे मारते समुद्र में छलांग लगाने वाली है।

"काजल !" आतंकित स्वर में उसने पुकारा।

काजल चट्टान से धरती पर उतर आई।

"अभी रखो," उसने कहा, "ज़रूरत होने पर तुमसे मांग लूंगी।"

"कब ? "

"समय आने पर।" गाड़ी का दरवाजा खोल कर काजल नीचे उतर गई।

"मैं चली जाऊँगी," उसने कहा, "तुम लौट जाओ अब।"

रेंगती हुई गाड़ी फिर सड़क पर घिसट आई। घर की तरफ़। हर चीज की

अपनी एक गति होती है और अपनी ही एक धुरी ।
धुरी से टूट पाना इतना आसान नहीं; चाहने-भर से कुछ नहीं होता ।

१०

घर के दरवाजे पर कोई खड़ा था ।

"अनिरुद्ध !" अविजित ने काँपते कण्ठ से पुकारा ।

"क्या हुआ, भाई साहब," अनिरुद्ध ने कहा, "आप तो मुझे देखकर ऐसे चौंक उठे जैसे कोई भूत देख लिया हो ।"

"कब आए ?"

"जब आपने देखा ।"

"तुम्हारे साथ कोई और भी है ?" अविजित ने आपाधापी से पूछा ।

"हाँ, एक दोस्त हैं, शुक्लजी । बात यह है···" अनिरुद्ध ने कहा ।

"तो तुम सचमुच हो !" उसके मुँह से निकला ।

"जी ?" अनिरुद्ध ने अचरज से उसकी तरफ देखा, "क्या हुआ, भाई साहब ?" उसने पूछा ।

"अनिरुद्ध, चड्ढा मर गया !" अविजित ने कहा ।

"ओह, कब ?"

"आज ।"

तब तक प्रभा और शुभा भी बाहर आ गई थीं ।

"क्या कह रहे हैं, पिताजी ! चड्ढा अंकल क्या सचमुच···" प्रभा ने पूछा ।

"हाँ ।"

आप वहीं गए थे ?"

"नहीं, वह तो मेरठ में था । मुझे बाद में पता चला···अभी कुछ देर पहले··· ऑपरेशन के बाद ।"

कुछ देर सब चुप रहे फिर प्रभा ने कहा, "यकीन नहीं होता···कितने ज़िन्दादिल आदमी थे···पिछली बार दिल्ली आए तो कितनी मजेदार बातें सुना रहे थे···"

"जब वे अण्डरग्राउण्ड थे तब की बातें न ? कितना हँसाया हम लोगों को ··"

क्या हुआ था उन्हें ? बीमार थे ?" शुभा ने पूछा।

"हां," अविजित ने लम्बी सांस खींचकर कहा, " बारह साल से।"

"बारह साल से ?"

"अपनी बीमारी के बारे में उसने तुम लोगों से कुछ कहा था ?" अविजित ने पूछा।

"नहीं तो," शुभा ने कहा, "बीमार तो···मैं सोच भी नहीं सकती वे बीमार भी हो सकते थे···"

"क्या बीमारी थी ?" प्रभा ने गंभीर होकर पूछा।

"अरे बीमार तो हर आदमी होता है," अनित्य ने झपट कर जवाब दे डाला, "मौत खुद एक बीमारी है। तुम बतलाओ, चड्ढा अंकल क्या बातें बतला रहे थे ?"

"वही अंडरग्राउंड रहने के क़िस्से। एक वह···" प्रभा ने शुरू किया।

"उनकी टांग कैसे टूटी, बतलाया तो हम लोग हंस-हंस कर पागल ही हो गए," शुभा ने कहा।

"कैसे टूटी थी ?" अनित्य ने पूछा।

"उन दिनों वे क्रिश्चियन पादरी का भेष बना कर रह रहे थे।" प्रभा ने बतलाया, "एक दिन हुआ यह कि पास वाले चर्च में शादी थी; अचानक वहां के पादरी को खसरा निकल आई। दूल्हा-दुल्हिन तैयार और पादरी ग़ायब ! वह चीखो-पुकार मची कि बस। तभी किसी को चड्ढा अंकल का ख़याल आया···क्या नाम रखा हुआ था उन्होंने अपना उन दिनों···"

"फ़ादर चैलीस," शुभा ने कहा।

"हां, फ़ादर चैलीस," प्रभा ने कहानी का सिरा फिर पकड़ लिया और उसी जिन्दादिली के साथ उसे दुहराने लगी जिसके साथ कभी चड्ढा ने कहानी उन्हें सुनाई थी।

शायद यह करके वे दोनों उस जिन्दादिल आदमी को कुछ देर और जिलाये रखना चाहती थीं।

"···दो-चार आदमी आए और उन्हें पकड़ कर चर्च ले गए। आधी-पौनी बात रास्ते में पता चली, बाक़ी चर्च पहुंचने पर। माजरा समझ में आया तो अंकल के होश फ़ाख़्ता ! क्रिश्चियन बैपटिस्म तक तो ठीक था पर शादी—वह भी कैथोलिक नाज़-नख़रों से ! बेचारे अंकल को रस्मो-रिवाज का सिर-पैर पता नहीं था। अब उस जंजाल से बचें तो कैसे ? कुछ और नहीं सूझा तो पुलपिट तक जाते-जाते उन्होंने पैर को इस तरह मरोड़ा कि चारों खाने चित गिर पड़े। शादी करवाने के झंझट से बच गए, अलबत्ता टांग टूट गई।"

"ऐसे तो नहीं टूटी थी···" अविजित बोल उठा।

"तब फिर···?"

"वह तो जेल में…"

"जेल में वह प्यारे ही के साथ थे न ?" जल्दी से प्र

"यह बरसों की बात है। टांग उनकी सियालकोट में टू

"और क्या सुनाया था चड्ढा अंकल ने ?" अनिरु

करते हुए।

'मिस बनर्जी वाला किस्सा…यह भी खूब मजेदार है,'

"कमाल है, यह तो एकदम !" प्रभा बोली।

"क्या था, सुना तो," अनिरुद्ध ने कहा।

"अरे, वे भी तो सियालकोट में फरार रहीं। कौन-सा शहर बतलाया था अंकल ने…"

"बम्बई," शुभा ने कहा।

'हां, बम्बई। वहां वे एक खुफिया रेडियो चलाती थीं…एक बार पता चला कि पुलिस उनके पीछे है तो कहीं और न छिप कर वे सीधी कलेक्टर के घर जा पहुंचीं। उसकी बीवी के पास, किसी महिला क्लब के नाटक के लिये चन्दा करने के बहाने। अंग्रेजी फर्राटे से बोलती ही थीं…बीवी खूब इम्प्रेस हुई और चाय पीने बिठा लिया। संयोग से कुछ देर बाद कलेक्टर साहब भी तशरीफ ले आए। मिस बनर्जी को देख कर एक बार चौंके, फिर हाथ मिलाकर आराम से चाय पीने लगे। कुछ देर बाद वे चलने को हुईं तो कलेक्टर साहब बोले, 'मिस शहनाज,' …उन दिनों उनका यही नाम मशहूर था… 'आगे से नहीं, पिछले दरवाजे से चली जाइए।' उन्होंने अचरज से कहा, 'आप जानते हैं, मेरा नाम शहनाज है ?' 'जी हां,' वह बोला, और यह भी कि असल में आप काजल बनर्जी हैं।' उनके पूछने पर कि पुलिस को इत्तिला तो उन्होंने घर ही दी होगी, वह बोला, 'अभी नहीं। मैं इतिहास का विद्यार्थी हूं। अपनी आंखों के सामने इतिहास बनता देखूं, इससे ज्यादा रोमांचकारी काम मेरे लिये और क्या हो सकती है। आप निकल जाइए, रेडियो फौरन हटा लीजिए, बेहतर है कि शहर ही छोड़ दें…दो घण्टे बाद मैं पुलिस को इत्तिला कर दूंगा।' खुफिया रह कर मिस बनर्जी पिछले दरवाजे से भाग निकलीं और पुलिस के जाल से बच गईं।"

"खुद तो अपने बारे में मिस बनर्जी कभी कुछ बतलाती ही नहीं। जब पूछो हंस कर टाल देती हैं," प्रभा ने अपनी तरफ से जोड़ा।

"जेल के बारे में चड्ढा ने तुम लोगों से कभी कुछ नहीं कहा ?" अविजित ने पूछा। लगा, उसने मिस बनर्जी वाला किस्सा सुना ही नहीं।

"नहीं तो," प्रभा और शुभा ने एक साथ कहा।

"तुम्हें पता है," अनिरुद्ध बोला, "ये लोग सब एक साथ एक ही जेल में बंद थे। चड्ढा अंकल, तुम्हारे पिताजी, हमीद, चटर्जी… और कौन था, भाई साहब ?"

"तरुण।"

"वह सुन्दर भी।"

क्या हुआ था उन्हें ? बीमार थे ?" शुभा ने पूछा ।

"हां," अविजित ने लम्बी सांस खींचकर कहा, " बारह साल से ।"

"बारह साल से ?"

"अपनी बीमारी के बारे में उसने तुम लोगों से कुछ कहा था ?" अविजित ने पूछा ।

"नहीं तो," शुभा ने कहा, "बीमार तो···मैं सोच भी नहीं सकती वे बीमार भी हो सकते थे···"

"क्या बीमारी थी ?" प्रभा ने गंभीर होकर पूछा ।

"अरे बीमार तो हर आदमी होता है," अनित्य ने झपट कर जवाब दे डाला, "मौत खुद एक बीमारी है । तुम बतलाओ, चड्ढा अंकल क्या बातें बतला रहे थे ?"

"वही अंडरग्राउंड रहने के क़िस्से । एक वह···" प्रभा ने शुरू किया ।

"उनकी टांग कैसे टूटी, बतलाया तो हम लोग हंस-हंस कर पागल ही हो गए," शुभा ने कहा ।

"कैसे टूटी थी ?" अनित्य ने पूछा ।

"उन दिनों वे क्रिश्चियन पादरी का भेष बना कर रह रहे थे ।" प्रभा ने बतलाया, "एक दिन हुआ यह कि पास वाले चर्च में शादी थी; अचानक वहां के पादरी को खसरा निकल आई । दूल्हा-दुल्हिन तैयार और पादरी ग़ायब ! वह चीखो-पुकार मची कि बस । तभी किसी को चड्ढा अंकल का खयाल आया···क्या नाम रखा हुआ था उन्होंने अपना उन दिनों···"

"फ़ादर चैलीस," शुभा ने कहा ।

"हां, फ़ादर चैलीस," प्रभा ने कहानी का सिरा फिर पकड़ लिया और उसी ज़िन्दादिली के साथ उसे दुहराने लगी जिसके साथ कभी चड्ढा ने कहानी उन्हें सुनाई थी ।

शायद यह करके वे दोनों उस ज़िन्दादिल आदमी को कुछ देर और जिलाये रखना चाहती थीं ।

"···दो-चार आदमी आए और उन्हें पकड़ कर चर्च ले गए । आधी-पौनी बात रास्ते में पता चली, बाक़ी चर्च पहुंचने पर । माजरा समझ में आया तो अंकल के होश फ़ाख़्ता ! क्रिश्चियन बैपटिस्म तक तो ठीक था पर शादी—वह भी कैथोलिक नाज़-नखरों से ! बेचारे अंकल को रस्मो-रिवाज़ का सिर-पैर पता नहीं था । अब उस जंजाल से बचें तो कैसे ? कुछ और नहीं सूझा तो पुलपिट तक जाते-जाते उन्होंने पैर को इस तरह मरोड़ा कि चारों ख़ाने चित्त गिर पड़े । शादी करवाने के झंझट से बच गए, अलबत्ता टांग टूट गई ।"

"ऐसे तो नहीं टूटी थी···" अविजित बोल उठा ।

"तब फिर···?"

"वह तो जेल में…"

"जेल में वह आप ही के साथ थे न ?" जल्दी से पा

"वह बहोत की बात है। टांग उनकी बियालीस में टू

"और क्या सुनाया था चड्ढा अंकल ने ?" अनि:

करने दी।

'मिस बनर्जी वाला किस्सा…वह भी खूब मजेदार है,'

"कमाल है, वह तो एकदम !" प्रभा बोली।

"क्या था, सुना तो," अनिरुद्ध ने कहा।

"अरे, वे भी तो बियालीस में फरार रहीं। कौन-सा शहर बतलाया था अंकल ने…"

"बम्बई," सुभा ने कहा।

"हां, बम्बई। वहां वे एक खुफिया रेडियो चलाती थीं…एक बार पता चला कि पुलिस उनके पीछे है तो कहीं और न छिप कर वे सीधी कलेक्टर के घर जा पहुंचीं। उसकी बीवी के पास, किसी महिला क्लब के नाटक के लिये चन्दा करने के बहाने। अंग्रेजी फर्राटे से बोलती ही थीं…बीवी खूब इम्प्रेस हुई और चाय पीने बिठा लिया। संयोग से कुछ देर बाद कलेक्टर साहब भी तशरीफ ले आए। मिस बनर्जी को देख कर एक बार चौंके, फिर हाथ मिलाकर आराम से चाय पीने लगे। कुछ देर बाद वे चलने को हुईं तो कलेक्टर साहब बोले, 'मिस शहनाज,' …उन दिनों उनका यही नाम मशहूर था… 'आगे से नहीं, पिछले दरवाजे से चली जाइए।' उन्होंने अचरज से कहा, 'आप जानते हैं, मेरा नाम शहनाज है ?' 'जी हां,' वह बोला, 'और यह भी कि असल में आप काजल बनर्जी हैं।' उनके पूछने पर कि पुलिस को इत्तिला तो उन्होंने कर ही दी होगी, वह बोला, 'अभी नहीं। मैं इतिहास का विद्यार्थी हूं। अपनी आंखों के सामने इतिहास बनता देखूं, इससे ज्यादा रोमांचकारी बात मेरे लिये और क्या हो सकती है। आप निकल जाइए, रेडियो फौरन हटा लीजिए, बेहतर है कि शहर ही छोड़ दें…दो घण्टे बाद मैं पुलिस को इत्तिला कर दूंगा।' शुक्रिया कह कर मिस बनर्जी पिछले दरवाजे से भाग निकली और पुलिस के जाल से बच गई।"

"खुद तो अपने बारे में मिस बनर्जी कभी कुछ बतलाती ही नहीं। जब पूछो हंस कर टाल देती हैं," प्रभा ने अपनी तरफ से जोड़ा।

"जेल के बारे में चड्ढा ने तुम लोगों से कभी कुछ नहीं कहा ?" अविजित ने पूछा। लगा, उसने मिस बनर्जी वाला किस्सा सुना ही नहीं।

"नहीं तो," प्रभा और सुभा ने एक साथ कहा।

"तुम्हें पता है," अनिरुद्ध बोला, "वे लोग सब एक साथ एक ही जेल में बंद थे। चड्ढा अंकल, तुम्हारे पिताजी, हमीद, चटर्जी… और कौन था, भाई साहब ?"

"शरण।"

"वह मुकुन्द भी।"

..जी भी तो जेल के बारे में कभी कुछ नहीं बतलाते,” शुभा ने कहा।

क्या “अरे, उसमें बतलाने को क्या है,” अविजित ने कुछ हल्का महसूस करते हुए ा, “हम सब में चड्ढा ही सबसे धाकड़ था। बात-बात पर मरने-मारने को तैयार। चार जनवरी को आनन्द भवन के आगे प्रदर्शन करते हुए पकड़े गए और जेल पहुंचा दिये गए…सब दोस्त एक ही बैरक में रखे गये थे…”

रखे क्या गये थे, भेड़-बकरियों की तरह ठूंस दिये गये थे…तीस आदमी एक बैरक में। सुना था, सरकार ने जेल में ए, बी, सी श्रेणियां बना रखी हैं…दिल में कहीं उम्मीद बनी हुई थी कि राजनैतिक क़ैदी की हैसियत से 'ए' नहीं तो 'बी' क्लास तो मिलेगी। पर वह सुविधा सिर्फ बड़े लोगों के लिये थी। विद्यार्थी वर्ग पर सरकार ज्यादा से ज्यादा दबाव डालना चाहती थी। आखिर देश का भविष्य उन्हीं के कन्धों पर था न! लिहाज़ा 'सी' क्लास मिली।

लोहे का फ़ाटक बन्द हुआ…देह के कपड़े उतार कर जेल का कुर्ता-जांघिया पहनना पड़ा…कितना संकुचित हो आया था अविजित!

कपड़ों के मामले में वह हमेशा से नखरेबाज़ रहा है…खादी का कुर्ता-धोती इतना साफ-शफ़्फ़ाफ़ धुला रहता कि आते-जाते दोस्त चिढ़ा कर कहते—यार, अपने धोबी से हमारे कपड़े भी धुलवा दे।…धोकर सुखाते हुए खास खयाल रखता कि एक भी सिलवट न पड़े…और कहां यह कुचमुचा 'सी' क्लास का कुर्ता-जांघिया! कुर्ते तक तो ग़नीमत थी पर जांघिया!

चड्ढा ठठाकर हंस पड़ा था।

“एक लाइन में खड़े हो जाओ,” उसने कहा था, “मैं बतलाता हूं सबसे बड़ा बन्दर कौन लग रहा है।”

अविजित हंसी में उसका साथ नहीं दे पाया था, बिल्कुल नहीं दे पाया था…

उसका साथ देना था ही मुश्किल।

“अच्छा, क्या किया चड्ढा अंकल ने वहां?” उसने सुना शुभा पूछ रही है। अविजित खींच कर वापिस अपने को वर्तमान में ले आया।

“छब्बीस जनवरी को स्वतंत्रता दिवस आया। जेल के अन्दर हम भला उसे क्या मनाते पर चड्ढा हार मानने वाला न था…”

सहसा खड़े होकर उसने ज़ोर-ज़ोर से वन्दे मातरम् का नारा लगाना शुरू कर दिया था। उसकी देखा-देखी बैरक के बाकी लड़के भी वन्दे मातरम् चिल्लाने लगे। फिर क्या था!

सामने के पहाड़ से प्रतिध्वनि की तरह नारा गूंजा…फिर बगल के बाड़े से…बदल गया था!

कुछ देर के लिये वे सब कुछ भूल गये थे। बैरक की चारदीवारी, जेल का लोहे का फाटक, वार्डन की घुड़कियां, जेलर का घृणा से सना चेहरा।

वाकई बदल गया था!

हरे-भरे जंगल में कुलांचें मारता हिरनों का झुण्ड…खुले आसमान में आजाद उड़ता सारसों का काफ़िला…एक के पीछे एक पंख खोलते कतार…गर्व से सिर उठाये, आसमान छूने को पंख ताने सी सारस…वं-दे-मा-त-रम्! उड़ान भरता काफ़िला…अन्तरिक्ष में मुक्त तैरती लय…आरोही तान, आजाद!

और तभी…पगली घण्टी बज उठी!

लाठी घुमाते सिपाही…सीटी बजाते वार्डन…आदेश दहाड़ते जेलर। लय टूट गई। संगीत चीत्कार में बदल गया। फिर भी…एक आवाज थी जो गूंजती रही थी!

सिर पर लाठी बरसती हो और दौड़ने के लिये सिर्फ़ एक दीवार से दूसरी दीवार तक का फ़ासला हो…कैसा लगता है? दस क़दम आगे…दस क़दम पीछे…बीच में लाठियां…आगे लाठियां…पीछे लाठियां…फिर भी बचाव के लिये आदमी दौड़ लगाता है। दस क़दम आगे…दस क़दम पीछे…सिर को हाथों की ओट किये…जिन्दा बचे रहने की कितनी दर्दनाक चाहत आदमी के अन्दर चौकी मारे पड़ी रहती है। टूटने दो कमर और कन्धों की हड्डियां…अगर सलामत रहा तो जिन्दा रह लेंगे, सिसक-सिसक कर ही सही।

फिर भी…एक आवाज थी जो गूंजती रही थी—वन्दे मातरम्!

लाठी ठीक चड्ढा के सिर पर पड़ी थी…नहीं, टांग उसकी बरसों में नहीं टूटी।

चड्ढा के फ़र्श पर गिरते ही सारसों का काफ़िला दम तोड़ गया था। एक खौफ़नाक खामोशी…

"वन्देमातरम् बोलने की मनाही थी न?" प्रभा ने पूछा।

"हां…" लम्बी उसांस के साथ अविजित का 'हां' निकला।

"नारा बुलन्द करते ही लाठी चार्ज हो गया…बाकी लोगों को चोट आई," उसने मुर्दा स्वर में कहा।

"आपको भी?" प्रभा ने पूछा।

"नहीं।"

प्रभा कुछ नहीं बोली तब भी अविजित तिलमिला गया।

"हर किसी को चोट आए, जरूरी नहीं है।"

"चड्ढा साहब को आई होगी," प्रभा ने फिर कहा।

..जी भी तो जेल के बारे में कभी कुछ नहीं बतलाते," शुभा ने कहा।

'अरे, उसमें बतलाने को क्या है," अविजित ने कुछ हल्का महसूस करते हुए ा, "हम सब में चड्ढा ही सबसे धाकड़ था। बात-बात पर मरने-मारने को तैयार। चार जनवरी को आनन्द भवन के आगे प्रदर्शन करते हुए पकड़े गए और जेल पहुंचा दिये गए···सब दोस्त एक ही बैरक में रखे गये थे···"

रखे क्या गये थे, भेड़-बकरियों की तरह ठूंस दिये गये थे···तीस आदमी एक बैरक में। सुना था, सरकार ने जेल में ए, बी, सी श्रेणियां बना रखी हैं···दिल में कहीं उम्मीद बनी हुई थी कि राजनैतिक क़ैदी की हैसियत से 'ए' नहीं तो 'बी' क्लास तो मिलेगी। पर वह सुविधा सिर्फ बड़े लोगों के लिये थी। विद्यार्थी वर्ग पर सरकार ज्यादा से ज्यादा दबाव डालना चाहती थी। आखिर देश का भविष्य उन्हीं के कन्धों पर था न! लिहाजा 'सी' क्लास मिली।

लोहे का फ़ाटक बन्द हुआ···देह के कपड़े उतार कर जेल का कुर्ता-जांघिया पहनना पड़ा···कितना संकुचित हो आया था अविजित!

कपड़ों के मामले में वह हमेशा से नखरेबाज़ रहा है···खादी का कुर्ता-धोती इतना साफ-शफ़्फ़ाफ़ धुला रहता कि आते-जाते दोस्त चिढ़ा कर कहते—यार, अपने धोबी से हमारे कपड़े भी धुलवा दे।···धोकर सुखाते हुए खास खयाल रखता कि एक भी सिलवट न पड़े···और कहां यह कुचमुचा 'सी' क्लास का कुर्ता-जांघिया! कुर्ते तक तो ग़नीमत थी पर जांघिया!

चड्ढा ठठाकर हंस पड़ा था।

"एक लाइन में खड़े हो जाओ," उसने कहा था, "मैं बतलाता हूं सबसे बड़ा बन्दर कौन लग रहा है।"

अविजित हंसी में उसका साथ नहीं दे पाया था, बिल्कुल नहीं दे पाया था···

उसका साथ देना था ही मुश्किल।

"अच्छा, क्या किया चड्ढा अंकल ने वहां?" उसने सुना शुभा पूछ रही है। अविजित खींच कर वापिस अपने को वर्तमान में ले आया।

"छब्बीस जनवरी को स्वतंत्रता दिवस आया। जेल के अन्दर हम भला उसे क्या मनाते पर चड्ढा हार मानने वाला न था..."

सहसा खड़े होकर उसने ज़ोर-ज़ोर से वन्दे मातरम् का नारा लगाना शुरू कर दिया था। उसकी देखा-देखी बैरक के बाकी लड़के भी वन्दे मातरम् चिल्लाने लगे। फिर क्या था!

सामने के वार्ड से प्रतिध्वनि की तरह नारा गूंजा···फिर बगल के वार्ड से···मजा गया था !

कुछ देर के लिये वे सब कुछ भूल गये थे। बैरक की चारदीवारी, जेल का लोहे का फाटक, वार्डन की घुड़कियां, जेलर का घृणा से सना चेहरा।

वाकई मजा गया था !

हरे-भरे जंगल में कुलांचे मारता हिरनों का झुण्ड···खुले आसमान में आज़ाद उड़ता सारसों का काफ़िला···एक के पीछे एक पंख खोलते पसार···गर्व से सिर उठाये, आसमान छूने को पंख ताने नौ सारस···वन्दे-मा-त-रम् ! उड़ान भरता काफ़िला···कण्ठों से मुक्त तैरती लय ''आरोही तान, आज़ाद !

और तभी···पगली घण्टी बज उठी !

लाठी घुमाते सिपाही···सीटी बजाते वार्डन···आदेश दहाड़ते जेलर। लय टूट गई। संगीत चीत्कार में बदल गया। फिर भी···एक आवाज़ थी जो गूंजती रही थी !

सिर पर लाठी बरसती हो और दौड़ने के लिये सिर्फ़ एक दीवार से दूसरी दीवार तक का फ़ासला हो···कैसा लगता है ? दस क़दम आगे···दस क़दम पीछे···बीच में लाठियां···आगे लाठियां···पीछे लाठियां···फिर भी बचाव के लिये आदमी दौड़ लगाता है। दस क़दम आगे···दस कदम पीछे···सिर को हाथों की ओट किये···ज़िन्दा बचे रहने की कितनी दर्दनाक चाहत आदमी के अन्दर कौली मारे पड़ी रहती है। टूटने दो कमर और कन्धों की हड्डियां···सिर सलामत रहा तो ज़िन्दा रह लेंगे, सिसक-सिसक कर ही सही।

फिर भी···एक आवाज़ थी जो गूंजती रही थी—वन्दे मातरम् !

लाठी ठीक चड्ढा के सिर पर पड़ी थी···नहीं, टाग उसकी वर्तोन में नहीं टूटी।

चड्ढा के फ़र्श पर गिरते ही सारसों का काफ़िला दम तोड़ गया था। एक खौफ़नाक खामोशी···

"वन्देमातरम् बोलने की मनाही थी न ?" शुभा ने पूछा।

"हां···" लम्बी उसांस के साथ अविजित का 'हां' निकला।

"नारा बुलन्द करते ही लाठी चार्ज हो गया···बाक़ी लोगों को चोट आई," उसने मुर्दा स्वर में कहा।

"आपको भी ?" प्रभा ने पूछा।

"नहीं।"

प्रभा कुछ नहीं बोली तब भी अविजित तिलमिला गया।

"हर किसी को चोट आए, ज़रूरी नहीं है।"

"चड्ढा अंकल को आई होगी," प्रभा ने फिर कहा।

"हां, उसने अपने को बचाने की कोई कोशिश नहीं की। वह लगातार बन्दे-मातरम् चिल्लाता रहा।"

"फिर क्या हुआ ?" शुभा ने बिना तंज़ पूछा।

"घायलों को अस्पताल ले जाने में देर हुई तो हम लोगों ने भूख हड़ताल कर दी," अविजित ने उसके स्वर से आश्वस्त होकर कहा।

पर प्रभा भी तो थी।

"आपने भी ?" उसने कहा।

'क्यों, मैं क्यों नहीं करता ?"

"प्रभा," अनित्य ने कहा, "एक गिलास पानी लेकर आ।"

"आप लोग चड्ढा अंकल को पागल समझते थे न ?" प्रभा ने पूछा।

"किसने कहा ?"

"मैं पूछ रही हूं।"

"प्रभा," अनित्य ने कहा, "सुना नहीं तूने, एक गिलास पानी लेकर आ।"

"लाती हूं···इतनी जल्दी···"

"जल्दी है ! पहले लेकर आ।"

प्रभा अन्दर चली गई।

"यह काजल इन लोगों को जाने क्या-क्या सिखलाती रहती है," अविजित ने कहा।

"काजल ? कौन···बनर्जी ?"

"हां।"

"यहां है ?

"हां। प्रभा को पढ़ाती है।"

"चड्ढा से उसका कुछ लगाव था ?"

नहीं, लगाव उसका मुझसे था; सज़ा भी वह मुझे ही देगी। वह और चड्ढा, दोनों···जेल में मैंने कम तो नहीं भुगता···

प्रभा पानी का गिलास लेकर आ गई, बोली, "ममी पूछ रही हैं, सब लोग फाटक पर क्यों खड़े हैं। कोई वारदात हो गई क्या ?"

"ओहो, हद हो गई," अनित्य ने कहा, "मैं तो शुक्ल जी को भाभी के पास ही छोड़ आया। हैं वहां ?"

"जी। एक बार नज़र तो आई थी," प्रभा ने कहा।

"कौन हैं यह शुक्ल जी ?" अविजित ने पूछा। कहीं और मन लगाना बहुत ज़रूरी हो रहा था।

"दोस्त ही समझिये। रिश्ता खासा दिलचस्प है। हुआ यूं कि अपना एक दोस्त था। ज़रा दूर की देखने का शौक़ीन था। ऐसे लोगों की, आप जानते ही हैं, पास की नज़र कमज़ोर हुआ करती है। ख़ैर, हुआ यूं कि उसने बिज़नेस का एक प्लान बनाया।

खूब घूमा। और दो चार आदमियों से रुपया इकट्ठा कर लिया। कोई गड़बड़-घोटाला उसमें नहीं था। बाकायदा पार्टनर बनाया था दोस्तों को। करीब बीस हज़ार रुपया लगा होगा हर आदमी का। बिज़नेस शुरू धूमधाम से हुआ, कुछ दूर चल कर बैठ गया। रुपया डूब गया। पार्टनरों की खींचातानी से बचने का उपाय भी दोस्त ने दूर का निकाला। खुदकुशी कर ली।

"मातम मनाने वाले पार्टनरों में एक दुष्यन्तजी भी थे। मालूम नहीं कहां से मेरा पता पा गए और गिड़गिड़ाते मेरे पास आ पहुंचे। अब मैं क्या कर सकता था? रुपये न हों तो आदमी सिर्फ दोस्ती दे सकता है, लिहाज़ा दोस्त बनाना पड़ा…"

"तो अब क्या हर जगह इन्हें साथ लेकर घूमेंगे?" प्रभा ने पूछा।

"नहीं, यहीं छोड़ जाऊंगा।"

"जी?"

"मेरे आदमी ने बीवी के ज़ेवर बेच कर पार्टनर बनने की ख्वाहिश पूरी की थी। बीस का बीस हज़ार डूब गया तो अब घर जाने से कतरा रहे हैं। मैंने सोचा कुछ दिन यहां रह लेगा… बीमे की एजेंसी जैसा कोई काम धाम उसे करा दें… कुछ दिनों में घर जाने लायक हो जायेगा।"

"यह कोई मुसाफिरखाना है?" प्रभा ने, अविजित के कुछ कहने से पहले ही कहा।

"नहीं…पागलखाना," अनिरुद्ध ने उसके कान में कहा।

"प्रभा," अविजित ने बाधा दी, "ऐसे क्यों कहती हो? यह बेचारे कुछ दिन… मुसीबत में हैं।"

"मुसीबत में तो यहां चालीस करोड़ इन्सान हैं, इन सबके लिये…"

"चुप रह प्रभा," सहसा सुधा ने कहा, "बात को कहां से कहां ले जाती है।"

प्रभा ने अचरज से उसकी तरफ़ देखा और चुप हो गई।

"चलो, अन्दर चलो," अनिरुद्ध ने कहा, "भाभी घबरा रही होंगी।"

श्यामा कमरे में थी। कमरे में पहुंच कर सभी आश्वस्त हुए।

श्यामा बिस्तर पर अधलेटी पड़ी थी। पास आराम कुर्सी पर दुष्यन्तजी बैठे थे। बड़े भक्ति भाव से [illegible] की गाथा सुना रहे थे। सुनने वालों में श्यामा ही नहीं, उसके पलंग के पासवाले बैठी लोगी भी शामिल थीं और अचरज… गुपांशु दुष्यन्तजी की गोद में था!

"इनके आठ बच्चे हैं," धीरे से अनिरुद्ध ने कहा।

बाद में पता चला था, दुष्यन्तजी खुद भीतर आकर स्वर्णा के पास से गुपांशु को उठा लाए थे।

आदमी काम का लगता है, अविजित के मन में उठा, स्वर्णा के जाने के बाद…

परिचय और समझदारी में ज्यादा वक्त नहीं लगा था, श्यामा सारी पार्टी की कहानी बीच में छोड़ी जाए।

उन्हें वहीं छोड़ कर अविजित अनित्य के साथ बैठक में चला आया। पीछे-पीछे प्रभा भी आ पहुंची।

शुभा कुछ देर कमरे में ठिठकी खड़ी रही, शुक्लजी का कहानी सुनाने का तरीक़ा काफ़ी नाटकीय था···अतिनाटकीय पर दिलचस्प···नौटंकी की तरह। शुभा को सुनने में मज़ा आ रहा था पर वह प्रभा और अविजित के पास रहना चाहती थी···उनके बीच। उसे लग रहा था, अविजित को उसकी ज़रूरत किसी वक़्त भी पड़ सकती है। लिहाज़ा दो-एक मिनट बाद ही वह बैठक की तरफ़ चल दी।

"चड्ढा अंकल और मिस बनर्जी आप लोगों से अलग क्यों हो गए थे?" उसने सुना प्रभा अविजित से पूछ रही है।

यह प्रभा भी, बस! जिस चीज़ के पीछे पड़ जाए, भूत की तरह चिपकी रहती है।

"अलग? क्या मतलब?" अविजित ने माथे पर बल डाल कर पूछा।

"बाद में उन्होंने गान्धीवादी पथ छोड़ दिया था न? क्यों? सिर पर चोट आने के कारण?"

"नहीं तो। छोड़ना-न-छोड़ना क्या था। पथ बचा ही कहां था जो···जब चौंतीस में हम लोग जेल से छूटे तो सब-कुछ ठण्डा पड़ चुका था। नहीं-नहीं, सिर पर चोट आने के कारण चड्ढा कुछ छोड़ने वाला नहीं था। वह तो अस्पताल भी चार दिन टिक कर न रह पाया, लौट आया क्योंकि···"

बीच वाक्य वह चुप हो गया। पता नहीं, बार-बार प्रभा क्यों उन दिनों में जाने पर विवश कर रही है, जिन्हें वह आधा-पौना याद कर नहीं पाता और पूरा करना नहीं चाहता।

चड्ढा चार दिन के भीतर अस्पताल से वापिस बैरक में लौट आया था···

वे लोग अचरज में पड़ गए थे, इतनी भयानक चोट और अभी से डिस्चार्ज कर दिया!

"अभी से डिस्चार्ज कर दिया?" चड्ढा से पूछा भी था।

"नहीं," उसने कहा था, "पर ज़ोर करके रोका भी नहीं।"

"कमाल है। वे भला क्यों ज़ोर करके रोकेंगे? जेल के डाक्टर हैं, तेरे महबूब नहीं," हरीश ने कहा था।

"डाक्टर हैं या नहीं, यह तो नहीं मालूम। इतना ज़रूर जानता हूं कि वहां मरीज़ कोई नहीं है।" चड्ढा ने कहा था।

"यानी?"

"सब के सब बहानेबाज़ हैं। जेल की मुसीबतों से बचने के लिए अस्पताल में भरती हो गए हैं। वह सेठ याद है जो पहले दिन यहाँ मिला था…"

'वह सुनारिया जो 'ए' क्लास का रोना रो रहा था?" चटर्जी ने पूछा।

"हाँ। और तुम लोग बड़े हमदर्द बन कर सुन रहे थे—सेठजी आखिरी 'सी' क्लास कैसे मिल गई!"

"अरे, वह बारी-बारी से सबको अपनी व्यथा-कथा सुना रहा था तो हमने सोचा इकट्ठी ही कह लेगा," हरीश ज़ोर से हँस पड़ा था, "याद है, रोटी देख कर कैसे बिदका था, जैसे सांप पर पांव आ गया हो!"

"आजकल अस्पताल में तशरीफ़ रखे हैं," पद्मा ने कहा।

"अच्छा, मैंने तो सोचा, क्लास बदली हो गई सेठ की," चटर्जी ने कहा।

"अर्ज़ी तो भेजी है बेचारे ने। बाहर से रिश्तेदार—दोस्त—वकील सभी ज़ोर लगा रहे हैं पर रेड टेप में कहीं वह पड़ गया दिखता है। समझौते से बड़े आदमी को 'सी' क्लास देनी दी पर गलती हुई कहाँ, ढूँढे नहीं मिल रही। लिहाज़ा…बवासीर की भयानक बीमारी की बदौलत सेठजी आजकल अस्पताल में भरती हैं।"

'कितना गांधीवादी बनता था। रोज़ नियम से चरखा कातता था।"

"वह तो अभी भी कातता है। वक्त काटने का उपाय जो चाहिए। हम लोगों की तरह सुर्खीकरण थोड़ा ही है कि बारह सेर रोज़ दिन भर में पीसो तो पता ही न चले कि कब सुबह शुरू हुई कब शाम ख़त्म।"

"यह सब तो समझ में आ गया," अविजित ने टोका, "पर तू अस्पताल से क्यों चला आया, यह तो बतला।"

"आज सुबह एक एमर्जेंसी केस आ गया। बस, सब को दस्त लग गए, कहीं बेड ख़ाली करके वापिस 'सी' क्लास में न आना पड़े। मैंने कहा, लानत है अस्पताल पर! और चला आया।"

"बवासीर की बीमारी कैसे होती ख़तरनाक है," तरुण जो अब तक चुप बैठा सुन रहा था, बोल पड़ा।

"क्यों तुम्हें भी है क्या?" पद्मा ने फ़ौरन कहा था।

तरुण सकपका गया था। पर बीमारी आदमी को चुप नहीं होती। बवासीर न हुई गुज़मी सही! तरुण जब-तब अस्पताल हो ही आता था। कम दाम पर ही काम हो जाया करता था।

पर हम लोग नहीं गए। मैंने पूरे दो साल 'सी' क्लास में काटे! फिर बाहर को क्या अधिकार है मुझ पर छींटाकशी करने का!

यह ठीक है कि पद्मा की तरह बेंतों की सज़ा मुझे नहीं मिली पर…पद्मा से मेरी कोई प्रतियोगिता तो थी नहीं…

पद्मा का वो सीम सावन…दीवार से सिर फोड़ने का शौक़ किसी एक को हो तो यह मतलब तो नहीं कि दूसरे भी…

उन्हें वहीं छोड़ कर अविजित अनित्य के साथ बैठक में चला आया। पीछे-पीछे प्रभा भी आ पहुंची।

शुभा कुछ देर कमरे में ठिठकी खड़ी रही, शुक्लजी का कहानी सुनाने का तरीक़ा काफ़ी नाटकीय था···अतिनाटकीय पर दिलचस्प···नौटंकी की तरह। शुभा को सुनने में मजा आ रहा था पर वह प्रभा और अविजित के पास रहना चाहती थी···उनके बीच। उसे लग रहा था, अविजित को उसकी ज़रूरत किसी वक़्त भी पड़ सकती है। लिहाज़ा दो-एक मिनट बाद ही वह बैठक की तरफ़ चल दी।

"चड्ढा अंकल और मिस बनर्जी आप लोगों से अलग क्यों हो गए थे?" उसने सुना प्रभा अविजित से पूछ रही है।

यह प्रभा भी, बस! जिस चीज़ के पीछे पड़ जाए, भूत की तरह चिपकी रहती है।

"अलग? क्या मतलब?" अविजित ने माथे पर बल डाल कर पूछा।

"बाद में उन्होंने गान्धीवादी पथ छोड़ दिया था न? क्यों? सिर पर चोट आने के कारण?"

"नहीं तो। छोड़ना-न-छोड़ना क्या था। पथ बचा ही कहां था जो···जब चौंतीस में हम लोग जेल से छूटे तो सब-कुछ ठण्डा पड़ चुका था। नहीं-नहीं, सिर पर चोट आने के कारण चड्ढा कुछ छोड़ने वाला नहीं था। वह तो अस्पताल भी चार दिन टिक कर न रह पाया, लौट आया क्योंकि···"

बीच वाक्य वह चुप हो गया। पता नहीं, बार-बार प्रभा क्यों उन दिनों में जाने पर विवश कर रही है, जिन्हें वह आधा-पौना याद कर नहीं पाता और पूरा करना नहीं चाहता।

चड्ढा चार दिन के भीतर अस्पताल से वापिस बैरक में लौट आया था···

वे लोग अचरज में पड़ गए थे, इतनी भयानक चोट और अभी से डिस्चार्ज कर दिया!

"अभी से डिस्चार्ज कर दिया?" चड्ढा से पूछा भी था।

"नहीं," उसने कहा था, "पर ज़ोर करके रोका भी नहीं।"

"कमाल है। वे भला क्यों जोर करके रोकेंगे? जेल के डाक्टर हैं, तेरे महबूब नहीं," हरीश ने कहा था।

"डाक्टर हैं या नहीं, यह तो नहीं मालूम। इतना ज़रूर जानता हूं कि वहां मरीज़ कोई नहीं है।" चड्ढा ने कहा था।

"यानी?"

"सब के सब बहानेबाज़ हैं। जेल की मुसीबतों से बचने के लिए अस्पताल में भरती हो गए हैं। वह सेठ याद है जो पहले दिन यहां मिला था…"

'वह मुनाफ़िया जो 'ए' क्लास का रोना रो रहा था?" चटर्जी ने पूछा।

"हां। और तुम लोग बड़े हमदर्द बन कर पूछ रहे थे—सेठजी आपको 'सी' क्लास कैसे मिल गई!"

"अरे, वह बारी-बारी से सबको अपनी व्यथा-कथा सुना रहा था तो हमने सोचा इकट्ठा ही कह लेगा," हरीश ज़ोर से हंस पड़ा था, "याद है, रोटी देख कर कैसे बिदका था, जैसे सांप पर पांव आ गया हो!"

"आजकल अस्पताल में तशरीफ़ रखे हैं," चड्ढा ने कहा।

"अच्छा, मैंने तो सोचा, क्लास बदली हो गई सेठ की," चटर्जी ने कहा।

"अर्ज़ी तो भेजी है ऊपर। बाहर से रिश्तेदार—दोस्त—वकील सभी ज़ोर लगा रहे हैं पर रेड टेप में कहीं फंस पड़ गया दिखता है। गलती से बड़े आदमी को 'सी' क्लास दे तो दी पर गलती हुई कहां, ढूंढे नहीं मिल रही। लिहाज़ा…बवासीर की घातक बीमारी की बदौलत सेठजी आजकल अस्पताल में भरती हैं।"

"बिलकुल गान्धीवादी बनता था। रोज़ नियम से चरखा कातता था।"

"वह तो अभी भी कातता है। वक्त काटने का उपाय जो चाहिए। हम लोगों की तरह खुशकिस्मत थोड़ा ही है कि बारह सेर गेहूं दिन भर में पीसो तो पता ही न चले कि कब सुबह शुरू हुई कब शाम खत्म।"

"यह सब तो समझ में आ गया," अविजित ने टोका, "पर तू अस्पताल से क्यों चला आया, यह तो बतला।"

"आज सुबह एक एमरजेन्सी केस आ गया। बस, सब को दस्त लग गए, कहीं बेड खाली करके वापिस 'सी' क्लास में न आना पड़े। मैंने कहा, लानत है अस्पताल पर! और चला आया।"

"बवासीर की बीमारी वैसे होती खतरनाक है," सरन जो अब तक चुप बैठा सुन रहा था, बोल पड़ा।

"क्यों तुझे भी है क्या?" चड्ढा ने फौरन कहा था।

सरन सकपका गया था। पर बीमारी आदमी को एक नहीं होती। बवासीर न हुई मुझको यही! सरन जब-तब अस्पताल हो ही आता था। कम दाम पर ही काम हो जाया करता था।

पर हम लोग नहीं गए। मैंने पूरे दो साल की क़ैद 'सी' क्लास में काटी। फिर काश्यप को क्या अधिकार है मुझ पर छींटाकशी करने का!

यह ठीक है कि चड्ढा की तरह बेंतों की सज़ा मुझे नहीं मिली पर…चड्ढा से मेरी कोई प्रतियोगिता तो थी नहीं…

चड्ढा था जो नीम पागल…दीवार से सिर फोड़ने का शौक़ किसी एक को हो तो यह मतलब तो नहीं कि दूसरे भी…

उस दिन···

सुपरिन्टेन्डेंट जेल का मुआयना करने आने वाला था। सुबह से जेल की धुलाई पोंछाई हो रही थी। क़ैदियों को चक्कियों पर से हटा कर फ़र्श धोने के काम पर लगा दिया गया था। सुपरिन्टेन्डेंट के बारे में मशहूर था कि उसने आज तक किसी क़ैदी के पास रुक कर बात नहीं की; बेहद सफ़ाईपसन्द अंग्रेज़ है। फ़र्श और दीवारों का इंच-दर-इंच मुआयना करता है···चूहों और तिलचट्टों से खास नफ़रत है, क़ैदियों में कोई दिलचस्पी साहब की नहीं है। उनके आने पर क़ैदियों को एक ही काम पर लगाया जाता है, साहब के आगे जाकर चूहों और तिलचट्टों को भगाते रहें ताकि उनकी नज़र उन पर न पड़े वरना···

और ऐन उसी वक़्त चड्ढा आकर सामने खड़ा हो गया था। हाथ की झाड़ू नीचे पटक दी थी और दहाड़ कर बोला था, "राजनैतिक क़ैदियों से झाड़ू-पोछा लगवाने का क़ायदा नहीं है!"

वार्डन से लेकर सुपरिन्टेंडेंट तक हक्के-बक्के रह गये थे। बाक़ी के क़ैदियों को सांप सूंघ गया था। चड्ढा ने एक बार पीछे मुड़ कर देखा भी था। पर कोई क़ैदी आगे नहीं बढ़ा था। चड्ढा अकेला पड़ गया था!

सुपरिन्टेंडेंट ने गरज कर कहा था, "बीस बेंत!"

वे लोग चड्ढा को पकड़ कर···

नहीं-नहीं, वह याद करना नहीं चाहता।

उन लोगों ने पहले ही उससे कहा था। एक बार जेल में आ गए तो क्या चक्की और क्या झाड़ू! सब बराबर है। कांग्रेस के बड़े नेता, कमलनैन जी, खुद 'बी' क्लास से आकर समझा गए थे—जेल के भीतर वन्देमातरम् बोलना, प्रदर्शन करना, विरोध जतलाना, इन सबका कोई औचित्य नहीं है। जेल के अन्दर ही तो जेल के क़ायदे-क़ानून मान कर रहो और इन छोटी-मोटी बातों से फ़र्क भी क्या पड़ता है···

उन सब ने चड्ढा को कितना समझाया था पर उसने एक न मानी। उसका खयाल था कि उसके आवाज़ उठाते ही बाक़ी लोग खुद-ब-खुद साथ देने को आगे बढ़ जाएंगे, उस दिन की तरह, जब वन्देमातरम का नारा गूंज गया था पूरी जेल में। वह भूल गया था कि वे लोग एक बार भुगत चुके हैं। सात-आठ महीने जेल काट लेने पर वह जोश कहां रह जाता है। ऊपर से वार्डन आए दिन नई अफ़वाहें सुना जाता था। अखबार उन लोगों को नसीब था नहीं। सो डिब्बे में बन्द प्राणियों की तरह ढक्कन के छिद्रों से हवा के साथ जो अफ़वाहें अन्दर प्रवेश कर जाती थीं, उन्हीं पर सन्तोष कर लेना पड़ता था। कभी किसी खत के ज़रिये, कभी वार्डर की दया से···

कुछ दिन पहले ही तो वह बतला रहा था; रामज़े मावडोलैन्ड के साम्प्रदायिक निर्णय के विरुद्ध गान्धीजी आमरण अनशन कर रहे हैं। आज़ादी का मुद्दा छोड़ दिया गया है, गान्धीजी अछूतोद्धार में लगे हैं। कांग्रेस ने कांसिल प्रवेश का उसूल स्वीकार कर लिया है। ऐसे वक़्त में कैसा जोश और किसके लिए?

अविजित चड्ढा का नाम दे भी देता तो क्या हो जाता ? उसे भी बेंतों की सज़ा···!

···नंगी पीठ पर सनसनाता चाबुक···एक···दो···तीन···कुलबुल करता खून···चमड़ी फाड़ कर फूटती लहू की धाराएं ! चार···पांच···छह···सात··· घावों का मंथन, होंठ को दांतों से चबाता ! आठ··· नौ··· लहू का समन्दर···होश में खौफनाक उतार ! पन्द्रह···सोलह···बेहोशी की रेत पर सिर धुनता प्रलाप···ऊपर टिकटिकी पर टंगा मांस का लोथड़ा···

ऊपर टिकटिकी पर टंगा चड्ढा···अविजित नहीं, चड्ढा। चड्ढा···

"मिस बनर्जी कह रही थीं," प्रभा ऊंचे स्वर में कह रही है, "जेल में चड्ढा अंकल पर बहुत जुल्म हुए।"

"हों !" अविजित मन्द हंसा, "इसमें मिस बनर्जी ने नई बात क्या कही। जेल में जुल्म नहीं तो क्या होगा !"

"तिवारी !" मन्द स्वर में शुभा ने पुकारा।

अविजित की लाल-लाल आंखें प्रभा से घूम कर उस पर आ टिकीं। शुभा समझ गई, वे उसे नहीं देख रहीं और शायद प्रभा को भी नहीं।

"आप कह रहे थे," उसने कहा, "चौंतीस में जब आप लोग जेल से छूटे तो आन्दोलन ठण्डा पड़ चुका था ?"

"इसीलिए चड्ढा और काजल बनर्जी अलग जा पड़े, क्यों भाई साहब ?" अनित्य ने कहा।

"हां। वे क्या, सभी लोग-अलग-अलग जा पड़े। गान्धीजी ने आन्दोलन वापिस ले लिया था," अविजित ने सम्भल कर कहा। फिर मुखातिब हो कर मस्ती के साथ जोड़ा, "बात तो पूरी तरह समझने की कोशिश करनी चाहिए।"

आज भी याद है अप्रैल चौंतीस का वह दिन जब जेलर ब्राउन खुद आकर उन्हें खबर दे गया था— गान्धीजी ने सत्याग्रह आन्दोलन वापिस ले लिया !

कैसा लगा था सुन कर ?

आदमी से कहा जाए, आंखों पर पट्टी बांध कर नदी में छलांग लगा दो। अन्ध-विश्वास के साथ नदी को पानी समझ कर वह कूद पड़े और नुकीले पत्थरों पर जा गिरे, कैसा लगेगा ?

जेलर ब्राउन 'सी' क्लास के क़ैदियों को इस लायक़ नहीं समझता था कि उनसे बात की जाए। पर इतनी बड़ी खुशखबरी पचा नहीं पाया था, इसी से ऐलान करने उनकी बैरक में आ पहुंचा था।

"नामुमकिन !" चड्ढा ने कहा था।

"नामुमकिन ?" ब्राउन ने टेढ़ी मुस्कराहट के साथ उस दिन का 'लीडर' उनके

सामने कर दिया था।

अखबार!

एक दर्जन हाथ उस पर झपट पड़े थे।

अखबार चिथड़े-चिथड़े हो गया था—हर पन्ना अलग। सुर्खियों वाला पन्ना अविजित के हाथ लगा था। बाक़ी हाथों से उसे बचाए रखने के खयाल से उसने खबर जोर-ज़ोर से पढ़नी शुरू कर दी थी और हर हरफ़ के साथ उसका दिल टूटता चला गया था।

वाक़ई गांधीजी ने सत्याग्रह वापिस ले लिया था। कारण बतलाते हुए उनका वक्तव्य छपा था। अविजित ने पढ़ा जरूर पर समझ में कुछ नहीं आया। सुनने वाले भी उसी की तरह भौंचक थे। खत्म करते ही दुबारा पढ़ना शुरू कर दिया उसने···

"···इसका मुख्य कारण वह आंखें खोलने वाली खबर थी जो मुझे अपने एक बहुत पुराने और बहुमूल्य साथी के सम्बन्ध में मिली थी। वह जेल में काम करने को राज़ी न थे और उसके बजाय किताबें पढ़ना पसन्द करते थे। यह सब कुछ सत्याग्रह के नियमों के सर्वथा विरुद्ध था। इस बात से इस मित्र की अपेक्षा मुझे अपनी दुर्बलताओं का अधिक बोध हुआ। उन मित्रों ने कहा था कि मेरा खयाल है कि आप मेरी दुर्बलता को जानते हैं। लेकिन मैं अन्धा था। नेता में अन्धापन एक अक्षम्य अपराध है। मैंने फ़ौरन यह भांप लिया कि कम-से-कम इस समय के लिए तो मैं अकेला ही सक्रिय सत्याग्रही रहूंगा···"

बस! इतनी मामूली-सी बात के लिए गांधी जी ने इतना बड़ा राष्ट्रीय संग्राम रोक दिया। एक अकेले इंसान ने ग़लती की, इसी को किन्हीं आध्यात्मिक और रहस्यमय उसूलों का आधार बनाकर राष्ट्रीय आंदोलन में हिस्सा ले रहे हज़ारों इंसानों को अधर में लटका कर छोड़ दिया!

वक्तव्य के अन्त में गांधी जी ने कांग्रेस वालों को सलाह दी थी—"उन्हें आत्म-त्याग और स्वेच्छापूर्वक ग्रहण की गई दरिद्रता की कला और सुन्दरता को समझना होगा; उन्हें राष्ट्रीय निर्माण के कार्य में लग जाना चाहिए, उन्हें स्वयं हाथ से कात-बुनकर खद्दर का प्रचार करना चाहिए, उन्हें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक-दूसरे के साथ निर्दोष सम्पर्क स्थापित करके लोगों के हृदयों में साम्प्रदायिक ऐक्य का बीज बोना चाहिए, स्वयं अपने उदाहरण द्वारा अस्पृश्यता का प्रत्येक रूप में निवारण करना चाहिए और नशेबाजों के साथ सम्बन्ध स्थापित करके अपने आचरण को पवित्र रखकर मादक चीजों के त्याग का प्रसार करना चाहिए। ये सेवाएं हैं जिनके द्वारा ग़रीबों की तरह निर्वाह हो सकता है। जो लोग ग़रीबी में न रह सकते हों, उन्हें छोटे राष्ट्रीय धन्धों में पड़ जाना चाहिए, जिससे वेतन मिल जाए।"

सब लोग, हक्का-बक्का, एक-दूसरे का मुंह देखते खड़े रहे।

"ये सब करने से आज़ादी मिल जाएगी?" हरीश के मुंह से निकला।

"गांधीजी तो हमेशा से कहते भाए हैं, अपने निजी जीवन को पवित्र बनाए रहो, बाक़ी सब कुछ अपने आप ठीक हो जाएगा," सरण ने कहा।

वह हमेशा की तरह स्थिति से तटस्थ था।

"कैसे ?" चटर्जी ने कहा।

"मैं पूछता हूं हमारा ध्येय क्या है—आज़ादी या सदाचार ?" हरीश ने तमतमा कर कहा।

"गांधीजी कहते हैं, साधनों की चिन्ता करो, साध्य अपने आप···"

"ओह, शट-अप !" अविजित ने कहा, "तोते की तरह सूक्तियां मत बोल। गांधीजी ने जो कहा हो, इस वक़्त सवाल यह है कि आंदोलन बीच में रोक देने से आज़ादी के हमारे ध्येय का क्या होगा ?"

"कुछ नहीं होगा," हरीश ने कहा, "यही अन्त है !"

"नहीं," चड्ढा बोल उठा, "यह अन्त नहीं अन्त की शुरुआत है ! गुलामी के अन्त की ! अब हमें गांधीजी की ज़रूरत नहीं रही। हम लड़कर आज़ादी हासिल कर लेंगे !"

उसके स्वर की दृढ़ता ने सबके दिल में उम्मीद की जुम्बिश पैदा कर दी पर तभी ब्राउन बोल उठा, "आज़ादी की तुम लोगों को ज़रूरत क्या है ?"

वे लोग भूल ही गए थे कि जेलर ब्राउन अब तक उनके बीच में है।

"क्या मतलब ?" अविजित ने तड़प कर कहा।

"तुम लोगों का यह गांधी वाक़ई अक़्लमंद शख़्स है। अच्छी तरह जानता है कि अंग्रेज़ों के चले जाने पर हिन्दुस्तान दो दिन ज़िन्दा नहीं रह सकता, इसी से सुधार की बात करता है, लड़ाई की नहीं।"

उसकी बात से सभी तिलमिला उठे थे पर जवाब किसी के पास नहीं था, ख़ून का घूंट पीकर चुप बने रहे।

जेलर ब्राउन का स्वर कोमल हो गया। पथभ्रष्ट युवकों को समझाने के बुज़ुर्गाना अन्दाज़ में उसने सदय स्वर में कहा, "क्यों तुम लोग यहां जेल में पड़े सड़ रहे हो। अभी बच्चे हो, तुम्हारा भविष्य तुम्हारे सामने है। घर जाओ, पढ़ाई-लिखाई करो। अंग्रेज़ी राज क़ायम रहा तो नौकरियों की कमी नहीं होगी।"

"हमें नौकरी नहीं, आज़ादी चाहिए," चड्ढा ने कहा।

"तुम्हारे चाहने से क्या होता है।" ब्राउन ने व्यंग्य से हंस कर कहा, "तुम्हारे जैसे सैकड़ों सिरफिरे फांसी के तख़्तों पर लटक चुके। हम समझते हैं—और कांग्रेस समझती है, हिन्दुस्तान और अंग्रेज़ जुदा नहीं हो सकते।"

"शट-अप।" सहसा चड्ढा चीख पड़ा था।

बैरक के अन्दर-बाहर सन्नाटा छा गया था।

ब्राउन के चेहरे पर से शालीन समझौते का नक़ाब उतर गया। घृणा और क्रूर

अहं की लाली से हर नक्श गरम हो उठा।

चाबुक फटकारती आवाज़ में उसने कहा, "इतनी बेंतें खाकर भी अक़्ल दुरुस्त नहीं हुई। और खाना मांगता है, बास्टर्ड !"

तान कर बूट-समेत एक लात उसने चड्ढा की पीठ पर जमा दी। चड्ढा औंधे मुंह फ़र्श पर गिर पड़ा।

फिर···

नहीं, अविजित याद नहीं करना चाहता।

अविजित नहीं चाहता, एक बार फिर वह अपने चारों तरफ़ के माहौल से अपरिचित हो जाए।

जब से काजल से मुलाक़ात हुई है···न जाने क्या हो गया है कि अपने वर्तमान से परिचय जोड़े रखने के लिए अविजित को सायास प्रयत्न करना पड़ता है।

"ऐसे कोई जी सकता है भला ? विगत में लिपट कर, हर पल ?

छोटा अन्तराल तो नहीं है, बीस साल का। फिर···और जब वह याद करना नहीं चाहता। इतने बरस भुलाए रहा······सिर्फ़ जो चाहा वही याद किया······जो तसल्लीबख्श था······खुशगवार था······ज़मीर पर जो भारी पड़े······छोड़ो······ वह अनित्य की बातें हैं। नहीं······अनित्य ने तो कुछ कहा ही नहीं······आज···यह अविजित की बातें हैं···अविजित के हर पल जीवित उस विगत को जो बीता नहीं···

काजल······अविजित याद नहीं करना चाहता······फिर भी···काजल···जेल में उससे मिलने आई थी···आखिरी बार··बीस साल पहले···

कमरे में बैठे प्राणी अविजित को दीखने बन्द हो गए।

वह उठा और कमरे से निकल कर बाहर बरामदे में आ गया···उन्हें वर्तमान में टंगा छोड़कर स्वयं समय के अन्तराल में खिसक गया···

दस क़दम आगे···दस क़दम पीछे···फिर दस क़दम आगे···दीवारों के बीच फंसा अविजित छटपटाता घूमता रहा···

जेल की कोठरी में बन्द रहने वाले आदमी के लिए मुलाक़ात का दिन कितना उत्साह-पूर्ण होता है······बाहर की दुनिया से सम्पर्क जुड़ते ही इन्सान होने का अहसास जो जग उठता है मन में ! वहीं तो अटका रहता है रात-दिन उसका मन—बाहर की दुनिया में। भीतर के संगी-साथी उदासी और खालीपन को भर नहीं पाते, और विस्तार देते हैं।

बाहर की दुनिया का छोटा-सा आभास···!

रात दस बजे एक दिन···आसमान के उस छोटे-से हाशिये पर जो उनके वार्ड

की खिड़की से दीखा करता था, एक हवाई जहाज उभर आया ! वाह ! उड़ान भरती बाहर की दुनिया ! वार्ड के तमाम क़ैदी एकजुट होकर खिड़की की तरफ़ दौड़ पड़े थे… काश दूर क्षितिज पर विलीन होने तक उसे देख सकते, पर कहाँ…खिड़की की सलाखों में फँसे आसमान का ब्यारा था ही कितना ? फिर भी, जब तक हो सका, अविजित खिड़की से नहीं हटा था। धक्का-मुक्की करते साथियों को उसकी बलिष्ठ भुजाओं ने पीछे धकेल दिया। देखता रहा था…दूर…कहीं जा कर ओझल हो गया था हवा का वह प्रतिद्वन्द्वी !

पागल की तरह अविजित खिड़की छोड़ दरवाजे की तरफ़ दौड़ा और ज़ोर-ज़ोर से दरवाज़ा पीटने लगा। नहीं ठहर सकेगा अन्दर अब एक पल भी ! मत छोड़ो जेल से, अहाते में तो निकल जाने दो ! क्षण-दो-क्षण हवाई जहाज के साथ आकाश में उड़ लेने दो ! पर नहीं। रात वार्ड में बन्द किये गए क़ैदी सुबह होने पर ही खोले जाते थे। दरवाज़े के बाहर मोटे कुण्डे में भारी ताला पड़ा था ।

"गुजर हैं हम लोग जो इस तरह बन्द करके रखा जाता है !" वह चीख उठा था।

"क्यों इतना बिदक रहा है ?" चड्ढा ने कहा था, "हवाई जहाज तुझे लेने नहीं आया।"

मन मार कर वह खिड़की पर लौट आया था और देर तक सूने आसमान पर शून्य की उड़ान देखता रहा था।

और उस दिन…

"मुलाकात आई है," उसने सुना था, मेट ने कहा है।

"कौन है ?" उसने पूछा था। मन में सोचा था, काश अनित्य हो, पिताजी आते हैं, उदास और बीमार, तो रो-रोकर उसकी भर्त्सना करते रहते हैं।

"कोई काजल बनर्जी है," मेट ने कहा था।

पुलक ! …फिर आतंक ! अविजित ने चाहा था, मना कर दे, पर बाहर की दुनिया को छू पाने का लोभ…रोक न सका था…चाहे जिस भी माध्यम से हो।

उस दिन, अगर उन दोनों के बीच जाली न खिंची होती…दौड़ कर आती काजल दो साल पहले की तरह, उसके गले से लिपट गई होती…उसे बांहों में दबोचकर वह उसे चूम न उठता ! उसकी देह की छुअन से अपने शरीर की उद्दाम जलन को बढ़ा न बैठता ?

दूर से आती काजल की सादा-आकृति को देखकर उसका मन हुआ था, जाली को नोचकर फेंक दे। बेतहाशा उसकी तरफ़ दौड़ जाए, जैसे उस रात उड़ते हवाई जहाज को देखकर दौड़ लगाई थी, और उसे बांहों में भर ले। पर… उनके बीच जाली खिंची थी। बच गया वह। जो उस दिन घटा था, घटना हो या पर उससे कहीं ज्यादा भयानक अन्याय से वे बच गए थे। अविजित करने से, काजल सहने से।

जाली के एक तरफ़ अविजित था, दूसरी तरफ़ काजल। आमने-सामने। स्कै–

पुरुष नहीं, अविजित और काजल।

इतनी बदसूरत काजल पहले कभी नहीं थी। कमज़ोर पीला चेहरा, खुरदुरी खाल और गहराई तक गुदे चेचक के दाग़।

पास बने पाखाने से बदबू का भभकारा उठा। अविजित का मन वितृष्णा से भर गया था।

चारों तरफ़ इस क़दर हल्ला मचा हुआ था कि बात सुननी मुश्किल थी। ज़ोर से बोलो तो सब सुनें, धीरे तो सामने वाला भी नहीं। काजल की बात क्या जोर से कहने की थी? फिर भी वह नहीं झिझकी थी। हां, अविजित बुरी तरह संकुचित हो उठा था।

बैठने की जगह नहीं थी। वे लोग खड़े-खड़े ही बात कर रहे थे।

"कैसे हो?" काजल ने पूछा था।

"ठीक हूं," उसने कहा था।

"मां-बाबा पटना जा रहे हैं।"

"अच्छा।"

"मुझे क्या करने को कहते हो?"

"मैं क्यों कहूंगा?" अनजान बनकर उसने कहा था।

"बाबा के साथ पटना चली जाऊं या यहीं रहूं। तुम्हारे छूटने पर···"

"बाबा क्या कहते हैं?"

"उन्हें छोड़ो। तुम बतलाओ।"

"मैं क्या बतलाऊं, यह तुम्हारे सोचने की बात है।"

"अविजित, सोचकर ही तुमसे पूछ रही हूं। यह वक़्त लज्जा का नाटक करने का नहीं है। तुम्हारे जेल से छूटने पर हमारा विवाह होगा या नहीं?"

अविजित न 'हां' कह सका था, न 'ना'।

"यह वक़्त क्या इन सब बातों का है?" उसने कहा था।

"क्यों नहीं?"

"अभी मैं जेल में हूं। छूट भी गया तो क्या होगा, दुबारा पकड़ा जाऊंगा। मेरा जीवन देश को अर्पित है। शादी-ब्याह के बारे में मैं नहीं सोच सकता।"

कहते-कहते अविजित को लगा था, काजल के चेहरे पर कुछ और चेचक के दाग़ गुद आए हैं, उसके देखते-देखते। उनसे बिंध कर चेहरे की त्वचा बिलकुल कोयला हो गई है।

"सोचना चाहते नहीं कि कोई और बाधा है?" उसने पूछा।

"गांधीजी कहते हैं, नौजवानों को ब्रह्मचर्य व्रत लेकर देश की सेवा में उतरना चाहिए···" उसने बात शुरू की पर काजल ने बीच में काट दी।

"गांधीजी को रहने दो। तुम क्या चाहते हो, वही कहो।"

"मैं क्या चाह सकता हूं? चाहता हूं देश आज़ाद हो। मैं जेल से छूट जाऊं। मेरे चाहने से हो जाएगा?"

"तो···मैं···पटना···चली जाऊं?" काजल की आवाज कांप गई थी।

अविजित ने महसूस किया था कि अगर यह औरत काजल न होती तो फूट-फूट कर रो पड़ती।

वह क्रूर हो गया था।

"तुम आजाद हो," उसने कहा था,"जो चाहो कर सकती हो। मैं क़ैदी तुम्हें क्या सलाह दे सकता हूं?"

"मैं भी जेल काटकर आई हूं, अविजित," उसने कहा था,"पर तुम्हारी तरह···"

"टाइम पूरा हो गया!" वातावरण को चीरती मेट की आवाज गूंजी! काजल का वाक्य उसमें खो गया।

अविजित अपनी बैरक में लौट आया था पर महीनों काजल का वह अधूरा वाक्य उसे सालता रहा।

क्या कहा था काजल ने उस दिन···

"तुम्हारी तरह कायर नहीं बनी···तुम्हारी तरह खुदगर्ज नहीं बनी या ···तुम्हारी तरह हिप्पोक्रेट नहीं बनी···

दीवार में लगी अलमारी के आगे आकर अविजित रुक गया। धीरे से पल्ला खोला और भीतर झांका। देखा--सारा सामान, सुई-धागा, शेविंग का सामान, कैंची-चाकू, प्याला-प्लेट-गिलास करीने से सजे हैं। उसने राहत महसूस की और क़दम लौटा लिए।

यह देखकर मैंने राहत क्यों महसूस की, वह सोच रहा था। करीने से क्यों नहीं सजा होगा सामान? यह जेल नहीं है कि शेविंग रेज़र और शीशे को ताक पर सजा कर रख देने में ही कोई ऐतराज करने लगे।

बस, आदत हो गई है तभी से, जब वार्डन ने उसका वह मामूली-सा सामान ज़ब्त कर लिया था। 'यह जेल है, यहां आप अपने शौक़ पूरे करने नहीं आते,' उसने कहा था और उसका शेविंगरेज़र और साबुन, और हां, एक शेविंग ब्रश और सबसे प्यारा, उसका वह आईना उठा कर ले गया था। कमबख्त! कभी माफ़ नहीं करेगा अविजित उसे! अविजित का बदन कांप उठा। किस-किस को माफ़ नहीं करेगा अविजित? अविजित को किसने माफ़ किया है?

एक चक्कर काट कर वह वापिस अलमारी के आगे पहुंच गया।

मुझे इस बरामदे में क़ैद कर दिया जाए, तो बरसों आसानी से काट सकता हूं काजल!

यह ठीक है कि १९३४ में जेल से छूटने पर मैंने बढ़िया नौकरी ढूंढ निकाली और ब्याह भी कर लिया। पर इसमें मेरा कोई क़सूर नहीं था। गांधीजी ने आंदोलन ही वापिस ले लिया था।

मैं अकेला तो आंदोलन चला नहीं सकता था, अविजित ने हल्का महसूस करने

की कोशिश में सोचा पर काजल से जिरह···जीतना उतना आसान न था।

वह वापिस कमरे में लौट न सका।

शाम रात में तबदील होती गई।

अविजित, दस क़दमों में बंधा, चहलक़दमी करता रहा···

११

आज अविजित घर के एक कमरे से दूसरे कमरे में भटक रहा है।

इतवार का दिन है।

आज शाम संगीता की शादी है।

उसकी तैयारी में सुबह से श्यामा आराम कर रही है।

पता नहीं कैसे उसने अनित्य को भी शादी में चलने के लिए राज़ी कर लिया है। शादी-ब्याह में कभी जाता तो नहीं, आज कैसे मान गया? श्यामा की बात टाली भी जा सकती थी। चलो, न सही···

एक कमरे में शुभा-प्रभा को लेकर अनित्य बैठक लगाये हुए है, दूसरे में श्यामा है ही। बस, अविजित कहीं टिक नहीं पा रहा। और घर से बाहर जाने से भी कतरा रहा है। अनित्य है यहां। एक मोह बना हुआ है मन में कि शायद आपस में नाता जुड़ जाए और सब साथ मिलकर बैठ सकें। अपनों के सामीप्य में जो तुष्टि होती है···

"तुम्हारे पिताजी की भाभी से शादी मैंने ही करवाई थी," अनित्य कह रहा है।

"बड़ा अच्छा काम किया था!" प्रभा ने टोका।

"चुप भी रह," शुभा ने कहा, "कैसे हुई थी, बतलाइए न?" उसे सुनने में मजा आ रहा था।

"भाभी अपनी खूबसूरती के लिए पूरे लखनऊ शहर में मशहूर थीं। स्कूल में घुसती या बाहर निकलतीं तो दीदार हासिल करने के लिए लड़कों की भीड़ फाटक पर खड़ी मिलती। हम भी चले जाया करते थे। मालूम तो था, हैं जज सिंघल की बेटी··· बहुत ही बेहूदा बात है कि हर खूबसूरत लड़की के एक बाप जरूर होता है···"

"क्यों, बदसूरतों के बाप नहीं होते क्या ?" प्रभा ने फिर टोका।

"होते हैं पर उतने असरदार नहीं !" अनित्य ने कहा," खैर, यह मैं अच्छी तरह जानता था कि कोई बाप इतना बेवकूफ़ नहीं हो सकता कि अपनी बेटी की शादी मुझसे कर दे। अलबत्ता भाईसाहब की बात और थी। मैंने तय किया कि जस्टिस सिंघल की बेटी की शादी भाई साहब से होगी।"

"फिर ?" शुभा ने पूछा।

"फिर क्या ?"

"आपने तय कर लिया और हो गई शादी !" प्रभा हंस पड़ी।

"और क्या। मैंने भाई साहब से कहा, शादी करने का इरादा है ? वह बोले, हां। मैंने कहा, लड़की मैंने देख ली है, बेहद खूबसूरत है। बस भाईसाहब राज़ी हो गए।"

"और जस्टिस सिंघल ?"

"ज़ाहिर है।"

जस्टिस सिंघल के राज़ी हो जाने पर अविजित को भी कम अचरज नहीं हुआ था।

"वे अपनी बेटी की शादी मुझसे क्यों करेंगे ?" अनित्य से उसने कहा था, "वे जज हैं, उनके हिसाब से मैं देशद्रोही हूं···अंग्रेज़ी राज की मुख़ालफ़त करके जेल काट आया हूं।"

"यही तो वे चाहते हैं," अनित्य ने कहा था।

"क्यों भला ?"

"बुलन्द ज़मीर के आदमी हैं। जज हैं तो हर किसी को सज़ा सुनाने का काम करना ही पड़ता है पर ज़मीर बाक़ायदा किये रहता है। सुना है, एक बार गोविन्द वल्लभ पन्त को सज़ा सुनाने का मौक़ा आया तो बेचारों की आंखों में आंसू आ गए। अब तो खैर, कांग्रेस मंत्रिमंडलों का ज़माना है, जज साहब खुलकर रो सकते हैं।"

"लड़की वाक़ई खूबसूरत है ?" अविजित ने पूछा था।

"बेहद ! एक बार देख आइए न, फिर बात कर लेंगे। हां, एक बात है, जज साहब दहेज नहीं देंगे, ज़रा ऊंचे खयालात के आदमी हैं।"

"अच्छा है। पिताजी के उसूल भी दहेज के खिलाफ़ हैं।"

"जी हां। पिताजी के उसूलों को कौन नहीं जानता। सैशन्स कोर्ट के जज को समधी बनाने के लिए वे बड़े-से-बड़ा बलिदान देने को राज़ी होंगे।"

"यह बात नहीं है।"

"हां, बलिदान तो पहले ही दिया जा चुका। बेटा आई. सी. एस. अफ़सर न बन पाया, समधी तो हो। आपकी प्राइवेट फ़र्म की नौकरी को पिताजी बराबर की अहमियत न देते हों पर जज साहब को खूब सूट करता है। दामाद ऊंचे पद पर हो और ज़मीर पर भारी न पड़े, इससे बढ़िया बात क्या हो सकती है।"

१९३८ में अविजित की शादी श्यामा से हो गई थी। जीवन का एक अध्याय ख़त्म होकर दूसरा शुरू हो गया था। १९३७ में प्रान्तों में कांग्रेस मन्त्रिमंडल बन चुके थे। तय रहा था कि स्वतंत्रता की लड़ाई हमेशा के लिए स्थगित हो गई।

एक बहुत बड़ा लक्ष्य सिकुड़ कर दैनिक जीवन-यापन के व्यापार में केन्द्रित हो जाए तो कैसा लगता है ?

आदमी को दबा कर बोतल में बन्द कर दो तो वह उसी छोटी-सी जगह में हाथ-पैर मारकर जीने की आदत डाल लेगा, यही नहीं, बोतल के बीच घूमने को ही बड़ी बात मानकर नये-नये कोणों से उसकी दिक़्क़तों पर ग़ौर करेगा और अपने को सूरमा कहलाने में ज़रा झिझक नहीं महसूस करेगा।

देश से सिकुड़ कर परिवार !

आज़ादी से सिकुड़ कर प्रान्तीय हुक़ूमत में हिस्सा !

आदमी छोटा होता चला जाता है······

कई बरस बाद, अगर फिर से पुराना लक्ष्य आवाज़ लगाने लगे तो सुन पाना मुश्किल हो जाता है···

"जस्टिस सिंघल बहुत पुख़्ता ज़मीर के आदमी थे···" अनित्य कह रहा है।

"तभी तो जज थे," प्रभा की आवाज़।

"हां, हर जज का ज़मीर पुख़्ता होता है। इसी से दूसरों को सज़ा सुनाने से नहीं कतराता। अपने को सज़ा सुनाने की ज़रूरत महसूस करते ही आदमी बेचारा सिर्फ़ आदमी रह जाता है···"

वहां से हटकर अविजित श्यामा के कमरे में चला आया। देखा सुधांशु को गोद में लिये शुक्लजी गद्‌गद् कण्ठ से गीता के श्लोक गा रहे हैं। श्यामा आंखें बंद किये पड़ी है, चेहरे पर मुग्ध शान्ति का भाव है। निष्क्रियता में आनन्द ले पाना हर किसी के बस की बात नहीं है।

जब संगीता गाना सुनाती थी तब भी ऐसा ही सम्मोहित शान्ति का भाव श्यामा के चेहरे पर छाया रहता था। संगीता···आज शाम···जाना ही पड़ेगा।

अनित्य की कहानी चालू थी।

तभी स्वर्णा कमरे में घुसी।

"चाचाजी," उसने कहा।

प्रभा शुभा की देखा-देखी स्वर्णा भी अनित्य को चाचाजी कहती है।

शुरू-शुरू में एक बार 'छोटे साहब' कहकर पुकारा था तो अनित्य ने टोक दिया था, "मौसी मैं छोटा ज़रूर हूं पर साहब किसी हिसाब से नहीं। बेहतर है कि तुम मुझे···

"चाचाजी कह कर बुलाया करो," प्रभा ने जोड़ दिया था। तभी से स्वर्णा उसे चाचाजी कहती है और अनिरुद्ध उसे मौसी।

"चाचाजी," अब स्वर्णा ने कहा, "हमको कलकत्ता का एक टिकट लाकर दो।"

"कब का ?" अनिरुद्ध ने काम का सवाल किया।

"अगले इतवार का।"

"तू कलकत्ते जा रही है ?" शुभा ने बाधा दी।

"हां।"

"लौटेगी कब ?"

"लौटेगा नही।"

"क्या मतलब ?" शुभा उठ कर खड़ी हो गई, "तू चली जाएगी ?" चकित स्वर में उसने कहा।

"इसमें इतने अचरज की क्या बात है ?" प्रभा बोली, जानती तो है लछमन चला गया है तो वह भी···"

"नही—नही !" शुभा एकदम जा कर स्वर्णा की छाती से लिपट गई।

"तू मत जाना," उसने कहा।

स्वर्णा ने खींच कर उसे और पास समेट लिया। उसकी आंखों से आंसू गिरने लगे।

"सुधांशु का क्या होगा ?" शुभा ने कहा।

"उसको सोशी देख लेगा," स्वर्णा ने थरथर करते गले से कहा।

"सोशी ? वह कैसे देखेगी ?"

"देख लेगा। हम बतला कर जाएगा।"

"और ममी को ?"

"तू देखना।"

"मैं ? मैं कैसे ? नही, तू मत जा," शुभा सुबक कर रो दी।

"तू समझती क्यों नही, उसे जाना ही है," प्रभा ने कहा।

"एक लड़के का बन्दोबस्त हम कर दिया है, काम सम्भाल लेगा," स्वर्णा ने कहा।

"उससे क्या होगा !"

"वहां पहुंच कर अपना पता भेज देना," प्रभा ने कहा। भावुकता जाहिर न करने की कोशिश ने उसका स्वर रोजमर्रा से ज्यादा कर्कश बना दिया था।

शुभा ने चौंक कर उसकी तरफ देखा।

"क्या करेगा पता लेकर ?" स्वर्णा का स्वर भी कर्कश था।

"कभी घर से भागना पड़ा तो तेरे पास आऊंगी न," प्रभा ने कहा।

"भागेगा क्यों ?" स्वर्णा ने डपट कर कहा।

"किसी से प्रेम हो गया तो क्या करूंगी···भागना ही पड़ेगा।"

१९३८ में अविजित की शादी श्यामा से हो गई थी। जीवन का एक अध्याय खत्म होकर दूसरा शुरू हो गया था। १९३७ में प्रान्तों में कांग्रेस मन्त्रिमंडल बन चुके थे। तय रहा था कि स्वतंत्रता की लड़ाई हमेशा के लिए स्थगित हो गई।

एक बहुत बड़ा लक्ष्य सिकुड़ कर दैनिक जीवन-यापन के व्यापार में केन्द्रित हो जाए तो कैसा लगता है ?

आदमी को दबा कर बोतल में बन्द कर दो तो वह उसी छोटी-सी जगह में हाथ-पैर मारकर जीने की आदत डाल लेगा, यही नहीं, बोतल के बीच घूमने को ही बड़ी बात मानकर नये-नये कोणों से उसकी दिक़्क़तों पर ग़ौर करेगा और अपने को सूरमा कहलाने में ज़रा झिझक नहीं महसूस करेगा।

देश से सिकुड़ कर परिवार !

आज़ादी से सिकुड़ कर प्रान्तीय हुकूमत में हिस्सा !

आदमी छोटा होता चला जाता है······

कई बरस बाद, अगर फिर से पुराना लक्ष्य आवाज़ लगाने लगे तो सुन पाना मुश्किल हो जाता है···

"जस्टिस सिंघल बहुत पुख्ता ज़मीर के आदमी थे···" अनित्य कह रहा है।

"तभी तो जज थे," प्रभा की आवाज़।

"हां, हर जज का ज़मीर पुख्ता होता है। इसी से दूसरों को सज़ा सुनाने से नहीं कतराता। अपने को सज़ा सुनाने की ज़रूरत महसूस करते ही आदमी बेचारा सिर्फ़ आदमी रह जाता है···"

वहां से हटकर अविजित श्यामा के कमरे में चला आया। देखा सुधांशु को गोद में लिये शुक्लजी गद्गद् कण्ठ से गीता के श्लोक गा रहे हैं। श्यामा आंखें बंद किये पड़ी है, चेहरे पर मुग्ध शान्ति का भाव है। निष्क्रियता में आनन्द ले पाना हर किसी के बस की बात नहीं है।

जब संगीता गाना सुनाती थी तब भी ऐसा ही सम्मोहित शान्ति का भाव श्यामा के चेहरे पर छाया रहता था। संगीता···आज शाम···जाना ही पड़ेगा।

अनित्य की कहानी चालू थी।

तभी स्वर्णा कमरे में घुसी।

"चाचाजी," उसने कहा।

प्रभा शुभा की देखा-देखी स्वर्णा भी अनित्य को चाचाजी कहती है।

शुरू-शुरू में एक बार 'छोटे साहब' कहकर पुकारा था तो अनित्य ने टोक दिया था, "मौसी मैं छोटा ज़रूर हूं पर साहब किसी हिसाब से नहीं। बेहतर है कि तुम मुझे···

"चाचाजी कह कर बुलाया करो," प्रभा ने जोड़ दिया था। तभी से स्वर्णा उसे चाचाजी कहती है और अनित्य उसे मौसी।

"चाचाजी," अब स्वर्णा ने कहा, "हमको कलकत्ता का एक टिकट लाकर दो।"

"कब का?" अनित्य ने काम का सवाल किया।

"अगले इतवार का।"

"तू कलकत्ते जा रही है?" शुभा ने बाधा दी।

"हां।"

"लौटेगी कब?"

"लौटेगा नहीं।"

"क्या मतलब?" शुभा उठ कर खड़ी हो गई, "तू चली जाएगी?" चकित स्वर में उसने कहा।

'इसमें इतने अचरज की क्या बात है?" प्रभा बोली, जानती तो है लछमन चला गया है तो यह भी···"

"नहीं—नहीं!" शुभा एकदम जा कर स्वर्णा की छाती से लिपट गई।

"तू मत जाना," उसने कहा।

स्वर्णा ने खींच कर उसे और पास समेट लिया। उसकी आंखों से आंसू गिरने लगे।

"सुधांशु का क्या होगा?" शुभा ने कहा।

"उसको खोखी देख लेगा," स्वर्णा ने थरथर करते गले से कहा।

"खोखी? वह कैसे देखेगी?"

''देख लेगा। हम बतला कर जाएगा।"

"और ममी को?"

"तू देखना।"

"मैं? मैं कैसे? नहीं, तू मत जा," शुभा सुबक कर रो दी।

"तू समझती क्यों नहीं, उसे जाना ही है," प्रभा ने कहा।

"एक लड़के का बन्दोबस्त हम कर दिया है, काम सम्भाल लेगा," स्वर्णा ने कहा।

"उससे क्या होगा!"

"वहां पहुंच कर अपना पता भेज देना," प्रभा ने कहा। भावुकता ज़ाहिर न करने की कोशिश ने उसका स्वर रोज़मर्रा से ज्यादा कर्कश बना दिया था।

शुभा ने चौंक कर उसकी तरफ देखा।

"क्या करेगा पता लेकर?" स्वर्णा का स्वर भी कर्कश था।

"कभी घर से भागना पड़ा तो तेरे पास आऊंगी न," प्रभा ने कहा।

"भागेगा क्यों?" स्वर्णा ने डपट कर कहा।

"किसी से प्रेम हो गया तो क्या करूंगी···भागना ही पड़ेगा।"

"चोप ! क्या बोलता है। किससे प्रेम है तुमको ?" स्वर्णा के आंसू सूख गए।

"है नहीं। मैंने कहा, जब होगा।"

"तो घर से भागेगा क्यों ? ठीक आदमी देख कर प्रेम करना और सीधा आकर ममी को बोलना, समझा।"

"और जो वह उड़िया हुआ ?"

"एई, हमसे मज़ाक करता है। उड़िया हो चाहे पंजाबी, प्रेम करेगा तो शादी करना होगा, समझा।"

"ठीक है उसे लेकर तेरे पास आ जाऊंगी। तू 'पास' कर देगी तो ठीक वरना ..."

"तू सचमुच नहीं आएगी ?" शुभा ने फटे गले से कहा।

"हम नहीं," अब तू हमारे घर आना," स्नेह से थरति स्वर में स्वर्णा ने कहा, 'तेरे वास्ते हम खूब सुन्दर लड़का देखकर रखेगा कलकत्ता में···शादी करके तुम उधर रहना···तेरा बेटा होगा न···हम पालेगा···" कहते-कहते स्वर्णा और शुभा, दोनों फूट-फूट कर रो दीं।

"टिकट मंगाना हो तो पैसे दो, मौसी," अनित्य ने ऊंची आवाज़ में कहा।

स्वर्णा रोना रोकने की कोशिश करने लगी।

"अभी गया तो खाने के वक्त तक लौट आऊंगा वरना नाहक तुम्हें लेकर बैठे रहना होगा," अनित्य कहता गया।

स्वर्णा ने अपने पर क़ाबू पाकर धोती के पल्ले में बंधी गांठ से पैसे निकाल लिये। पास आकर रुपये अनित्य के हाथ पर रखने लगी तो एकदम चौंककर बोल उठी, "इतना गन्दा कमीज़ पहन कर जाएगा !"

"गन्दी कहां है ?" अनित्य ने अचरज से कहा, "कल तो पहनी है।"

"धोया ही गन्दा होगा," स्वर्णा ने कहा, "हमको दो। हम धोकर डाल देगा।"

"अब ?"

"हां, उतारो अभी।"

"और टिकट लेने नंगा जाऊं ?"

"नहीं, धूप में बैठो उतनी देर। टिकट कल लाना। दो जल्दी। ओ मां, इतना गन्दा कमीज़ धोकर दिया। पहनने में घिन नहीं आता···"

"कमाल है," अनित्य ने कहा, पर कमीज़ उतार कर उसे दे दी।

स्वर्णा बुड़बुड़ करती हुई उसे लेकर भीतर चली गई।

"सख्त है सख्त !" प्रभा ने कहा।

"स्वर्णा बहुत सफ़ाईपसन्द है," शुभा बोली, "साफ़ बात, साफ़ काम।"

"हां, मिलावट किसी चीज़ में पसन्द नहीं है। पता है चाचाजी, एक बार छाती के दर्द के कारण अस्पताल में भरती होना पड़ा तो क्या हुआ ?"

"क्या ?"

"जनरल वार्ड के भीतर घुसते ही बोली, इतना गन्दा जगह में मानुष रहता कैसे है ? अस्पताल वालों ने कहा, यह जनरल वार्ड है, यहां गरीब आदमी आते हैं, लाट साहब नहीं। स्वर्णा ने फ़ौरन कहा, ग़रीब आदमी को गन्दगी में रहना होगा, यह कौन लाट साहब बोला ? अस्पताल वालो ने नाराज होकर कहा, इतनी नाजुकमिजाज हो तो करवा लो सफ़ाई। बस, स्वर्णा बिस्तर छोड़ झाड़ू-पोछा जमादार से छीन कर चालू हो गई। डांट-डपट, गाली-गलौज, जो जरूरत हुई, करके दो-चार कम बीमार मरीजों को साथ ले लिया और दो घण्टे के अन्दर पूरा वार्ड चमका कर रख दिया। अस्पताल वाले बेहद नाराज हुए। अच्छा, आप बतला सकते हैं, चाचाजी, वे लोग खुश होने के बजाय नाराज क्यों हुए ?" प्रभा ने कहा।

"स्वर्णा ने जो किया, बहुत खतरनाक था। ग़रीब आदमी एक बार अपने माहौल से उचट जाए तो खतरनाक हो उठता है।"

"पिताजी को फ़ोन करके उन्होंने कहा, अपने मरीज को आकर ले जाइए। उसने पूरे वार्ड का डिसीप्लिन खराब कर दिया है। पर इससे पहले कि पिताजी वहां पहुंचते, स्वर्णा खुद आ पहुंची, धमकाकर बोली, फिर जो कभी हमें अस्पताल भेजा तो देखना। हम मरेगा तो साफ़ जगह नहीं तो भूत बन कर भटकेगा। ज़रा सोचिए चाचाजी, काली माई का भूत !"

"मैं सोच रहा हूं, गरीब आदमी की कमीज का क्या होने वाला है ?" अनित्य ने कहा।

"एकदम साफ़ हो जाएगी," शुभा ने कहा।

"आप गए काम से," प्रभा बोली, "इतनी साफ कमीज में कोई दोस्त आपका पहचानने से रहा।"

श्यामा के कमरे से बरामदे में टहलता हुआ अविजित वापिस बैठक में पहुंच गया।

"अरे, ऐसे कैसे बैठे हो ?" चकित स्वर में उसने अनित्य से पूछा।

"कमीज गन्दी थी," अनित्य ने कहा।

"तो दूसरी पहन लो।"

"आपकी अलमारी से ले लूं ?" अनित्य ने पूछा।

उसके 'हां' कहने पर अनित्य उठकर चला गया पर अविजित वहीं ठहरा रहा। शुभा-प्रभा ने उसकी तरफ़ ध्यान नहीं दिया।

आखिर अविजित ने ही पुकार कर कहा, "शुभा···कॉफ़ी पिएगी ?"

"नहीं," उसने अनमने स्वर में कहा।

अविजित फिर भी खड़ा रहा। शुभा का ध्यान उधर नहीं गया।

"आप पिएंगे ? बनवा दूं ?" प्रभा ने कहा।

"पी लेंगे," अविजित ने कहा।

उसके स्वर के विषाद ने प्रभा को छू लिया।

"मिर्च के पकौड़े तलवा लूं ?" तनिक हंस कर उसने कहा, "मेरे खयाल से चाचा जी भी पसन्द करेंगे।"

"पिताजी !" सहसा शुभा फट पड़ी, "स्वर्णा अगले हफ़्ते जा रही है !"

"इतनी जल्दी…"

"आप उसे रोकेंगे नहीं ?" शुभा ने उलाहना देते हुए कहा।

"नहीं," अविजित की तरफ़ से जवाब प्रभा ने दे दिया। खासे हठीले अन्दाज़ में।

दोनों लड़कियों ने एक साथ अविजित की तरफ़ देखा। उसकी समझ में नहीं आया किसकी बात पर मुहर लगाए।

कुछ देर रुके रह कर, उसने अनमने भाव से इतना ही कहा, "अच्छा…रहने दो पकौड़े…कॉफ़ी भी नहीं चाहिए…" और भटकता हुआ श्यामा के कमरे में पहुंच गया।

सुधांशु शुक्ल जी की गोद में सो चुका था। शुक्ल जी अभी भी गीता पाठ कर रहे थे पर फुसफुसाते मद्धिम सुर में। श्यामा की आंखें बन्द थीं—पता नहीं सो रही थी या वैसे ही लेटी थी। इतनी तन्मयता से 'आराम' कर रही है तो इसका मतलब है शाम को शादी में जाने का पक्का इरादा है। एक बार अविजित का मन हुआ ज़ोर से बोल कर या घर के किसी प्राणी को डांट-डपट कर उसके 'आराम' में विघ्न डाल दे। उसकी तबीयत तब ज़रूर खराब हो जाएगी और वह शाम को संगीता का सामना करने से बच जाएगा।

फ़ौरन उसने अपने को फटकार दिया और दबे पांव बरामदे में निकल गया।

फूल मालाओं और रंगीन बल्बों की क़तारों में मढ़े बगीचे के भीतर अविजित घुसा ही था कि अपने को संगीता के सामने पाया।

लाल जरी की लक़दक़ साड़ी के बीच जड़ा एक सफ़ेद चेहरा और उस पर दह-कती दो काली आंखें। कोयला, शोला और राख !

संगीता का रंग तो सांवलेपन पर था, इतना सफ़ेद कैसे हो गया ?

मुर्दों के चेहरे सफ़ेद पड़ जाया करते हैं…

…लाश घर में रखे मुर्दे देखने चलेंगे, अविजित जी, संगीता ने कहा था एक बार; मिट्टी की मूर्तियों की नुमाइश लगती है, बड़ा मज़ा आता है।

वह कांप उठा। पर मुर्दों की आंखें इस तरह जला तो नहीं करतीं।

दो काली गुफ़ाओं के अन्दर जल रहीं दो बेरहम मशालें…कितनी देर लगती है आदमी को जला कर राख कर देने में।

अविजित ने महसूस किया, संगीता की आंखें सिर से पैर तक उसके शरीर पर घूमी हैं और लौट कर उसके चेहरे पर टिक गई है। बदन के तमाम कपड़े तार-तार हो कर गए हैं और वहीं, रंगीन बल्बों की रोशनी के नीचे, वह एकदम नंगा खड़ा है…

गरम सलाखों की तरह संगीता की निगाहें उसकी आंखों में घुसी जा रही हैं···

चारों तरफ़ फैली भीड़ उसका तमाशा देख रही है और वह खुद···धीरे-धीरे, कुछ भी देख पाने के नाकाबिल होता जा रहा है···

उन आंखों से बचने का एक ही उपाय है···फ़ौरन उसे यहां से भाग जाना चाहिए!

झटके से उसने अपने बदन को मोड़ा···

वाक़ई वह भाग खड़ा होता अगर श्यामा के हाथ ने उसके हाथ में जुम्बिश ने लाई होती।

याद आ ही गया, वह तो श्यामा को सहारा दिये खड़ा है, भागेगा कैसे?

सामने कोच पर संगीता अकेली नहीं बैठी। बराबर में सिर पर सेहरा बांधे एक पुरुष भी है। दोनों के गलों में भारी फूल-मालाएं पड़ी हुई हैं। यानी तो···जयमाल पड़ चुकी। उस वक्त की भीड़-भाड़ से श्यामा को बचाए रखने के खयाल से ही तो वे लोग कुछ देरी करके शादी के घर में घुसे हैं।

यह शादी का घर है।

संगीता की शादी हो रही है।

लाल ज़री की साड़ी में लिपटी संगीता दुल्हिन बनी बैठी है।

उसे अपनी आंखें झुका कर रखनी चाहिए। दुल्हिनों के लिए यही क़ायदा है··· इस तरह अविजित के चेहरे पर उन्हें गड़ाये रखना···

"बेचारा!" श्यामा ने कहा।

"क्या?" चौंक कर अविजित ने उसकी तरफ देखा। नहीं, वह उसे नहीं, सामने देख रही है।

"कौन?" अविजित ने पूछा।

"वही। संगीता का पति।"

अब जाकर अविजित ने सेहरा बांधे उस पुरुष को देखा जो संगीता के बगल में बैठा है।

हां, वाक़ई कुरूप है। काला और मोटा, जैसे संगीता ने बतलाया था। कोच पर ढीले बदन को फैला कर बैठा है और छोटी किचमिची आंखों से संगीता को देख रहा है।

"बेचारा वह है या संगीता?" बेसाख्ता उसके मुंह से निकला।

"इतना प्यार नहीं करना चाहिए," श्यामा ने कहा।

अविजित उसे देखता रहा।

"बहुत भयानक होता है," श्यामा ने फिर कहा।

"किसकी बात कह रही हो?"

"उसी की।"

"तुम उसके बारे में क्या जानती हो?"

"उसके चेहरे पर जो दीख रहा है वही कह रही हूं।"

इस बार अविजित ने ग़ौर से देर तक उसे देखा पर एक रूपविहीन चेहरे के अलावा कुछ नहीं दिखा। भारी काले चेहरे पर मोटे-मांसल लाल ओंठ, चौड़ा जबाड़ा, फैली हुई चपटी नाक और छोटी मिचमिची आंखें; इन्हें भेद कर श्यामा उस आदमी के कहां, कैसे पहुंच गई?

"बहुत ही बदसूरत आदमी है," वितृष्णा के साथ अविजित ने कहा।

"हां···वह तो है," श्यामा ने ऐसे कहा जैसे बिल्कुल महत्वहीन बात हो।

फिर बोली, "संगीता को इससे शादी नहीं करनी चाहिए थी।"

"वही तो···"

"बहुत बड़ी क़ीमत अदा करनी पड़ेगी।"

"किसे?"

"उसे, संगीता को।"

"कैसी क़ीमत?"

श्यामा कुछ देर चुप रही; जब बोली तो उसका स्वर भारी था, आंखें भर आई थीं।

"बलिदान लो तो देना भी पड़ता है," उसने कहा।

किसकी बात कर रही है वह? कभी-कभी ऐसी बात कर उठती है श्यामा कि सिर-पैर समझ में नहीं आता और आता है तो···आदमी समझना नहीं चाहता, कम-अज़-कम अविजित।

तभी अनित्य ने आगे आकर श्यामा की दूसरी बांह थाम ली, बोला, "चलो, चल कर कुछ खाएं।"

"अरे," श्यामा मुस्करा दी, बोली, "हम क्या यहां खाने आए हैं?"

"और किसलिए आए हैं? शादी तो उनकी हमारे बग़ैर भी हो सकती है।"

"बधाई तो दे दें।"

अविजित ने देखा, अनित्य श्यामा को सहारा दिये हुए हैं। उसने अपना हाथ उसकी कुहनी के नीचे से निकाल लिया। श्यामा ने और मुस्तैदी से अनित्य के सहारे को सम्भाल लिया।

"चलो," अविजित ने कहा, "इनकी बेसिर-पैर की बातों में बधाई देना ही रह गया।"

पर कह कर वह आगे नहीं बढ़ा। अनित्य और श्यामा को निकल जाने दिया। आज श्यामा के पीछे रहना ही ठीक है।

"बधाई," संगीता के पास पहुंच कर श्यामा ने कहा।

"शुक्रिया," संगीता ने उसका हाथ अपने हाथ में ले कर सहज भाव से कहा, "और आने के लिए और भी शुक्रिया।" फिर पति से परिचय कराती हुई बोली, "ये

श्यामा जी हैं और ये···"

"बधाई, सुरेश जी," बीच ही में श्यामा ने मृदु कण्ठ से कहा।

सुरेश ने नमस्कार में हाथ तो जोड़ दिये पर नज़रें उठाकर उसकी तरफ़ नहीं देखा, पहले की तरह संगीता को ही देखता रहा।

"ये···अनिरुद्ध···याद हैं ?" श्यामा ने अनिरुद्ध की तरफ़ इशारा किया।

संगीता ने चौंक कर अनिरुद्ध को देखा और पहचाना। उसकी आँखों की लपट बुझ गई और वे नीचे झुक गईं।

अविजित ने कुछ आश्वस्त महसूस किया।

अनिरुद्ध और श्यामा एक तरफ़ को खिसक गए। अविजित संगीता के सामने पड़ गया।

"बधाई," झुकी हुई आँखों का फ़ायदा उठा कर अविजित ने जल्दी से कहा और श्यामा के पीछे पलट जाने को तैयार रहा।

झटके से संगीता का मुँह ऊपर उठा। काली गुफाओं के मुँह से पत्थर हट गए। लाल मशालें भभक उठीं।

"आपको भी !" उसने कहा।

घबरा कर अविजित ने सुरेश की तरफ़ देखा। उसके चेहरे पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। आँख उठा कर उसने अविजित की तरफ़ ताका भी नहीं। पर संगीता के चेहरे से हट कर उसकी दृष्टि गोद में पड़े उसके हाथों पर जा टिकी। उसका अपना एक हाथ उठा और कुछ देर संगीता के हाथों के ऊपर फड़फड़ाता रहा पर···उन पर उतरा नहीं···मायूस-सा, क्षण-भर बाद लौट गया···

···अविजित की गदराई हथेलियों में संगीता के दोनों हाथ क़ैद हो गए। अपनी पूरी ताकत लगाकर उसने उन्हें मसल डाला। फिर हाथ पीछे खींचकर पतली कमान-सी तनी उसकी देह को बाजुओं में भींच लिया। अपनी छाती पर उसकी छाती का दबाव महसूस किया। उसकी बढ़ी हुई धड़कन की धमक से पागल हो उठा वह। अपना चेहरा उसने नीचे नहीं झुकाया, उसी का मुँह खींच कर ऊपर उठा लिया। ओंठ उसके अपने आप खुल गए। अपने ओंठों और ज़बान से उसने उन्हें छेद डाला···संगीता ने बाधा नहीं दी··· एक बार भी 'नहीं' कह कर उसे रोका नहीं। उसके मुर्दा चेहरे पर जलती दो आँखें उसे तब तक उकसाती रहीं जब तक उसके शरीर का उद्दाम आवेग···

"चलना नहीं है, भाई साहब ?" अनिरुद्ध ने कहा।

चौंक कर अविजित ने अपने चारों तरफ़ देखा।

संगीता कोच पर बैठी है। अविजित सामने खड़ा है। आस-पास लोगों की भीड़

मंडरा रही है। कुछ लोग भीड़ से कट कर आगे बढ़ते हैं, संगीता को बधाई देते हैं और फिर भीड़ में शामिल हो जाते हैं। इस प्रवाह को अवरुद्ध करता अविजित संगीता के सामने खड़ा है। ख़तरे से ख़ाली दूरी पर।

दस साल बीत चुके···

"हां हां, चलो," लज्जित स्वर में उसने कहा और बधाई देने वालों के लिए जगह छोड़ कर उनके पीछे चल दिया।

दस साल बीत चुके!

संगीता उसकी गोद में नहीं बिछी।

सामने कोच पर सीधी तनी बैठी है। उसकी शादी हो रही है।

अनित्य ने गरम कॉफ़ी का प्याला लाकर उसे पकड़ा दिया उसने देखा, श्यामा को अनित्य ने आरामकुर्सी पर बिठला दिया है, हाथ में चाय का प्याला भी पकड़ा दिया है। वह ठीक-ठाक है। अनित्य उसकी देखभाल कर लेगा। अविजित दूर जा सकता है।

अपना प्याला ले कर वह बगीचे की दूसरी तरफ़ निकल गया।

क्या कर सकता है आदमी, अगर कोई औरत, संगीता जैसी औरत खुद आ कर उसकी गोद में गिर पड़े; उसके शरीर को बांहों में जकड़ ले; वक्ष से सटा ले और···एक बार भी 'नहीं' न कहे!

उसके शरीर का भूखा जानवर···

जानवर, हां, और भूखा···

सहसा उसका मन श्यामा के प्रति क्षोभ से भर उठा।

बादलों से बनी औरत के साथ कोई जानवर कितने दिन भूख दबाए रह सकता है। भूख लगने पर ग्लानि; भूख दबाने पर क्षोभ।

श्यामा का दृढ़ विश्वास था कि मां बनने की तैयारी में व्यस्त औरत शरीर से प्रेयसी नहीं बन सकती···ऐसे समय की तो जानवर भी इज्जत करते हैं, वह अक्सर कहा करती थी। खोखी का जन्म हुआ तो वह बीमार पड़ गई और छह महीने तक बिस्तर पर से नहीं उठी। कम सेवा तो नहीं की अविजित ने···

उन दिनों संगीता डाक्टरी पढ़ रही थी। कोशिश करके अविजित ने उसे मैडिकल कालेज में दाख़िला दिलवा दिया था। उसकी भी कम मदद तो नहीं की उसने। तीसरे-चौथे दिन हॉस्टल से घर ले आता था। श्यामा को उसका गाना सुनना बहुत अच्छा लगता था। उसमें उसका अपना तो कोई स्वार्थ था नहीं। संगीता श्यामा को गाना सुना रही होती तो वह उन्हें छोड़ कर बाहर भी हो आता था। अगर श्यामा संगीता का भार खुद उठा लेती तो अविजित को उससे सम्बन्ध रखने की जरूरत क्या रहती। वह खुशी खुशी उसकी सब चिन्ता श्यामा पर छोड़ देता। पर श्यामा किसी के लिए कुछ करने-लायक़ थी कहां? हमेशा, हर क़िस्म का बोझ, अविजित को ही उठाना पड़ा है। हर

आदमी उसके कन्धों पर अपनी ज़िम्मेवारी फेंक, निश्चिन्त हो रहा है।

संगीता की माँ ! एक बार जो लड़की की सुध ली हो।

और अनिरुद्ध ! संगीता की ज़िम्मेवारी वह भी तो उठा सकता था। उससे शादी कर लेता तो हर मुश्किल आसान हो जाती···

अपने सोच पर अविजित फ़ौरन ही ग्लानि से भर उठा। ज़रूरतमंद होने से ही क्या कोई किसी से शादी कर लेता है। मदद करने के और भी तरीक़े हैं।

आदमी और औरत के बीच आदान-प्रदान का सिर्फ़ वही रास्ता तो नहीं होता।

सच···मैंने संगीता के ज़रूरतमंद होने का फ़ायदा नहीं उठाया। क्या कर सकता है आदमी, अगर कोई औरत, संगीता जैसी औरत खुद पहल करके उसके शरीर के जानवर को उसकी तेज़ भूख की याद दिलवा दे ?

मैं बिल्कुल सच कह रहा हूँ, अनिरुद्ध !

"भाई साहब।"

उसने देखा, अनिरुद्ध सामने खड़ा है !

"भाभी घर जाना चाहती हैं," वह कह रहा है।

अविजित ने जवाब नहीं दिया।

"वे चाहती हैं, संगीता के फेरों पर बैठने से पहले ही उससे विदा ले लें।"

फिर भी अविजित कुर्सी छोड़ कर नहीं उठा।

"भाभी आपको बुला रही हैं," अनिरुद्ध ने फिर कहा।

"क्यों ?"

"संगीता से विदा लेनी है।"

"तो उसमें मैं क्या करूँगा ?" उग्र स्वर में उसने कहा।

अनिरुद्ध कुछ देर चुप रहा, फिर धीमी आवाज़ में बोला, "चलना तो पड़ेगा ही, भाई साहब।"

उसकी तरफ़ देखते ही अविजित ने नज़रें झुका लीं और उसके पीछे चल दिया।

"तुम कहाँ चले गए थे ?" देखते ही श्यामा ने कहा, "कितने लोग मिले, तुम्हें पूछ रहे थे···"

"यहीं तो था···लोग मिलते रहे···"

यह जानता है, एक कोने में जाकर बैठ न गया होता तो जान-पहचान के लोग बराबर उसे घेरे रहते।

जान-पहचान के लोग ! जो हमें जानते हैं पर पहचानते नहीं, जिन्हें पहचान लेने पर शायद हम उन्हें जानना न चाहें। बहुत तसल्लीबख्श होता है ऐसे लोगों का चन्द लम्हों का साथ।

श्यामा को साथ लिये, अपनी तेज़ चाल को ज़बरदस्ती उसके लायक़ सुस्त

बनाए, वह संगीता के पास चला जा रहा है और जान-पहचान के लोग मिल रहे हैं। ऊंचे ओहदों वाले भद्र लोग। लगता है, संगीता के पति की आमद शहर के बड़े लोगों में खूब है, यूंही अविजित के मन में उठा है···

"हलो मिस्टर बंसल !" लोग कहते हैं और, "कैसी हैं आप मिसेज़ बंसल ?"

पहले वाक्य में आह्लाद रहता है, दूसरे में करुणा।

अविजित सिर्फ़ पहले पर ध्यान देता है।

वे लोग संगीता के सामने खड़े हैं और मिसेज़ भण्डारी कह रही हैं, "हलो, मिस्टर बंसल, आज बड़ी देर बाद दीखे आप। आप न हों तो पार्टी का मज़ा खराब हो जाता है···ओह···मिसेज़ बंसल भी हैं आज साथ···आपकी बीमारी के बारे में सुनते रहते हैं···अब ठीक है तबीयत ?"

वे श्यामा की तरफ़ मुड़ गई हैं।

"हां," श्यामा ने पूरी हामी नहीं भरी है।

"सच, आप हैं बहुत खुशकिस्मत," मिसेज़ भण्डारी कह रही हैं।

"खुशकिस्मत ?" श्यामा ने अचरज से उसकी तरफ़ देखा है।

बाक़ी लोग भी चौकन्ने हो गए हैं।

"हां भई, कितने आदमी हैं जो मिस्टर बंसल की तरह बीमार बीवी की देखभाल करते रह सकते हैं।"

"वह तो है," श्यामा ने छोटी-सी आवाज़ में कहा है।

"मज़े हैं आपके। आराम से बिस्तर पर पड़े-पड़े सेवा कराते रहो। यहां तो एक दिन को लेट जाएं तो···"

"तो क्या ?" संगीता ने बात काट दी, "आप मौक़ा तो दीजिए अपने पतिदेव को। चलिए, कल ही आपको अस्पताल में भरती कर लेती हूं।"

मिसेज़ भण्डारी हंस दीं।

"हंसने की बात नहीं है, मिसेज़ भण्डारी, "संगीता ने कहा, "मुझे यक़ीन है आपको कोई घातक बीमारी ज़रूर है। कल ही अस्पताल में भरती हो जाइए, चैक-अप हो जाएगा।"

"नहीं···मैं···"

"नहीं क्यों ? खुशकिस्मत होने का ठेका अकेले मिसेज़ बंसल ने तो नहीं ले रखा।"

श्यामा ने एक कृतज्ञ दृष्टि संगीता पर डाली पर उसकी निगाह अविजित पर टिकी हुई थी।

"आप कभी लखनऊ गई हैं, मिसेज़ भण्डारी ?" अनित्य ने पूछा।

"जी ?···नहीं तो···"

"तभी !" अनित्य ने ज़ोर दे कर कहा।

"जी ?"

"···नहीं जानतीं कि बरसों से पूरा शहर लखनऊ भाईसाहब की किस्मत पर रश्क करता आ रहा है, क्यों भाई साहब ?" अनित्य ने तौल कर सवाल अविजित की तरफ़ फेंका।

"खुशकिस्मत तो मैं हूं, मिसेज भण्डारी," यंत्रचालित-सा अविजित के मुंह से निकला।

यह आपको बहुत पहले कहना चाहिए था, अनित्य ने कहा नहीं तो क्या हुआ।

श्यामा की आंखों में आंसू छलछला आए।

"चलूंगी अब," उसने संगीता से कहा।

संगीता ने उसके हाथ एक बार फिर अपने हाथों में लेकर भींच लिये और स्नेहिल स्वर में बोली, "मुझे भूल मत जाइएगा, श्यामाजी। किसी दिन अचानक गाना सुनाने आ पहुंचूं तो सुनेंगी न ?"

"ज़रूर," रुंधे कण्ठ से श्यामा ने कहा।

फिर सहसा, अपना मुंह क़रीब-क़रीब उसके मुंह से सटा कर, गहरी आस्था के साथ कह उठी, "संगीता, सुरेन जी का खयाल रखना।"

अविजित बुरी तरह कुण्ठित हो गया। क्या कहना चाहिए, क्या नहीं, सोच कर तो बोलती ही नहीं यह श्यामा। बस, जो मन में आया, कह डाला।

"चलो अब," रूखे स्वर में उसने कहा।

संगीता ने कुछ नहीं कहा। चुपचाप बैठी सामने ताकती रही।

उसके चेहरे पर अजीब-सा भय तैर गया।

१२

श्यामा से रहा नहीं गया।

गाड़ी में घर लौटते हुए एक बार फिर बोल उठी, "संगीता ने यह ब्याह करके ठीक नहीं किया।"

अविजित चुप रहा।

"बेचारी के मां नहीं है, बाप नहीं है···कोई राय देने वाला होता···"

बनाए, वह संगीता के पास चला जा रहा है और जान-पहचान के लोग मिल रहे हैं। ऊंचे ओहदों वाले भद्र लोग। लगता है, संगीता के पति की आमद शहर के बड़े लोगों में खूब है, यूंही अविजित के मन में उठा है···

"हलो मिस्टर बंसल !" लोग कहते हैं और, "कैसी हैं आप मिसेज बंसल ?"

पहले वाक्य में आह्लाद रहता है, दूसरे में करुणा।

अविजित सिर्फ़ पहले पर ध्यान देता है।

वे लोग संगीता के सामने खड़े हैं और मिसेज़ भण्डारी कह रही हैं, "हलो, मिस्टर बंसल, आज बड़ी देर बाद दीखे आप। आप न हों तो पार्टी का मज़ा खराब हो जाता है···ओह···मिसेज़ बंसल भी हैं आज साथ···आपकी बीमारी के बारे में सुनते रहते हैं···अब ठीक है तबीयत ?"

वे श्यामा की तरफ़ मुड़ गई हैं।

"हां," श्यामा ने पूरी हामी नहीं भरी है।

"सच, आप हैं बहुत खुशकिस्मत," मिसेज़ भण्डारी कह रही हैं।

"खुशकिस्मत ?" श्यामा ने अचरज से उसकी तरफ़ देखा है।

बाक़ी लोग भी चौकन्ने हो गए हैं।

"हां भई, कितने आदमी हैं जो मिस्टर बंसल की तरह बीमार बीवी की देखभाल करते रह सकते हैं।"

"वह तो है," श्यामा ने छोटी-सी आवाज़ में कहा है।

"मज़े हैं आपके। आराम से बिस्तर पर पड़े-पड़े सेवा कराते रहो। यहां तो एक दिन को लेट जाएं तो···"

"तो क्या ?" संगीता ने बात काट दी, "आप मौक़ा तो दीजिए अपने पतिदेव को। चलिए, कल ही आपको अस्पताल में भरती कर लेती हूं।"

मिसेज़ भण्डारी हंस दीं।

"हंसने की बात नहीं है, मिसेज़ भण्डारी, "संगीता ने कहा, "मुझे यक़ीन है आपको कोई घातक बीमारी ज़रूर है। कल ही अस्पताल में भरती हो जाइए, चैक-अप हो जाएगा।"

"नहीं···मैं···"

"नहीं क्यों ? खुशकिस्मत होने का ठेका अकेले मिसेज़ बंसल ने तो नहीं ले रखा।"

श्यामा ने एक कृतज्ञ दृष्टि संगीता पर डाली पर उसकी निगाह अविजित पर टिकी हुई थी।

"आप कभी लखनऊ गई हैं, मिसेज़ भण्डारी ?" अनित्य ने पूछा।

"जी ?···नहीं तो···"

"कभी !" अनित्य ने ज़ोर दे कर कहा।

"जी ?"

"…नहीं जानतीं कि बरसों में पूरा शहर लखनऊ भाईसाहब की किस्मत पर रश्क करता आ रहा है, क्यों भाई साहब?" अनिरुद्ध ने तीर कर सवाल अविजित की तरफ़ फेंका।

"खुशकिस्मत तो मैं हूं, मिसेज भण्डारी," यंत्रचालित-सा अविजित के मुंह से निकला।

यह आपको बहुत पहले कहना चाहिए था, अनिरुद्ध ने कहा नहीं तो क्या हुआ।

श्यामा की आंखों में आंसू छलछला आए।

"चलूंगी अब," उसने संगीता से कहा।

संगीता ने उसके हाथ एक बार फिर अपने हाथों में लेकर भींच लिये और स्नेहिल स्वर में बोली, "मुझे भूल मत जाइएगा, श्यामाजी। किसी दिन अचानक गाना सुनाने आ पहुंचूं तो सुनेंगी न?"

"ज़रूर," रुंधे कण्ठ से श्यामा ने कहा।

फिर सहसा, अपना मुंह क़रीब-क़रीब उसके मुंह से सटा कर, गहरी आस्था के साथ कह उठी, "संगीता, सुरेन जी का खयाल रखना।"

अविजित बुरी तरह कुंठित हो गया। क्या कहना चाहिए, क्या नहीं, सोच कर तो बोलती ही नहीं यह श्यामा। बस, जो मन में आया, कह डाला।

"चलो अब," रूखे स्वर में उसने कहा।

संगीता ने कुछ नहीं कहा। चुपचाप बैठी सामने ताकती रही।

उसके चेहरे पर अजीब-सा भय तैर गया।

१२

श्यामा से रहा नहीं गया।

गाड़ी में घर लौटते हुए एक बार फिर बोल उठी, "संगीता ने यह ब्याह करके ठीक नहीं किया।"

अविजित चुप रहा।

"बेचारी के मां नहीं है, बाप नहीं है…कोई राय देने वाला होता…"

"तुम दे देतीं, "अविजित ने कटु स्वर में कहा कि अनित्य पिछली सीट से बोल पड़ा, "मां के लिए परेशान मत हो, भाभी। रहतीं तो इस ब्याह से खुश ही होतीं। लड़का मालदार और इज्जतदार तो हो पर दुनियादार न हो, इससे बढ़िया रिश्ता कहां मिलेगा?"

"सुरेश जी के लिए ही तो दुख है मुझे," श्यामा ने धीमे से कहा, फिर एकाएक उत्तेजित होकर बोली, "पंडित शर्मा ने उसकी मां के साथ अन्याय किया, इसी से क्या किसी तीसरे आदमी को सजा दी जाएगी!"

अविजित और अनित्य अवाक् रह गए।

कुछ ठहर कर अनित्य ने मासूमियत से पूछा, "कौन पंडित शर्मा?"

"रहने दो," श्यामा बोली, "मैं सब जानती हूं।"

"हां, महान् नेता थे," अनित्य ने कहा।

"थे। तो?"

"सुना है, उन्हें जेल में धीरे-धीरे जहर दिया गया था। छूटने के बाद बेचारे ज्यादा दिन जिये नहीं। शहीद हो गए।"

"तो तुम संगीता की मां को क्या करने उनके पास ले गए थे?" श्यामा ने कहा।

"फिर कहां ले जाता? तुम पहले कहतीं तो तुम्हारे पास छोड़ देता।"

"मुझसे तुमने पूछा कब? संगीता और उसकी मां दोनों मेरे पास रह सकती थीं।"

"हर ऐरे-ग़ैरे को इस तरह घर में नहीं रखा जा सकता," कर्कश स्वर में अविजित बोल उठा और एक्सलरेटर पर उसके पांव का दबाव बढ़ गया।

श्यामा चुप होकर उसके कठोर चेहरे को देखने लगी।

गाड़ी की रफ़्तार बढ़ती चली गई...

अचानक श्यामा चीख पड़ी, "इतनी तेज गाड़ी मत चलाओ। मेरा दिल घबराता है!"

'सॉरी' कह कर अविजित ने गाड़ी धीमी कर ली और कोशिश करके मुस्करा भी दिया। कोमल स्वर में उसने पूछा, "थकी तो नहीं?"

"थक तो गई। बहुत हो गया आज," श्यामा ने फ़ौरन कहा और आंखें बन्द कर के निढाल-सी सीट पर लुढ़क गई।

गाड़ी के अन्दर चुप्पी छा गई।

कितनी खौफ़नाक होती है यह चुप्पियां।

पल-भर में आदमी दस-बीस बरस का सफ़र तय कर लेता है। अनचाहे।

अविजित को महसूस हो रहा था, अनिरुद्ध की आंखें उसकी पीठ में गड़ती चली जा रही हैं। उसके फेफड़ों को भेद कर उन दृश्यों को आंखों के सामने खोल रही हैं जिन्हें देखने से वह हमेशा कतराता रहा है।

"पंडित पद्मदत्त शर्मा तो खाला को पहचान नहीं पाए," अनिरुद्ध ने मेरठ से लिखा था।

दस बरस पहले…

"शर्मा जी नहीं पहचान पाए," अनिरुद्ध ने लिखा था, "पर उनका नौकर रामू जरूर पहचान गया। कोठी के फाटक से बाहर निकले ही थे कि उसने आकर खाला का दामन थाम लिया। कहने लगा, उसके साथ चली चलें, उनके रहने का इन्तजाम हो जाएगा। शहर की साफ़-सुथरी बस्तियों से हटकर पंडित जी की एक और कोठी है जिसके पिछवाड़े पांच-छह छोटी-छोटी कोठरियां बनी हैं। एक में रामू रहता है, बराबर वाली खाली पड़ी है। खाला उसमें मजे से रहें, रामू सब देख लेगा। उसने इस क़दर आरजू-मिन्नत की कि खाला राजी हो गईं। उनका कहना है कि मालिक की रजामंदी के बग़ैर नौकर उन्हें नहीं पहचान सकता। बात मुझे भी जंच गई और मैं उन्हें वहां छोड़ कर लखनऊ चला आया हूं।"

'दो-तीन दिन जो वहां रहा तो देखा कि रामू खाने-पीने का सामान जुटा देता है…खाला ने कहा, भगवान खुद नहीं देते किसी के हाथ से दिलवा देते हैं। उन्हें तो यहां तक इत्मीनान है कि पंडित शर्मा उन्हें अपने वसीयतनामे के भरोसे न छोड़ कर, पहले ही, लड़कों की चौकीदारी से बचा कर एक मोटी रक़म भिजवा देंगे।" लखनऊ पहुंच कर अनिरुद्ध ने लिखा था।

इससे पहले कि शर्मा जी कुछ करते उनका इन्तक़ाल हो गया। सुना गया था कि ब्रिटिश सरकार ने जो कोर-कसर छोड़ी थी, लड़कों ने पूरी कर दी और जेल से रिहा होकर घर आने के एक महीने के अन्दर वे चल बसे।

"शर्मा जी के बड़े लड़के हरिदत्त शर्मा बहुत-ही गुस्सैल आदमी मशहूर हैं," अनिरुद्ध ने लिखा था, "सुनते हैं, मोटर गाड़ी इतनी रफ़्तार से चलाते हैं कि उनके डर से बाज़ार की तंग-से-तंग गली भी चौड़ी सड़क बन जाती है।"

…शर्मा जी के बारे में श्यामा कितना जानती है…कैसे जानती है…कभी ठीक से पता नहीं चल पाता…

शर्मा जी के मरने के बाद खाला के सिर फ़ितूर चढ़ गया···रामू ने गोपनीय खबर जो ला दी कि उनकी वसीयत में बेटी का नाम है···बस वह शहर-भर में उसका बखान करती घूमने लगीं। जैसे शहर की जनता आवाज़ उठा कर उनका हक़ उन्हें दिलवा देती!

संगीता ने कई बार उन्हें रोकने की कोशिश की पर वे बाज़ न आईं। वैसे शायद रामू के पास शर्मा जी थोड़ा-बहुत पैसा छोड़ गए थे क्योंकि छह महीने तक संगीता की मां की गुज़र-बसर होती रही।

फिर···अनित्य की चिट्ठी मेरठ से आई थी।

"कल रामू की चिट्ठी से पता चला कि बेग़मपुल पार करते हुए खाला मोटर गाड़ी से टकरा गईं। मैं मेरठ पहुंच गया हूं। हालत उनकी खराब है। आप संगीता को लेकर चले आइए, खाला के बचने की उम्मीद नहीं है···मोटर गाड़ी किसकी थी इसका अन्दाज़ लगाना जितना आसान है, साबित करना उतना ही मुश्किल···"

संगीता को लेकर अविजित मोटर गाड़ी से मेरठ चल दिया था। दुर्घटना की खबर पाकर संगीता एकदम पगला गई थी। पहली बार अविजित की समझ में आया था कि अपनी मां का पूरा इतिहास जानते हुए भी लड़की को उस पर कितना मोह है। पंडित शर्मा से ताल्लुक़ात को वह बुरी नज़र से नहीं, इज़्ज़त से देखती है। कितने लोग हैं जो इतना गहरा तर्कहीन प्यार कर सकते हैं, एक दिन उसने कहा था···नहीं, उसने नहीं, वह तो श्यामा ने कहा था···नहीं, श्यामा ने तो संगीता के लिए कहा था, 'हे भगवान, प्यार करने की कितनी ताक़त है इस लड़की में।' क्यों कहा था···कब कहा था···याद नहीं आ रहा···

"मां को बहुत चोट आई है, अविजित जी?" रास्ते में संगीता ने पूछा था।

"हां, आई तो है," कोमल स्वर में उसने कहा था।

संगीता ने अपनी गीली काली आंखें उसके चेहरे पर टिका दी थीं। उस दिन व्यंग्य, उपहास, आहत अहम्, कुछ नहीं था उनमें।

अविजित देखता रह गया था। व्यंग्य तो उनकी स्थायी प्रकृति है।

अविजित फ़ीस के रुपए उसके हाथ पर रखता···

"शुक्रिया," वह कहती।

"शुक्रिया की क्या बात है। तुम डाक्टर बनोगी तो मुझे तुमसे कम खुशी नहीं होगी," वह कहता।

उसकी आंखें भक से जल उठतीं···रहने दीजिए अपनी उदारता, डाक्टर बनते ही आपका कर्जा उतार दूंगी, आंखें कहतीं और मुड़ जातीं।

जबान उसकी फिर कहती, "शुक्रिया।"

इससे तो साफ़-साफ़ कह दे जो मन में है। अविजित तिलमिला कर रह जाता।

एक दिन तो कह भी डाला था।

"अविजित जी," उसने कहा था, "एम. बी. बी. एस. की डिग्री मिल जाएगी तो सब पैसा धीरे-धीरे करके लौटा दूंगी।"

"इससे तो अच्छा रहेगा," अविजित ने कहा था, "तुम किसी और जरूरतमंद की मदद कर देना।"

"जरूरतमंद! मदद! नहीं, अविजित जी, बड़े लोगों का यह शौक़ मेरे बस का रोग नहीं है," संगीता ने तल्खी से कहा था।

अजीब लड़की है, अविजित सोचता, मदद मांगेगी भी और शालीनता से लेगी भी नहीं।

अनिरुद्ध ने सुझाव दिया था कि संगीता के नाम बैंक में रुपए जमा कर दिये जाएं, जरूरत पड़ने पर हर महीने वह निकाल लिया करे। पर अविजित नहीं माना था। इस तरह···दिल्ली जैसे शहर में···कम-उम्र लड़की को छोड़ देना मुनासिब जो नहीं था।

उससे सम्पर्क रख कर अविजित उसी का भला करना चाहता था पर वह लड़की···

अविजित कहता, घर चलो, तुम्हें श्यामा याद कर रही है, तो कहती, चलिये पर आंखें उठतीं और वार कर जातीं—साफ़ क्यों नहीं कहते मुजरा करने चलो। पर बीमार श्यामा के पास आते ही संगीता एकदम बदल जाती। श्यामा उन दिनों वाक़ई बहुत बीमार थी···सोमी का जन्म हो कर चुका था···

चहक कर संगीता उससे कहती, अभी पांच मिनट में तबीयत ठीक करती हूं आपकी···अच्छा बतलाइए मैं क़ाबिल डाक्टर बनूंगी या नहीं···आप सर्टिफ़िकेट दे दें तो समझिये मैं फ़र्स्ट डिवीजन में पास···अच्छा, श्यामा जी, आप नहीं सोचतीं हर नर्स-डाक्टर के लिए गाना सीखना जरूरी होना चाहिए···सच कहिए, मेरा गाना सुनकर तबीयत हल्की हुई कि नहीं···

उसका ऐसा रूप देखने को मिलता तो अविजित मुग्ध रह जाता। इतनी मासूम भी लग सकती है यह लड़की!

कभी-कभी···पता नहीं कब और कैसे वे क्षण उभर आते थे··· अविजित देखता, संगीता मुग्ध भाव से उसी को देख रही है···

एक दिन पूछ बैठा था, "क्या है, क्या देख रही हो?"

लजा कर उसने मृदु कण्ठ से कहा था, "आपकी शक्ल शर्मा जी से बहुत मिलती है। एक चित्र है उनका मेरे पास, देखेंगे?"

चित्र दिखलाते हुए वह एकदम नन्हीं-प्यारी-सी बच्ची दीख रही थी।

अविजित हंस पड़ा था।

स्नेह से कहा था उसने, "मेरी कहां, तुम्हारी मिलती है।"

फ़ौरन संगीता का व्यंग्य सान चढ़ गया था।

"लावारिसों की शक्लें किसी से नहीं मिला करतीं, अविजित जी," उसने कहा था।

अविजित समझ नहीं पाता था वह आखिर चाहती क्या है।

श्यामा उसके गाने की तारीफ़ करती तो खूब खुश होकर कहती, "अपनी मां से सीखा है मैंने। वे मुझसे भी अच्छा गाती हैं।"

अविजित तारीफ़ करता तो कभी खुश होती तो कभी तड़ से कह डालती, "बड़े लोगों को खुश करने लायक़ एक ही तो हुनर है हमारे पास।"

कभी देखती तो लगता, प्रभा या शुभा की तरह निर्मल दृष्टि है, यह लड़की बस थोड़ा-सा स्नेह चाहती है। कभी देखती तो लगता इस लड़की ने सिर्फ़ नंगे आदमी देखे हैं, इसके सामने किसी की कोई मान-मर्यादा नहीं है।

फिर भी···शिद्दत के साथ अविजित उन लम्हों का इन्तजार करता जब उन आंखों से व्यंग्य का धुआं छंट जाएगा और मुग्ध परिचय का दीया जल उठेगा···

उस दिन···अविजित ने देखा···उसकी आंखों में न व्यंग्य है, न उपहास और न आहत अहम् की घुटन। इतना गहरा भय उन्हें मथ रहा है कि अविजित से भी बर्दाश्त नहीं हो रहा।

मन की करुणा और सहानुभूति को अभिव्यक्ति देने के लिए सांत्वना के शब्द उसे बहुत कमजोर लगे थे। हाथ फैलाकर उसने उसका कन्धा थपथपा दिया था और उसे अपने पास आ जाने दिया था। उसका हाथ वापिस 'स्टीयरिंग व्हील' पर चला गया था। पर संगीता पास ही बनी रही थी।

मेरठ अस्पताल के अहाते में जाकर गाड़ी खड़ी हुई थी तो डरी-सहमी संगीता को अनायास ही वह हाथ का सहारा दे उठा था। संगीता ने उसका हाथ कस कर पकड़ लिया था और 'इन्टेन्सिव केयर वार्ड' में मां के बिस्तर के पास पहुंच कर भी नहीं छोड़ा था।

वार्ड के बाहर बेंच पर अनित्य बैठा था। उसे देखकर सहज प्रतिक्रियास्वरूप अविजित ने हाथ छुड़ा लेना चाहा था पर संगीता ने पकड़ ढीली करने के बजाय और सख्त कर ली थी।

अनिरुध ने तो सैर उस तरफ़ देखा तक नहीं था।

संगीता की मां बेहोश पड़ी थी।

"कोमा में है," डाक्टर ने सपाट स्वर में कहा था।

अविजित का हाथ जेब में गया था और कई नोट थामे बाहर आ गया था।

"जो कुछ सम्भव हो, कर देखिए डाक्टर साहब," उसने कहा था।

डाक्टर ने सिर हिला दिया था।

"ऐसा कुछ नहीं है," उसने कहा था, "जो पैसों से सम्भव बनाया जा सके। दुआ कीजिए, एक बार कोमा से बाहर आ जाएं तब शायद···दवा काम कर जाए।"

रात में अस्पताल में रहने की अनुमति किसी को नहीं मिली थी। फिर भी अनिरुध वहीं रह गया था। वार्ड के आगे काफ़ी बड़ा खुला अहाता था।

"इतनी आरामदेह जगह मेरे लिए मेरठ में और कहां मिलेगी?" उसने कहा था। पर संगीता को वहां छोड़ने की कोई तुक नहीं थी क्योंकि भीतर उसे जाने दिया नहीं जाता।

अविजित उसे लेकर उसकी मां के घर चल दिया था।

उसका पक्का इरादा था कि संगीता को वहां छोड़कर वह ख़ुद अपनी सौतेली मां के घर जा टिकेगा। अनिरुध को जो आपत्ति हो, उसे वहां रहने में कोई दिक़्क़त नहीं थी।

पर···

"चलूं?" उसने कहा ही था कि कमरे की बत्ती जलाती हुई संगीता एकदम मुड़ी और आकर उसके गले में झूल गई।

"मां बचेंगी नहीं," उसने सुबक कर कहा।

अविजित ने देखा, वह उसकी बाहों में जकड़ी उसकी छाती से चिपकी हुई है।

उसके शरीर में आग लग गई।

फिर भी उसने कहा, "धीरज रखो," और कोशिश की कि उसे अपने से अलग कर दे।

संगीता ही ज़ोर करके उससे चिपटी रही।

उसे बाहों में थामे-थामे अविजित कुर्सी पर बैठ गया।

वह उसकी गोद में बिछ गई।

छाती से हट कर उसके उरोजों का स्पर्श घुटनों पर आ गया।

"अविजित जी, प्लीज़, मुझे अकेला छोड़ कर मत जाइए," उसने कहा।

बेवकूफ़ लड़की!

असहाय अविजित!

उसके भय-ग्रसित शरीर को उसने इस तरह ऊपर खींच लिया कि चुम्बन लेने के लिए झुकना नहीं पड़ा।

उसे ठीक से याद नहीं···शायद उसके ओठों की कड़ी गिरफ़्त में आने पर संगीता

चौंक उठी थी और उसे परे धकेलने की कोशिश भी की थी उसने, पर···

···बहुत देर हो चुकी थी।

अविजित का आलिंगन अब छटपटाने तक की छूट नहीं दे रहा था।

आंख खुलने पर पल भर भी वहां टिके रहना असम्भव हो गया था। अविजित भाग खड़ा हुआ था। पर भाग कर जाता कहां···जाने क्यों क़दम अस्पताल की तरफ़ बढ़ गए थे। अनित्य था वहां। शायद मन में लालच था कन्फ़ेशन का। बची-खुची रात अस्पताल के अहाते में बीत गई थी। भरपूर एकान्त में अनित्य साथ था पर कन्फ़ेशन हो नहीं पाया था। दिन चढ़ने पर अविजित फिर भाग खड़ा हुआ था और शाम घिरने पर क़दम दुबारा अस्पताल लौट आए थे···

पता चला था, दोपहर बाद संगीता की मां की मृत्यु हो गई।

मन में आया था, एकदम सीधा दिल्ली भाग जाए।

अनित्य है न, पहुंचा देगा संगीता को।

पर—क़दम फिर धोखा दे गए···

एक चाहत थी···उसी कोठरी में पहुंचा दिया उसने, जहां रात···

छोटी-सी कोठरी के अनुपात में ही लोग लाश के पास जमा थे; संगीता, अनित्य और शायद रामू का परिवार।

संगीता ने उसे देखा···लस्त-पस्त-सी उठी और पागलों की तरह भाग कर उस से आ लिपटी।

"मां गई। मां गई।" सुबक-सुबक कर वह कहती रही।

सांत्वना देने को उसके हाथ नहीं उठे पर शरीर में वही चाहत ज़ोर मार गई।

अनित्य ने सिर्फ़ एक बार उसकी तरफ़ देखा···देर तक।

अविजित को लगा, कन्फ़ेशन हो गया।

संगीता को अपने से अलग करके उसने अनित्य से कहा, "तुम भी मेरे साथ दिल्ली चलो।"

अनित्य चला आया था पर उससे क्या होना था···

अविजित संगीता के पास हॉस्टल जा पहुंचा था।

"मैं तुम्हारा क़सूरवार हूं, संगीता," उसने कहा था, "क्या करने से प्रतिकार होगा, समझ में नहीं आ रहा···"

संगीता ने उसे बात पूरी नहीं करने दी थी। आ कर उसकी छाती से लग गई

थी और बोली थी, "मैं आपसे प्यार करती हूं, अविजित जी।"

अविजित का सर्वांग कांप उठा था; देह का जानवर भूख से बिलबिला गया था। मन हुआ था, वहीं हॉस्टल के कॉमन-रूम में, बाहों से दबोच कर उसका अस्तित्व मिटा डाले। किसी निरापद स्थान पर पहुंचने तक अपने पर क़ाबू रखना मुश्किल हो गया था···

संगीता अकेली है, निस्सहाय है, मां की मृत्यु से स्तब्ध है, अविजित को याद रखना चाहिए था। ऐसा नहीं है कि उसे खयाल आया नहीं···करुणा की उसमें कमी नहीं है···

संगीता की जगह श्यामा होती तो···ऐसे ही भय और अकेलेपन से टूट कर उसकी गोद में बिखर गई होती···दुलार-पुचकार कर वह उसे बिस्तर पर लिटा देता···उसके पास बैठ कर उसके बाल सहलाता रहता···बस···

पर संगीता···उसकी देह का वह दुर्दमनीय आकर्षण! शालीनता, अनुग्रह, करुणा और मानवीयता की धज्जियां उड़ाता वह सम्मोहन, जो हर इन्सान की तरह उसके भीतर मौजूद जानवर को जा झकझोरता था···

उसे प्यार करके उठता तो देह की तुष्टि को नकारता आत्म-ग्लानि का भाव उसे छेद डालता। संगीता के शब्द सुनता—मैं आपको प्यार करती हूं, अविजित जी। महज़ संतुष्ट होता नहीं कि गहरी आत्म-भर्त्सना उसे परे धकेल फुंकार उठती।

एक दिन भी तो ग्लानि से छुटकारा नहीं मिला···एक दिन नहीं···फिर भी तीन साल बीत गये।

बीच-बीच में श्यामा कह उठती, संगीता नहीं आई बहुत दिनों से। कुछ दिन वह टालमटोल करता रहता, फिर उसे लेने पहुंच जाता। वह आती···श्यामा से बातें करती···गाना सुनाती···और अविजित न श्यामा से आंख मिला पाता, न संगीता से! उफ़, कितना बीभत्स था! संगीता की आंखों में कौंधता उपहास, अविजित के मन में बुलबुलाता डर! फिर भी दिन गुज़रते गए थे···आत्म-ग्लानि की भी आदत पड़ जाती है।

आखिर एक दिन संगीता कह उठी, "मुझसे ब्याह करेंगे, अविजित जी?"

अविजित को धुरधुरी आ गई।

"मैं शादीशुदा हूं," उसने कहा।

"पर उन्हें तो आप प्यार नहीं करते।"

"किसने कहा, नहीं करता?"

"मैं कह रही हूं। अपनी आश्रिता को ले जा कर गाना सुनवा देने से ही क्या प्यार का इज़हार हो जाता है?"

"क्या मतलब ? श्यामा को मैंने कभी किसी चीज़ की कमी नहीं होने दी।"

"उन्हें अगर मेरे बारे में पता चले ?"

"क्या ?" अविजित डर गया, "तुमने उनसे कुछ कहा है ?"

"नहीं, पर अगर कोई और कहे ?"

"कौन कहेगा ? कौन जानता है ?"

"मैं जानती हूं।"

"तो ?"

"उन्हें पता चलेगा तो क्या होगा ?"

"तुम···तुम मुझे ब्लैकमेल कर रही हो !"

संगीता उठ कर खड़ी हो गई।

आंखों से चिनगारियां फूट निकलीं। क्रोध, मोहभंग, उपहास और अपमान बोध के खिंचाव से चेहरे में दरारें पड़ गईं। नक़्श विकृत हो उठे।

"अगर करूं तो ?" उसने कहा।

अविजित के सिर पागलपन सवार हो गया। झपट कर उसने उसकी गरदन दबोच ली।

"मैं तुम्हें जान से मार दूंगा," वह चीख उठा।

"ज़रूर," संगीता ने घरघर करते गले से कहा। आंखों से चिनगारियां फूटती रहीं।

अविजित का पंजा उसकी गरदन पर कस गया।

"श्यामा से एक लफ़्ज भी कहा तो···" वह गुर्राया।

संगीता के चेहरे पर तिरस्कार की इतनी तीखी चमक कौंध गई कि अविजित की आंखें चुंधिया गईं। हाथ कांप गए।

"बेवकूफ़ आदमी !" हाथों का कसाव ढीला होते ही संगीता ने कहा, "श्यामा को दुख देने को तुम काफ़ी नहीं हो कि मैं तुम्हारा हाथ बंटाने जाऊंगी।"

अविजित तड़प उठा।

गरदन पर से हाथ फिसल चुके थे तो क्या हुआ। धक्का दे कर उसने संगीता को फ़र्श पर गिरा दिया और·· मारने के और भी तरीक़े हैं।

"तुम मेरे जीवन का अभिशाप हो ! मैं तुमसे नफ़रत करता हूं ! तुम्हारे पास आने के लिए खुद से नफ़रत करता हूं !" वह कहता रहा था। प्यार की चरम स्थिति में भी यही कहा था उसने—मैं तुमसे नफ़रत करता हूं !

स्टीयरिंग व्हील पर से अविजित के हाथ फिसल गए।

घबरा कर उसने उन्हें परखा। इतनी लिसलिसाहट क्यों ? खून ? नहीं, हथेलियां

पसीने से सराबोर हैं।

उस दिन भी···अगर संगीता का विकृत चेहरा देख, हथेलियां पसीने से पसीज कर उसकी गरदन पर से फिसल न गई होतीं तो वह ज़रूर उसका खून कर देता।

वही तो किया है उसने। मारने के और भी तरीके हैं!

हाथों के हिल जाने से गाड़ी ने धचका खाया···

चौंक कर श्यामा हल्के से कराही और बुदबुदायी, "घर आया नहीं अब तक?"

अविजित ने धक्के को कम कर पकड़ लिया पर हाथ फिर फिसल गए। गाड़ी ने झटका दिया। श्यामा कराह उठी।

हाथों का पसीना पोंछ डालने को वह बेताब हो गया।

आदत के सख्त खिलाफ़ उसने उन्हें पैंट से ही रगड़ डाला।

जेब से रूमाल निकाला तो देर तक चश्मा साफ़ करता रहा···

संगीता फिर नहीं मिली थी···

फ़ीस ले कर गया तो पता चला कि उसने हॉस्टल का कमरा छोड़ दिया है। फिर सुना वह अस्पताल के एक डाक्टर के घर रह कर उसके विकलांग बच्चे की देखभाल कर रही है। फ़ीस के लायक़ पैसा हो जाता होगा क्योंकि उसकी जमा की हुई फ़ीस बैंक द्वारा उसके पास लौट आई थी। मिलने की बहुत कोशिश की थी उसने; कालेज में, उस डाक्टर के घर पर···सफल नहीं हुआ। साल पूरा होते ही संगीता ने शहर छोड़ दिया था और तीन-चार साल तक उसका कुछ पता नहीं चला था···

चलता तो···

संगीता उसे दिखलाई पड़ जाती तो···बच कर रह पाती?

बरसों उसका शरीर खुद को खाता रहा था···श्यामा पर उसका अनुग्रह बढ़ता गया था···वह अपने को काम, और काम में होम करता गया था। काम नहीं पैसा, अनित्य कहता है। हां, पैसा। पैसा कमाने में एक नशा है, सम्भोग से भी गहरा। पैसा, पद, इज्ज़त, नाम, पैसा। एक पूरा चक्र। अहम् की तुष्टि, देह की थकन, सफल होने का नशा···कुछ कम तो नहीं।

फिर संगीता अगर सामने पड़ गई तो···

अपने शरीर को वश में करने में बरसों लग गए···

फिर···एक दिन···कुछ करने की ज़रूरत नहीं रही···छोटे बच्चे की तरह शरीर पूर्ण-परितुष्ट, आंखें मूंदे सो रहा था।

उसके जीवन में रंजना आ गई थी।

कितना-सा है उनका सम्बन्ध !

पांच-सात दिन में एक बार वह शाम को उसके यहां चला जाता है। एकाध प्याला चाय पीता है, हाल-चाल पूछता है, उसके बच्चे से खेल लेता है और लौट आता है।

रंजना श्यामा की चचेरी बहन है। विधवा। पति की मृत्यु हुई तो वह गर्भवती थी। यूं अविजित ने दो-चार बार पहले भी उसे देखा होगा पर याद नहीं था; हां, पति की मृत्यु के चार महीने बाद जब उसके बच्चे का जन्म हुआ तो अविजित बगल के बरामदे में मौजूद था। लाचारी में होना पड़ा था। श्यामा के कहने पर। प्रसव शुरू हुआ तो रंजना अकेली थी। रात का दूसरा पहर बीत रहा था। पड़ोसी ने आ कर श्यामा को खबर दी थी। और हमेशा की तरह श्यामा का बोझ अविजित को उठाना पड़ा था। रंजना को अस्पताल पहुंचा कर वह वहीं रुक गया था। अद्भुत स्त्री लगी थी रंजना। अपूर्व सुन्दरी, निर्भीक, वैधव्य के बावजूद बच्चे के जन्म से प्रसन्न।

नर्स ने बेटे के जन्म का समाचार ला कर अविजित को दे दिया था।

रंजना के कमरे के दरवाज़े पर खड़े हो कर उसने बधाई दी थी और पूछा था, किसी चीज़ की ज़रूरत तो नहीं।

भीतर से मधुर पर सशक्त कण्ठ-स्वर सुनाई दिया था; अस्पताल पहुँचा देने के लिए धन्यवाद, आगे वह खुद देख लेगी।

बेटे को लेकर रंजना घर आई, महीने भर के अन्दर कालिज जाना शुरू कर दिया। निपट अकेली औरत रंजना को एक दिन भी अविजित ने रोते-झींकते नहीं देखा और न कड़ुआहट में गोते लगाते।

घण्टे भर उसके पास बैठ कर अविजित चला आता है···अजीब-सी शान्ति और अशान्ति से एक-साथ भरा हुआ। जीवन में पहली बार उसने किसी से प्यार किया है। वह जानता है वह रंजना से प्यार करता है और जानता है कि वह उसे कभी नहीं मिल सकती। कैसे मिलेगी, जब वह उसे मांगेगा नहीं। अब वह कभी किसी औरत को नहीं मांगेगा। ठण्डी ओस की बूंद-सी रंजना की आकृति ने उसके शरीर की आग को बुझा दिया है। काश, रंजना उसे सोलह साल पहले मिली होती। अपने शरीर के अत्याचार से वह बचा रहता···आत्म-ग्लानि का यह धुआं उसकी आवाज़ घोंट न देता···रूह के हर ज़र्रे से चाहते हुए भी, प्यार के इज़हार से यूं महरूम न रहना पड़ता।

संगीता सुने तो विश्वास कर सकेगी···अविजित ने वासना पर विजय पा ली··· अविजित ब्रह्मचारी हो गया !

अविजित जोर से हंस पड़ा।

"क्या हुआ?" श्यामा ने ऐसे पुकारा जैसे वह हंसा न हो, चीख उठा हो।

अविजित ने जवाब नहीं दिया।

एक्सलरेटर पर उसके पांव का दबाव बढ़ गया।

सामने से आ रहे ट्रक को बिल्कुल पास आ जाने दिया।

"देखो, ट्रक!" श्यामा चीख पड़ी।

अविजित जोर से हंस दिया।

गाड़ी की रफ्तार कम नहीं हुई।

ट्रक रास्ता देने पर मजबूर हो गया।

अविजित ने झटके से गाड़ी दाएं मोड़ी और चौड़ी सड़क पर बेतहाशा दौड़ पड़ा।

गान्धीजी को अपने ब्रह्मचर्य पर कितना गर्व था! सोचते थे, नग्न युवती के साथ एक बिस्तर पर सो कर भी उत्तेजित न हुए तो ब्रह्मचर्य सार्थक हो गया। कितना हास्यास्पद है! शरीर क्या बस शरीर से उत्तेजित होता है? प्यार होने पर तो आदमी ब्रह्मचारी हो ही जाएगा।

पर अविजित की विडम्बना तो देखो। जिसे प्यार करता है, उसी के सामने सबसे ज्यादा लाचार है उसका शरीर।

संगीता ने लिखा था, एक पत्र आया था उसका जाने के बाद···ज्यादा प्यार करना बहुत खतरनाक होता है पर हर प्यार करने वाला कमजोर ही हो, यह जरूरी नहीं है। मैंने अपना रास्ता ढूंढ निकाला है। कभी किसी प्रख्यात डाक्टर का नाम सुनें तो समझ जाइएगा संगीता ही है···

तुम लौट क्यों आई, संगीता? कुछ और बरस बीत जाते तो मेरा गिल्ट शायद कम हो जाता···मैं रंजना से सब कुछ कह डालता और हो सकता था···हिम्मत कर के मैं उसकी गोदी में सिर रख भी देता···

तुमने यह कैसा रास्ता चुन लिया, संगीता, कि मेरे तमाम रास्ते बन्द हो गए! तुम्हारा अभिशप्त भविष्य आत्म-ग्लानि के धुएं को किस कदर जहरीला बना रहा है, जानती हो? मेरा गला घुट रहा है···आंखें जल रही हैं···मुझे कुछ दिखलाई नहीं दे रहा···

कुछ नहीं है यहाँ···बस मेरी प्यास है और···छह साल बीत चले···नखलिस्तान है और मेरी प्यास! ऐसा न हो कि नखलिस्तान दीखना भी बन्द हो जाए···

रहने दो मेरी प्यास! प्यास की मुझे आदत हो चुकी।

प्यास-प्यास-प्यास! आजन्म···अविराम···निरन्तर···अक्षुण्ण···मृत्यु तक···

"ये कहां आ गए हम!" श्यामा चीख पड़ी।

चौंक कर अविजित ने गाड़ी रोक दी।

बराबर में जमना का पुल है।

यह तो मेरठ के रास्ते में पड़ा करता है।

पुल के ऊपर नहीं, वह नीचे बालू की सतह पर है, नदी के किनारे।

जमना नदी चढ़ाव पर है। गाड़ी से ज़रा-सी दूरी पर किनारे तोड़ता पानी है।

जगह उसकी जानी-पहचानी है। पहली बार यहां नहीं आया। हर बरसात में जब जमना नदी किनारे तोड़ बह निकलती है तो वह यहां आया करता है। यहीं, लहराते पानी से ज़रा दूर खड़े रह कर देखता है···स्थिर कुछ नहीं है···सब कुछ बह जाता है···जीवन के बहाव के सामने किनारों की क्या हस्ती?

बहाव तेज़ हो तो हाथ-पैर ढीले छोड़ कर प्रवाह के साथ बहते रहो···जिधर चाहे ले जाए···तभी बचाव है···प्रवाह से उल्टी दिशा में जाने की ज़िद की तो डूबना निश्चित है।

अविजित का मन हुआ, श्यामा को गोद में उठा ले और गाड़ी का दरवाज़ा खोल बाहर दौड़ जाए···छलांग लगा दे नदी के पानी में, और···मुक्ति पा जाए!

संगीता! काजल! चड्ढा! वही यथार्थ हैं, जीवित हैं, सच हैं। व्यतीत ही हमारा वर्तमान है···व्यतीत नहीं, भूत! आदमी के सिर चढ़ जाता है तो भूत की तरह चिपटा रहता है···

वह और श्यामा···केवल मिथ्या आडम्बर, जीव-तत्व-विहीन थोथा खोल!

उठा ले श्यामा को गोद में, कूद जाए चढ़ी नदी के अथाह पानी में।

पटाक्षेप! पूर्णाहुति!

पसीने से चिपचिपाता अपना हाथ उसने श्यामा के कन्धे पर रखा और उसे अपनी तरफ़ घुमाया।

"अनित्य!" विकल कण्ठ से श्यामा ने पुकारा।

एक क्षण बाद, गाड़ी के दरवाज़े पर हाथ रखे अनित्य अविजित की बगल में खड़ा था।

"घर पीछे रह गया, भाई साहब," उसने कहा, "गाड़ी लौटा लें।"

विमूढ़-सा अविजित उसे देखता रहा।

"तुम बैठो न," श्यामा ने कहा।
"मैं नहीं। मैं उधर जाऊंगा," उसने पुल की तरफ इशारा किया।
"अनित्य !" एक बार फिर श्यामा ने पुकारा।
"फिर भी आऊंगा, भाभी," अनित्य ने कहा, "पर अब नहीं।"
"कहां जाओगे ?"
"कहीं भी। शायद यहीं बैठूं रात-भर।"
लम्बे डग भरता अनित्य अंधेरे में ग़ायब हो गया।
अविजित बैठा रहा।
"जो हो चुका, उसे भूल क्यों नहीं जाते," श्यामा ने आहिस्ता से कहा।
अविजित ने गाड़ी लौटा ली।

१

सुबह से लगातार बारिश हो रही है।

अविजित महसूस कर रहा है...हाँ, बारिश बरस रही है। कानों में टप-टप का सहज-सरस सुर बज रहा है। नल से टपकते पानी की टप-टप [illegible] होती है, कंकरीली-सी। सिर की नसों को चटकाती है। कनपटी की नस [illegible] कुट-कुट करती रहती है। एक महीना हो गया जमना किनारे से लौटे...[illegible]। हथेली से कनपटी दबाए रखो तो जरा देर को राहत मिल जाएगी। [illegible] वही कुट-कुट; कुट-कुट। कितने बरस लगेंगे उसे पूरी तरह [illegible]?

बारिश की टप-टप भी जलन में नमी नहीं ला रही...

कोई और दिन होता तो गीली मिट्टी की गंध सूंघने अविजित [illegible] निकल गया होता। हवाखोरी...सैर-सपाटा...या पिकनिक। बारिश [illegible] का मन हरियाली को ललक उठता है...तबीयत खराब न होती तो [illegible] पड़ती। गाड़ी की पिछली सीट पर दो तकिये लगा कर [illegible]। [illegible] बैठ जाते। खूब तेज गाड़ी दौड़ाता अविजित। [illegible] श्यामा भी मजे में आ जाती। मना नहीं करती।

शहर से दूर, हरियाली या पानी के किनारे वह [illegible] को श्यामा के पास छोड़कर वे लोग घूमने निकल जाते। [illegible] भागते-दौड़ते...हाँ, अविजित बच्चों के साथ [illegible] का पहला दिन दफ्तर का दिन हुआ करता था।

इतवार का दिन न भी रहता तो [illegible]। [illegible] जरा जल्दी चला जाता और शाम चार बजे के [illegible]...

पर आज...

बारिश को भुला [illegible] है, [illegible] नहीं। [illegible] है। आँखें बन्द [illegible] है, बारिश [illegible] पर अंधी दौड़ [illegible] है।

ऊपर बारिश है, नीचे बाढ़। कल अखबार में पढ़ा था, बंगाल-बिहार में भयानक बाढ़ आई हुई है। दिल्ली के पास गांवों में भी आया करती है। हर बरस बाढ़ आती है। नहीं, बीच-बीच में किसी बरस सूखा भी पड़ता है। दरअसल, हर साल बाढ़ भी आती है, सूखा भी पड़ता है। कुछ गांव बह जाते हैं, कुछ गांव सूख जाते हैं। इतना बड़ा देश जो है। किसी न किसी कोने में विनाश होगा ही। विनाश को झेलने के नियति चक्र में जो फंसा रहे, वह गांव कहलाता है।

तहलका तब मचता है जब बाढ़ शहर में आती है!

जमना नदी किनारे तोड़ रही है; गांव पर गांव बहे चले जा रहे हैं···बस एक खबर है जो अखबार की सुर्खी तक नहीं बन पाती।

अगर किसी दिन, सब बंधन तोड़ जमना नदी हेली रोड पर बह निकले? गीली सुहावनी सड़क पर पानी का स्तर धीरे-धीरे बढ़े, फिर एकदम सीमा लांघ जाए, इन खूबसूरत बंगलों के अहातों में घुस आए, अजगर की तरह मुंह-बाए इन सुदृढ़ दीवारों को निगलने लगे; क़यामत बरपा हो जाए! अपने डूबने से भी ज्यादा इमारतों की नींव कमज़ोर होने का डर लोगों का दिल दहला दे। चीखो-पुकार मच जाए। सरकार का तख्ता हिल जाए। इस एक हेली रोड को बचाए रखने के लिए न जाने कितने बांध तोड़ दिए जाएं···पानी का निकास गांवों की तरफ़ कर दिया जाए और उन्हें डुबाती, जमना नदी की बाढ़, फिर मामूली खबर बन जाए···

शुभा बाढ़-पीड़ितों की मदद करना चाहती है···

"मुझे कुछ रुपये चाहिए," परसों उसने कहा था, "पास के गांवों में बाढ़ आने से जो गांव वाले भाग कर आए हैं, उन्हें लाल क़िले के मैदान में ठहराया गया है। कालेज से हम लोग उनके लिए खाना बनाकर ले जा रहे हैं।"

"तुम लोग खाना बनाओगे?" अविजित ने पूछा था।

"हां।"

"खुद लेकर जाओगे?"

"हां।"

"सब के साथ बैठकर खाओगे? अच्छा लगेगा।" अविजित ने सन्तोष का अनुभव किया था।

पर शुभा उसकी बात सुनकर सकते में आ गई थी।

"साथ बैठ कर?"

"क्यों, साथ बैठकर नहीं खाओगे?"

"नहीं तो! उन लोगों के साथ हम क्यों···"

"भीख देने जा रहे हो? वे लोग भिखारी तो नहीं हैं।"

"भीख नहीं तो क्या देने जा रहे हैं," प्रभा बोल पड़ी थी, "बाढ़ आई है तो गांव

वालों की मदद करना सरकार का काम है।"

"पर ..."

"अब तो अपनी सरकार है। ब्रिटिश सरकार की तो बात समझ में आती थी। पर अब..."

"जब बाढ़ आ ही गई तो..."सुमा ने कहा था।

"क्यों भाई? हर साल बाढ़ क्यों आती है? बाढ़ रोकने के लिए क्या किया जा रहा है?"

"इतने 'डैम' बनाए जा रहे हैं। सब कुछ एकदम तो नहीं हो सकता।"

"डैम! डैम तो 'स्टेटस सिम्बल' बनकर रह गए हैं। हर राज्य को एक बड़ी योजना चाहिए। जब तक उसके साथ-साथ छोटे स्तर पर नदियों के तटों पर काम नहीं होगा, कुछ फ़ायदा नहीं होगा।"

"तू तो बस वही बोलती है जो मिस बनर्जी कहती हैं।"

"तो क्या ग़लत कहती है," प्रभा ने तमक कर कहा, "जितना पैसा हमारे नेता लोग विदेश यात्राओं और विदेशों को आई. पी. एज़ को चकाचौंध करने में लगाते हैं, उतने में न जाने कितने गावों का भला हो सकता है।"

"अपने को सबसे काट तो नहीं सकते।"

"क्यों नहीं काट सकते? काट ही लेना चाहिए। अलग कटकर ही देश की आर्थिक तरक्की हो सकती है। वरना बिना सोचे-समझे हम पश्चिम की नक़ल करते रहेंगे और कुछ नहीं होगा। उनकी नक़ल करके ही तो हमने अपनी शासन-व्यवस्था बनाई है। आज़ादी मिल गई पर वही पुलिस रही, वही सेना, वही नौकरशाही, वही शिक्षा-प्रणाली, जो पहले थी। हमारी अपनी सरकार ने पूरी की पूरी ब्यौरोक्रेसी सिर्फ़ इसलिए बहाल रखी क्योंकि वे लोग मौजूद थे और आसानी से दूसरा विकल्प नहीं ढूंढ़ा जा सकता था। इस हिसाब से तो रूस में १९१७ की क्रांति के बाद लेनिन को भी ज़ार ज़माने के अफ़सरों को बहाल रखना चाहिए था। समाज में क्रांतिकारी बदलाव लाने के लिए आज़ादी मांगी जाती है कि सामयिक सुविधानुसार शासन करने के लिए" प्रभा कहती गई थी।

"अगर मैं आज़ादी के लिए न लड़ा होता," सहसा अविजित कह उठा था, "तो आई. सी. एस. बन कर आज देश का प्रशासन कर रहा होता।"

"और, आपको तो अब भी कोई तक़लीफ़ नहीं है," तड़ से प्रभा ने कहा था।

यह क्या होता जा रहा है प्रभा को? बात प्रभा की ठीक है पर क्या ठीक या ग़लत होने से ही रिश्ते टूटने लगते हैं? उसके और प्रभा के बीच क्या होता जा रहा है? यही जो कभी उसके और उसके पिता के बीच हुआ था। पर आज़ादी की लड़ाई उसके लिए सिर्फ़ बात नहीं थी। तो क्या प्रभा के लिए भी...एक दिन प्रभा...

"पर इस सबका बाढ़ से क्या ताल्लुक है?" सुमा ने परेशान स्वर में कहा था, "अब जब बाढ़ आ ही गई है तो..."

"कितने रुपये चाहिए?" अविजित ने पूछा था।

"सौ।"

उसने सौ का नोट उसकी तरफ़ बढ़ा दिया था। प्रभा पैर पटक कर बाहर चली गई थी···

बारिश ने ज़ोर पकड़ा है।

अविजित के कानों में बाढ़ का शोर है। जमना नदी किनारे तोड़ रही है।

आने दो पानी को! निगल जाने दो हेली रोड को! धराशायी हो जाएं यह चौड़े बंगले जिनके हर कोने में फफूंद लगी है।

अविजित आंखें बन्द किये, गर्दन तक चादर ओढ़े उदासीन पड़ा रहेगा। पानी भीतर आएगा और उसे बहा कर ले जाएगा। जमना नदी की चौड़ी छाती पर बहते-बहते वह जीव से शव बन जाएगा···बस किसी तरह समुद्र की निर्मम गहराई में जा मिले···एक बार भी उतरा कर जल के आंचल पर तैर न आए···हाथ छाती पर बांधे रहे, पैर निष्क्रिय लटकाए रहे···और नदी उसके समर्पण को करुणावश स्वीकार कर ले···

क्यों इतनी लड़ाई करता है आदमी पानी के डुबाते प्रकोप से। तैरना न भी जानता हो तो तीन बार सिर ऊपर उठा ही लेता है।

बरसने दो पानी। अविजित सिर नहीं उठाएगा। ऐसे ही आंखें मूंदे-मूंदे प्रकृति के असीमित रोदन में जलमग्न हो जाएगा।

अविजित देख रहा है...

शहर और गांव का फ़र्क मिट रहा है···कच्ची-पक्की सड़कों पर नदी का पानी वेग से बढ़ता चला जा रहा है···ऊपर से मूसलाधार बारिश बरस रही है। लोग डूब रहे हैं, कुछ आसमान से बरसते पानी की धार में, कुछ धरती पर उमड़ते जल-प्रवाह में। ऊंची इमारतें आसमान की मार सह नहीं पा रहीं। पानी की धार से पिघल-पिघल कर नीचे सरक रही हैं। पानी के शोर के बीच बेआवाज़, आहिस्ता-आहिस्ता, छतें फ़िसल कर फ़र्श से मिल रही हैं। मंज़िलों के बीच फंसे लोग पिस-कुचल कर नीचे लटक रहे हैं और धीमे-धीमे पानी में टपक रहे हैं। पानी के ओर-छोर-हीन सीने पर जो लाश आकर गिरती है, उसका चेहरा ग़ायब हो जाता है···वह तैरते रहते हैं···सड़ते रहते हैं···एक दूसरे से चिपट-चिपट कर खाद बनते रहते हैं···

फिर भी कुछ इमारतें नहीं गिरतीं। छज्जों पर खड़े बड़े आदमी सब्र के साथ इन्तज़ार करते हैं···कब पानी उतरे और बढ़िया खाद से उर्वरा हुई धरती उनके हाथ लग सके।

अविजित देख रहा है···

तमाम हिन्दुस्तान बाढ़ के पानी में डूब रहा है···लाशों की सड़ांध से मतली आ रही है। सिर में घुमेर उठ रही है। सांस लेना दूभर हो रहा है। पानी से बाहर बने रहना नामुमकिन होता जा रहा है।

इस तरह किनारे पर खड़े रह कर इन्तज़ार करते रहने से तो अच्छा है आदमी छलांग लगा दे पानी में और सबके साथ घुल-मिट कर, आने वाली पुश्तों की मिट्टी को उपजाऊ बनाने के काम आए।

नहीं, अविजित उस इमारत में नहीं रहना चाहता जो पानी के उजड्ड वेग से अछूती रह कर, मंज़िल पर मंज़िल चिनती चली जाए पर जिसके ईंट-गारे के भीतर पलती फफूंद उसमें रहने वाले हर प्राणी को रफ़्ता-रफ़्ता उसके अपने थूक में डुबा कर मार डाले।

बारिश अब भी बरस रही है···

सुबह के दस बजा चाहते हैं।

इतवार नहीं है।

घर के लोग परेशान हैं, अविजित अभी तक बिस्तर छोड़ कर उठा क्यों नहीं। शायद यह ज़िन्दगी में पहली बार हो रहा है कि सुबह होने पर भी उसने बिस्तर नहीं छोड़ा। क्या हुआ जो धूप नहीं खिली, क्या हुआ जो बादल फूट-फूट कर रो दिये; वैसा तो धूप निकलने को है; कलाई पर बंधी घड़ी तो बाकायदा चल रही है।

पास के बिस्तर से श्यामा ने पांचवीं बार पूछा है, "तबीयत ठीक नहीं है क्या? डाक्टर माथुर को बुलवाऊं?"

सुमन तीसरी बार कमरे में आया है। दो बार पहले आकर पैर छू कर देख गया है।

"बुख़ार तो नहीं लगता, भाई साहब," तीसरी बार कह रहा है, "कहें तो पीठ दबा दूं?"

"नहीं," अविजित ने बुदबुद करके कहा है पर चादर से मुंह बाहर नहीं निकाला है।

भला आदमी है सुमन। स्वर्णा के जाने के बाद से घर को काफ़ी सम्भाल लिया है।

क्या ऐसा नहीं हो सकता कि चादर से ढका अविजित सपाट पड़ा रहे और उसका घर उसके बिना अपनी ताक़त से चलता रहे। धीरे-धीरे उसका सम्पर्क घर के हर प्राणी से टूट जाए··· उसे याद तक न रहे कि यहां कोई एक श्यामा है, एक प्रभा, शुभा, सोती और···

"सुधांशु को स्कूल से ले आऊं?" दरवाज़े से पलट कर सुमन ने पूछा है, "आज पहला दिन है।"

तीव्र वेदना से अविजित का वदन सिकुड़ उठा है। उसी को तो सबसे पहले भूलना है!

सुधांशु, उनका बेटा। क्यों? किस अभिशाप से?

"हां, ले आओ," श्यामा ने कह दिया है।

शुक्ल बाहर चला गया।

"ठीक है न," श्यामा उससे पूछ रही है, "पहले दिन थोड़ा जल्दी ले आना?"

अविजित चुप है।

कैसा पहला दिन; कैसा दूसरा। जल्दी आए या देर से, क्या फ़र्क पड़ेगा। श्यामा नहीं जानती, सुधांशु को पिछड़े हुए बच्चों के स्कूल में दाखिला दिलवाना पड़ा है।

उसका बेटा और रिटार्डेड।

पूरा हफ्ता निकल गया। एक स्कूल से दूसरे स्कूल, दूसरे से तीसरे। हर जगह एक ही जवाब। बच्चा सिर्फ़ तुतलाता नहीं, पिछड़ा हुआ भी है। तुतलाने की वजह शारीरिक होती तो इलाज मुमकिन था पर अब···एक ही विकल्प है, पिछड़े हुए बच्चों के स्कूल में थोड़ा-बहुत जो सीख सके···अपनी रोजमर्रा की ज़रूरतें बतलाने लायक़!

अविजित देख रहा है···

सुधांशु जवान हो चुका। उसका चेहरा-मोहरा बिल्कुल अविजित की तरह है। दूर से देखो तो वहम हो जाए, अविजित ही है।

सुधांशु बरामदे में बैठा कागज़ की नाव बना रहा है। पूरी एकाग्रता और तन्मयता के साथ कागज़ तहाता है, मोड़ता है, त्रिकोण बनाता है, हाशिये में छूटे कागज को ऊपर मोड़ता है ··कागज़ फट जाता है, नाव नहीं बनती।

वह दूसरा कागज़ उठाता है···हाथों को संतुलित रखने की कोशिश करता हुआ उसे तहाता है···मोड़ता है···त्रिकोण बनाता है···कागज हाथ से फिसल जाता है, नाव नहीं बनती।

वह झुक कर कागज उठाता है···तहाता है···मोड़ता है···त्रिकोण बनाता है···छूटे हुए हाशिये को ऊपर मोड़ता है···खींच कर खोलता है और कागज फट जाता है, नाव···

अविजित भीतर बिस्तर पर पड़ा आखिरी सांसें गिन रहा है···सुधांशु उससे बेखबर बाहर बरामदे में बैठा कागज़ की नाव बनाने की कोशिश कर रहा है···

सुधांशु नहीं जानता, अविजित मर रहा है। नहीं जान सकता···पर नाव··· कम-अज-कम नाव तो बने।

सुधांशु ने फिर कागज़ उठाया है···उसे तहाया है···आवेश से उसके हाथ कांप रहे हैं···हताशा उस पर हावी होती जा रही है···पांच बरस का बच्चा भी कागज़ की

नाव बना लेता है···चार साल का···नहीं बना पाता या बना लेता है वह भी ? सुधांशु जवान हो चुका है···पूरा जोर लगा रहा है नाव बनाने में···देखने में बिल्कुल सर्वजित की तरह है···

रंजना भीतर घुसी है।

सर्वजित, उसने आवाज़ लगाई है।

सुधांशु ने सिर ऊपर उठाया है।

सुधांशु, सुन ! रंजना ने कहा है, पिताजी कैसे हैं ?

नाव नहीं बनती, सुधांशु ने रुआंसे स्वर में कहा है, तुम बना दो।

पिताजी कैसे हैं, रंजना ने फिर पूछा है।

तुम नाव बना सकती हो, सुधांशु ने पूछा है।

रंजना अचरज से सुधांशु को देख रही है।

सर्वजित से बर्दाश्त नहीं हो रहा।

उसने आंखें मूंद ली हैं, सांस रोक लिया है, शरीर को स्पंदनहीन बना लिया है···

सर्वजित का शव कमरे में पड़ा है···बाहर बरामदे में बैठा सुधांशु नाव बनाने की असफल कोशिश कर रहा है···

रंजना···रंजना···रंजना, जाओ तुम ! मेरा मुंह देखने लायक नहीं रहा···

कितने दिन हुए···शायद एक हफ्ता।

वह एक दोस्त के घर बैठा था।

उनका बेटा आकर उसकी गोद में बैठ गया।

चंचल, गोरा-गुदगुदा-सा लड़का।

'पिताजी,' उसने कहा था, "चाची मेरी झूठी शिकायत करे तो तुम सुनना मत।"

"शिकायत," सर्वजित हंस उठा था, "बहुत साफ़ बोलता है तुम्हारा बेटा।"

"हां," दोस्त ने बात को कोई महत्त्व नहीं दिया था।

"कितने साल का हो गया ?" सर्वजित ने ही पूछा था।

"चार।"

"चार साल···" सर्वजित बुदबुदा उठा था, "पर यह तुतलाता नहीं।"

"चार साल के बच्चे तुतलाते तो नहीं," दोस्त की बीवी हंस पड़ी थी।

"फिर सुधांशु क्यों तुतलाता है ?" सर्वजित के मुंह से अनायास निकला था।

"सुधांशु···कौन, आपका बेटा ?"

"हां।"

"तुतलाता है ?"

तीव्र वेदना से अविजित का वदन सिकुड़ उठा है। उसी को तो सबसे पहले भूलना है!

सुधांशु, उसका बेटा। क्यों? किस अभिशाप से?

"हां, ले आओ," श्यामा ने कह दिया है।

शुक्ल बाहर चला गया।

"ठीक है न," श्यामा उससे पूछ रही है, "पहले दिन थोड़ा जल्दी ले आना?"

अविजित चुप है।

कैसा पहला दिन; कैसा दूसरा। जल्दी आए या देर से, क्या फ़र्क पड़ेगा। श्यामा नहीं जानती, सुधांशु को पिछड़े हुए बच्चों के स्कूल में दाखिला दिलवाना पड़ा है।

उसका बेटा और रिटार्डेड।

पूरा हफ़्ता निकल गया। एक स्कूल से दूसरे स्कूल, दूसरे से तीसरे। हर जगह एक ही जवाब। बच्चा सिर्फ़ तुतलाता नहीं, पिछड़ा हुआ भी है। तुतलाने की वजह शारीरिक होती तो इलाज मुमकिन था पर अब···एक ही विकल्प है, पिछड़े हुए बच्चों के स्कूल में थोड़ा-बहुत जो सीख सके···अपनी रोज़मर्रा की ज़रूरतें बतलाने लायक़!

अविजित देख रहा है···

सुधांशु जवान हो चुका। उसका चेहरा-मोहरा बिल्कुल अविजित की तरह है। दूर से देखो तो वहम हो जाए, अविजित ही है।

सुधांशु बरामदे में बैठा कागज़ की नाव बना रहा है। पूरी एकाग्रता और तन्मयता के साथ कागज़ तहाता है, मोड़ता है, त्रिकोण बनाता है, हाशिये में छूटे कागज़ को ऊपर मोड़ता है ··कागज़ फट जाता है, नाव नहीं बनती।

वह दूसरा कागज़ उठाता है···हाथों को संतुलित रखने की कोशिश करता हुआ उसे तहाता है···मोड़ता है···त्रिकोण बनाता है···कागज़ हाथ से फिसल जाता है, नाव नहीं बनती।

वह झुक कर कागज़ उठाता है···तहाता है···मोड़ता है···त्रिकोण बनाता है···छूटे हुए हाशिये को ऊपर मोड़ता है···खींच कर खोलता है और कागज़ फट जाता है, नाव···

अविजित भीतर बिस्तर पर पड़ा आखिरी सांसें गिन रहा है···सुधांशु उससे बेख़बर बाहर बरामदे में बैठा कागज़ की नाव बनाने की कोशिश कर रहा है···

सुधांशु नहीं जानता, अविजित मर रहा है। नहीं जान सकता···पर नाव··· कम-अज़-कम नाव तो बने।

सुधांशु ने फिर कागज़ उठाया है···उसे तहाया है···आवेश से उसके हाथ कांप रहे हैं···हताशा उस पर हावी होती जा रही है···पांच बरस का बच्चा भी कागज़ की

नाव बना लेता है···चार बरस का···नहीं बना पाता या बना लेता है यह भी ? सुधांशु जवान हो चुका है···पूरा जोर लगा रहा है नाव बनाने में···देखने में बिल्कुल अविजित की तरह है···

रंजना भीतर घुसी है।

अविजित, उसने आवाज लगाई है।

सुधांशु ने सिर ऊपर उठाया है।

सुधांशु, तुम ! रंजना ने कहा है, पिताजी कैसे हैं ?

नाव नहीं बनती, सुधांशु ने रुआंसे स्वर में कहा है, तुम बना दो।

पिताजी कैसे हैं, रंजना ने फिर पूछा है।

तुम नाव बना सकती हो, सुधांशु ने पूछा है।

रंजना अचरज से सुधांशु को देख रही है।

अविजित से बर्दाश्त नहीं हो रहा।

उसने आंखें मूंद ली हैं, सांस रोक लिया है, शरीर को स्पंदनहीन बना लिया है···

अविजित का शव कमरे में पड़ा है···बाहर बरामदे में बैठा सुधांशु नाव बनाने की असफल कोशिश कर रहा है···

रंजना···रंजना···रंजना, जाओ तुम ! मेरा मुंह देखने लायक नहीं रहा···

कितने दिन हुए···शायद एक हफ्ता।

वह एक दोस्त के घर बैठा था।

उनका बेटा आकर उसकी गोद में बैठ गया।

चंचल, मोटा-गुदगुदा-सा लड़का।

"पिताजी," उसने कहा था, "राजी मेरी झूठी शिकायत करे तो तुम सुनना मत।"

"शिकायत," अविजित दुहरा उठा था, "बहुत साफ बोलता है तुम्हारा बेटा।"

"हां," दोस्त ने बात को कोई महत्व नहीं दिया था।

"कितने साल का हो गया ?" अविजित ने ही पूछा था।

"चार।"

"चार साल···" अविजित बुदबुदा उठा था, "पर यह तुतलाता नहीं।"

"चार साल के बच्चे तुतलाते तो नहीं," दोस्त की बीवी हंस पड़ी थी।

"फिर सुधांशु क्यों तुतलाता है ?" अविजित के मुंह से अनायास निकला था।

"सुधांशु···कौन, आपका बेटा ?"

"हां।"

"तुतलाता है ?"

"हां।"

"अच्छा...कितने साल का हो गया?"

"चार...नहीं, पांच।"

"स्कूल वाले क्या कहते हैं?"

"स्कूल तो अभी जाता नहीं।"

"नहीं? उम्र तो हो गई," दोस्त ने कहा था।

"पता नहीं...वह...स्कूल जाने लायक़ लगा नहीं कभी..."

सुधांशु को ज्यादातर अविजित ने स्वर्णा की गोद में देखा है। स्कूल के बारे में कभी सोचा नहीं...किसी ने कुछ कहा भी नहीं।

दोस्त और उसकी बीवी ने एक दूसरे की तरफ़ देखा।

बीवी का चेहरा सख्त हो गया। उसे वह बहुत ही नालायक़ और लापरवाह बाप लगा होगा।

"किसी अच्छे स्कूल में डालकर देखिये, रूखे स्वर में उसने कहा था, "घर से निकलेगा तो ठीक बोलने लगेगा।"

"अरे यार, बड़ा आदमी बनने का यह मतलब तो नहीं कि बाल-बच्चों को भुला ही दो। न हो तो एक सेक्रेटरी रख लो याद दिलाने को," दोस्त ने मज़ाक करने की कोशिश में जोड़ा था पर उसका ठहाका माहौल को हलका न कर पाया था।

अगले दिन, सुधांशु को लेकर, अविजित पास के स्कूल में जा पहुंचा था...

फिर एक सिलसिला...

अभी कोई नहीं जानता...दो-चार बरस में सब जान जाएंगे, अविजित बंसल का बेटा...

अविजित कहीं नहीं जाएगा...किसी से नहीं मिलेगा...सफ़ेद चादर पीली पड़ती जाएगी...नीचे उसके शरीर के अवयव एक-एक करके सूखते चले जायेंगे...बाढ़ का पानी जब भीतर घुसेगा...

अविजित सुन रहा है...

बारिश की टप-टप कभी तेज होती है, कभी धीमी। उसके लिए सब एक है।

पानी की टप-टप में एक सुर और आ मिला है...टेलीफ़ोन की घण्टी की टन-टन।

टन-टन, घण्टी बज रही है...

टप-टप, पानी टपक रहा है...

अविजित सुन रहा है...बस, सुन रहा है...

सुन कर चेत नहीं रहा...

टेलीफ़ोन बजता जा रहा है···अविजित फिर भी निस्पन्द पड़ा है···

बजने दो···तब तक बजने दो जब तक बेहोशी का आलम इन्सानों के सिर से होता हुआ यन्त्रों पर तारी न हो जाए···

बारिश की टप-टप और घण्टी की टनटनाहट एक साथ बन्द हो गई !

अटूट सन्नाटा छा गया।

क्षण खिंचता गया।

अविजित ने घबरा कर साँसें खींच लीं।

तभी युवक ने ऊंची आवाज़ में पुकार कर कहा, "भाई साहब, कलकत्ते से सिंघानिया जी का ट्रंक काल है !"

चादर फेंक कर अविजित ऐसे उठा जैसे बटन दबा देने पर मशीनी पुर्ज़ा हरकत करता है···

···फ़ोन उसके हाथ में आ गया।

"अरे भई बंसल," सिंघानिया जी बोले, "तबीयत क्या ख़राब कर ली ? दफ़्तर में मिले नहीं···"

"जी · " अविजित जो कहेगा, उसे सुनने के लिये रुके बग़ैर ही वे कहते गए, "लो, हम बार तुम्हारा काम हमने कर दिया ! एक ज़बरदस्त सोर्स हाथ लगा है। मेरठ में कोई सरण साहब हैं, गांधी संस्थान के व्यवस्थापक। पता चला है कि लाइसेन्स उन्हें मिलते हैं और वे उन्हें प्रीमियम पर बेच डालते हैं। नफ़े की आधी रकम उनकी, आधी मुकर्जी बाबू की। मैं न कहता था, आदमी खेल गहरा खेलता है।"

"बस, तुम आज ही सरण से मिल कर बात पक्की कर लो। और हां, सुना है, वह भी इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का पढ़ा हुआ है···तुम्हारा काम और आसान हो गया, क्यों ?"

कौन सरण ? कैसा लाइसेन्स ? मेरठ ! मेरठ में ही तो संगीता की हत्या··· नहीं चद्दा की मौत···मेरठ में ही रहता है अविजित का भूत ! नहीं, वह नहीं जाएगा मेरठ···कभी नहीं जाएगा।

"हलो-हलो···," उधर से सिंघानिया जी पुकार रहे हैं, "आपरेटर-आपरेटर··· हलो-हलो···"

"जी," अविजित ने कहा।

"समझ गए तुम ?"

"जी।"

"तुम्हारी तबीयत ज़्यादा ख़राब है क्या ?"

"जी नहीं।"

अविजित के जवाब टेलीफ़ोन की घण्टी की तरह निश्चित सुर में बजते जा रहे हैं। सोचने की ज़रूरत नहीं है।

"अगर तुम जाने लायक़ हालत में न हो तो भट्ट को भेज देते हैं। मेरठ के काम में देरी नहीं की जा सकती। और फिर···दिल्ली आफ़िस का भी कुछ काम वह सम्भाल लेगा···तुम्हें आराम मिल जाएगा···"

भट्ट ! उसकी जगह दिल्ली आफ़िस में भट्ट !

अविजित के वदन पर से उदासीनता की खाल उचट गई। एक-एक रोयां चौकन्ना खड़ा हो गया।

"मेरी तबीयत बिल्कुल ठीक है," करारे स्वर में उसने कहा, "एक-दो दिन के लिए यूंही बुखार आ गया था, मौसमी। भट्ट के आने की कोई ज़रूरत नहीं है।"

"तो तुम आज ही मेरठ चले जाओ।"

"जी, ठीक है।"

"लौटते ही मुझे खबर···"

"ज़रूर ! आज रात को ही आपको खबर मिल जाएगी, काम हो गया।"

२

"वहां जाकर ज़रा भी अच्छा नहीं लगा," शुभा ने गहरी मायूसी के साथ कहा।

"अच्छा लगने को था क्या ?" प्रभा बोली।

"मैंने सोचा था, लोगों की मदद करके अच्छा लगेगा।"

"फिर···क्यों नहीं लगा, कुछ सोचा ?" पैनी नज़र उस पर जमा कर उसने पूछा।

"पता नहीं···" शुभा अपने भीतर डूब गई।

कुछ देर चुप्पी रही, फिर शुभा जैसे फट पड़ी, "इतने लोग आए थे वहां। बढ़िया पोशाकें पहने, उम्दा गाड़ियों में बैठकर, ढेर-सारा खाना साथ लिये। दूसरी तरफ़ भूखे बाढ़-पीड़ितों की क़तार थी। उन्हें खाना चाहिए था···खाना मिला भी पर···"

"पर···"

"खाना ज़्यादा हो गया, प्रभा ! खाने वालों ने और लेने से इन्कार कर दिया। लाने वाले नाराज़ होने लगे···अब लेकर आए हैं तो क्या वापिस लेकर जाएंगे !" शुभा ने व्यथित स्वर में कहा, फिर घबरा कर प्रभा की तरफ़ देखा कि कहीं वह हंसना न शुरू

कर दें।

पर प्रभा के चेहरे पर विद्रूप नहीं था। आंखों में संवेदना थी। शुभा को ढाढ़स मिला। वह कहती गई, "ऐसा लगता था, प्रभा, कि जो लोग खाना लेकर आए हैं, उनका उन लोगों से कोई ताल्लुक़ ही नहीं है जिनके लिए खाना लाया गया है।"

"वही तो," प्रभा ने कहा, "वही तो ग़लत है।"

"हां," शुभा ने धीमे से कहा, "अच्छा नहीं लगा वहां जाकर।"

"ऐसी मदद ग़लत है," प्रभा ने कहा, "जो देता है उसके मन में हिक़ारत होती है; जो लेता है उसके मन में नफ़रत।"

"मदद ग़लत है?"

"नहीं, मदद करने की सामर्थ्य होना ग़लत है। एक समाज में रहने वाले लोग इस तरह क्यों बंटें कि एक वर्ग के पास इतना हो कि वह मदद करने की सामर्थ्य रखे और दूसरे वर्ग के पास कुछ न हो, कि उसे मदद की ज़रूरत पड़े।"

"तब तो···एक ही रास्ता है···कौम्यूनिज़्म?"

"हां।"

"उसके लिए क्रांति···"

"होनी ही पड़ेगी।"

"मारपीट, हिंसा, अराजकता···"

"उसके बिना कुछ बदलता नहीं, कभी कुछ नहीं बदलता!"

देर तक शुभा चुप बैठी एकटक सामने देखती रही। उसकी आंखों के सामने एक विशाल मंच था···

मंच पर एक आदमी आया···बिना चेहरे वाला···गोली चली···एक-दो-तीन-पांच! आदमी वहीं ढेर हो गया। एक और आदमी···फिर गोली चली। धांय! एक-के-बाद-एक। फिर एक साथ···अनेक—अनगिनत···[illegible] की बौछार! [illegible]-पुकार! बिना चेहरों के आदमी—लाशों का ढेर···[illegible]··

"बहुत भयानक है," उसने कहा।

"हां।"

"सुन," शुभा का स्वर फुसफुसाया, "[illegible] सकती है?"

"हां।"

"चाकू मार सकती है?"

"हां," प्रभा का स्वर एक [illegible] कहा।

स्तब्ध शुभा की आंखों के [illegible]। [illegible]

प्रभा के हाथ में पिस्तौल है···वह धांय-धांय गोलियां चलाती भागी चली जा रही है। अचूक निशाना है। सामने लाशों का अम्बार लगता चला जा रहा है। धांय-धांय ! धांय-धांय ! विनाश का लयबद्ध संगीत ! धांय···और गोलियां खत्म। प्रभा ने मुड़कर देखा है। एक नक़ाबपोश चेहरा पास लटक आया है। गज़ब की फुर्ती है बदन में। गोलियों की पेटी प्रभा के पास फेंक दी है। कौन है वह ? काजल बनर्जी ? नहीं···दत्त ! विमल दत्त। वह और प्रभा साथ-साथ भाग रहे हैं। धांय-धांय ! गोलियां चल रही हैं। झुण्ड के झुण्ड नक़ाबपोश चेहरे उनके दाएं-बाएं जमा हो रहे हैं। बिना रुके प्रभा गोलियां चला रही है···पेटी खाली होने में नहीं आ रही···कि खत्म हुई और विमल दत्त ने इशारा किया ! प्रभा ने कमर से लटक रहा चाकू हाथ में सम्भाला और···सामने अविजित है ! अविजित क्यों ?"

"प्रभा !" शुभा चीख उठी।

"क्या ?

"यह विमल दत्त अच्छा आदमी नहीं है।"

"विमल दत्त ?"

"हां।"

"तू उसके बारे में क्या जानती है ?"

"तू तो जानती है न ?" शुभा ने जवाब न देकर सवाल पूछा।

"हां।"

"खूब अच्छी तरह ?"

"हां।"

"प्रभा, मैंने कई बार उसे तेरे साथ देखा है।"

"देखा होगा।"

"प्रभा···तू उससे प्यार करती है ?" शुभा ने संकुचित स्वर में पूछा।

प्रभा ने घूर कर उसकी तरफ़ देखा और खिलखिला कर हंस पड़ी, "इतना ज़ोर क्यों पड़ रहा है तुझ पर ? प्यार तो सभी-सभी को करते हैं।"

"पर वह तो··" शुभा अब भी गम्भीर थी।

"कायर नहीं है," प्रभा ने वाक्य पूरा कर दिया।

"जो मार-काट न करना चाहें, वे सब कायर होते हैं।"

"हां। जरूरत पड़ने पर भी न करना चाहें तो बेशक कायर होते हैं।"

"पिताजी को यह सब मालूम है ?"

"क्या ?"

"यही·· विमल दत्त और उसके खयालात।"

"शायद नहीं।"

"मिस बनर्जी को ?"

"हां।"

"उन्हीं के कहने पर···"

"किसी के कहने पर कोई कुछ नहीं करता, पर कोई रास्ता दिखाए और हमें दीख जाए तो···"

"प्रभा," शुभा ने गम्भीरता से पूछा, "इस देश में क्रान्ति हो सकती है ?"

"क्यों नहीं हो सकती ? पर क्रान्ति सोचने या विवाद करने से नहीं होती। होती है करने से···तू हमारे साथ आएगी ?"

शुभा की नजरें फिर मंच की तरफ़ खिच गईं।

पीली आंधी काले बवंडर में बदल चुकी। शोर से मंच के तख्ते फटे जा रहे हैं। जांबाज़ जवानों के चेहरों से नक़ाब उतर चुके। उनकी दृष्टि की कौंध खुद बवंडर को दहलाये दे रही है। सैकड़ों बिजलियां एक साथ शुभा के चारों तरफ़ गिरीं कि लाशों की ढेरियों से बहता खून तक जल कर सूख गया···

···प्रविजित का शरीर बहुत धीरे-धीरे नीचे गिरा, ऐसे, जैसे कोई बहुत पुराना पेड़ गिरता है। शुभा के हाथ में पिस्तौल आ गई। उसकी दृष्टि प्रविजित की दृष्टि से बंध गई। नहीं, घबरा कर उसने आंखें मूंद लीं···मैं नहीं देख सकती···मैं नहीं···मैं···

"मैं···," शुभा उठकर खड़ी हो गई, "जा रही हूं।" उसने कहा, "डाक्टर जैन ने बुलाया है···"

"किसी नये नाटक की तैयारी है ?" प्रभा ने सहज भाव से पूछा।

"हां," जवाब देने भर को शुभा रुकी, फिर तेजी से कमरे से बाहर भाग गई।

बिमल, प्रभा ने याद किया, बिमलेन्दु दत्त···बिमल दत्त···दत्त···नहीं, बिमल।

···और जो वह उड़िया हुआ, याद आया, उसने स्वर्णा से कहा था। वह खिल-खिला कर हंस पड़ी। बिमल दत्त क्या उड़िया है ? शायद हो। उसने तो कभी कुछ बतलाया नहीं। प्रभा को अच्छा लगता है सोचना कि वह बंगाली है, काजल बनर्जी की तरह। अगर काजल दी के लड़का होता तो ठीक बिमल दत्त की तरह होता, प्रभा सोचा करती है। पर···काजल दी का लड़का···है तो उनका लड़का···मुकर्जी बाबू के घर पल रहा है···बिमल दत्त से एकदम फ़र्क़ है वह।

पिताजी ने बतलाया तो था ··

प्रविजित मुकर्जी बाबू से मिलने गया था···जाना पड़ा था। सिंघानिया जी का आग्रह था। लाइसेन्स दिलवाने का आश्वासन देकर सरण ने भी कहा था, एक बार मुकर्जी बाबू से मिल जरूर लेना, हम सेवक हैं, कर्ता तो वे ही हैं।

मुकर्जी बाबू को एक बार देखने की इच्छा भी थी मन में। कैसा आदमी है जो, थोड़े दिनों के लिये ही सही, काजल को मोहित तो कर सका।

बेसफ़ लगे सफ़ेद बुर्राक कुर्ते-धोती में, ईरानी कालीन पर बिछी सफ़ेद चांदनी

पर मसनद का सहारा लिये बैठा आदमी, बेहद शालीन और सुलझा हुआ इन्सान लगा था। हां, ठीक है, पैसा बनाता है पर···आजकल कौन नहीं बनाता। है तो परिष्कृत रुचि का सौम्य व्यक्ति। ऐसा आदमी एकदम त्याज्य नहीं हो सकता। फिर काजल···

ज़रूरी बातचीत खत्म होने को थी कि दस-ग्यारह बरस का स्वस्थ, चंचल बालक वहां आ खड़ा हुआ।

"डैडी," उसने कहा।

"पार्थ ? अरे, आओ-आओ, अभी आए क्या ?" मुकर्जी बाबू अतिथि के सामने ही स्नेह जतला उठे थे।

"सफ़र कैसा रहा ?" बंगला में उन्होंने पूछा।

"फ़ाइन," लड़के ने अंग्रेज़ी में जवाब दिया।

"हाऊ वाज़ स्कूल (स्कूल कैसा था) ?" इस बार मुकर्जी बाबू ने भी अंग्रेज़ी ही में पूछा।

"ऑल राइट (ठीक-ठाक)"

"गुड।"

अविजित ने ध्यान से लड़के को देखा। ज़रूर काजल का लड़का है। निश्चित। वही सांवला रंग, वही बड़ी-बड़ी आंखों में झलकती बौद्धिक कान्ति। बस शरीर काजल की तरह दुबला नहीं, भरा हुआ है। अविजित का मन हुआ, उसे पास बुलाकर एक बार हाथों से सहला कर देखे।

"आपका बेटा है ?" उसने पूछा।

"हां," मुकर्जी बाबू ने सगर्व कहा।

"कौन-सी क्लास में पढ़ते हो ?" उसने सीधे लड़के से पूछा।

"फ़िफ्थ स्टैंडर्ड," उसकी तरफ़ बिना देखे उसने अंग्रेज़ी में उत्तर दिया।

"कौन-से स्कूल में ?"

"दून स्कूल," उसने अकड़ कर कहा।

"हॉस्टल में हो ?"

"येस।"

"कितने बरस के हुए ?"

"इलेवन," लड़के ने लापरवाही से जवाब उछाला और पूरी तरह अविजित की तरफ़ पीठ करके पिता से बोला, "आई नीड सम मनी।

"श्योर," मुकर्जी बाबू हंस कर बोले, "मां ने मना कर दिया क्या ?"

"शैल आई आस्क हर (उनसे पूछूं) ?"

"रहने दो," वे बोले।

अविजित बुरी तरह अपमानित महसूस कर रहा था।

"आप काजल बनर्जी को जानते हैं ?" अनायास उसके मुंह से निकल गया।

यह जानता है, यहां काजल का नाम लेना ठीक नहीं है, इससे बना-बनाया मेल बिगड़ सकता है। पर काजल के लड़के के व्यवहार से पीड़ित होकर कुछ देर के लिए यह इष्ट और औचित्य की बात बिल्कुल भूल गया।

मुकर्जी बाबू का चेहरा तनिक भी मलिन नहीं हुआ। सेक्रेटरी को बुलाने के लिये घण्टी पर हाथ रख कर सहज भाव से बोले, "अच्छा-अच्छा···हां, आप भी तो इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से हैं, पता तो चला था···"

सेक्रेटरी आ उपस्थित हुआ तो उसी स्वर में कहते गए, "पार्थ को पचास रुपये दे दो।"

"आजकल वे दिल्ली में ही हैं। सीतादेवी कालेज में पढ़ाती हैं," अविजित ने कहा।

"अच्छा है," मुकर्जी बाबू बोले, "तब तो···मुलाक़ात होती रहती होगी!"

अविजित का मन इस आदमी के प्रति गहरी वितृष्णा से भर उठा।

"लड़के को मां के पास कभी नहीं भेजते क्या?" अपना स्वार्थ पूरी तरह भूल कर वह प्रतिहिंसक वार कर बैठा।

इससे पहले कि मुकर्जी बाबू कुछ कहते, ग्यारह बरस का पार्थ तेज़ी से घूमकर उसके सामने आ गया और घृणा से सने स्वर में बोल पड़ा, "डोन्ट टॉक ऑफ़ हर बिफोर मी! माई मदर इज़ इनसाइड। (मेरे सामने उसका नाम मत लो! मेरी मां भीतर हैं," और पैर पटकता हुआ कमरे से बाहर निकल गया।

हतप्रभ अविजित की हालत बलात् घर में घुस आए चोर जैसी हो गई।

"हमारी ज़िन्दगी तो खुली किताब है, बंसल बाबू," मुकर्जी बाबू ने अभिमान के साथ कहा, "लड़के से सब कुछ छिपा रह सकता है क्या?"

उफ़, क्या कर डाला अविजित ने? काजल ने कहा तो था···मैं चरित्रहीन हूं, उन्होंने सिर्फ़ दुबारा शादी की है। ज़ाहिर है, लड़के को उसके बारे में 'सब कुछ' से ज़्यादा बतलाया गया है।

"और हम छिपाएंगे क्यों?" मुकर्जी बाबू कहते गए, "जब जनता जानती है तो खुद अपना बेटा नहीं जानेगा···"

सेक्रेटरी फ़ाइलें लेकर दुबारा उपस्थित हो गया था···पता नहीं मुकर्जी बाबू ने घण्टी दबाई थी या स्वयं ही···

मुकर्जी बाबू फ़ाइलों पर दस्तख़त करते-करते कह रहे थे, "कोई हमें ब्लैकमल करना भी चाहे तो कैसे करेगा···सभी तो सब कुछ जानते हैं हमारे बारे में···"

"मैं आपको ब्लैकमेल करने नहीं आया," गुस्से से पागल अविजित में अब तक विवेक नहीं जगा था।

"आप क्यों करेंगे? आप तो जानते हैं आपका कमीटेशन ज़्यादा है इसी से लाइसेन्स आपको नहीं मिला। पर होते हैं ऐसे भी लोग जो नाजायज़ तरीक़ों से काम करवाना चाहते हैं। नहीं···आप नहीं···आप तो जानते हैं जिसका कमीटेशन कम होगा

लाइसेन्स उसी को मिलेगा, क्यों घोष ?" मुकर्जी बाबू ने सेक्रेटरी से अनुमोदन मांगा।

"जी, सर," उसने फ़ौरन कहा।

काग़ज़ पर सरण का क्वोटेशन सबसे कम होता है, अविजित जानता है।

तमाम गुस्से के बावजूद उसने राहत महसूस की। लाइसेंस तो मिल ही जाएगा। तभी मुकर्जी बाबू ने कहा, "हां, वे अगर किसी को भेजें···"

"कौन ? काजल ? वे आदमी भेज कर···"

"ना-ना, आपको नहीं," मुकर्जी बाबू बात काट कर बोले, "किसी और को अगर भेजें तो···बेकार रहेगा, कह दीजिएगा।"

"काजल आपको ब्लैकमेल करेगी ? काजल !" अविजित चीख भी न सका, फुसफुसा कर रह गया, "काजल जैसी महिला···"

"अच्छा तो···" मुकर्जी बाबू ने बाधा दी।

एक जगह बैठे-बैठे ही पूरी तरह सेक्रेटरी की तरफ़ घूम जाने का आभास देते हुए वे बोले, "राघवन को भेज दो।"

इशारे में आदेश था सामने से हट जाने का। सकपका कर अविजित उठ खड़ा हुआ, हाथ जोड़े और बाहर चला गया।

गुस्से में भरा हुआ वह घर पहुंचा था और काफ़ी कुछ प्रभा-शुभा वग़ैरह के सामने उगल डाला था। काफ़ी कुछ ! सब नहीं ! सब क्या कोई किसी से कह सकता है···

"एक नम्बर का बदमाश है," उसने कहा था, "उठ कर चला आया मैं वहां से।"

"तमाचा नहीं मारा उसके मुंह पर ?" प्रभा ने कहा था।

अविजित दंग रह गया था। यह व्यंग्य है या सीधा प्रश्न ?

"काजल दी से यह सब कहेंगे ?"

"नहीं, उससे क्यों कहूंगा ? बेकार दुःख होगा। कोर्ट में उसके लिए लड़ रही है। मिल भी गया तो लेकर क्या करेगी।"

"क्यों, पिता के प्रभाव से दूर रहेगा तो बदल भी सकता है," शुभा ने कहा, "मिस बनर्जी का व्यक्तित्व भी तो कम प्रभावशाली नहीं है।"

"मिलना ही तो मुश्किल है," अविजित ने कहा, "मुकर्जी ठहरे केन्द्र के मंत्री। उनका रसूख···कोर्ट-कचहरी भी तो आख़िर इन्सान ही चलाते हैं।"

"हम लोग उसे दून स्कूल से किडनैप कर लें तो ?" सहसा प्रभा कह उठी।

अविजित उसकी तरफ़ घूम गया और इस बार तल्ख़ी से कह उठा, "यूं बैठे-बैठे बेपर की उड़ाने से कुछ नहीं होता।"

प्रभा की आंखों में एक बार जोरदार बिजली कौंध गई पर उसने कहा कुछ

नहीं, आंखें भुका कर अपने में डूबी बैठी रही।
अब तक चुप बैठे शुक्ल जी ने सहसा जम्हाई लेकर चुटकी बजाई और बोले, "हरि-हरि, जो स्त्री पति को छोड़ सकती है उसे बेटे से क्या मोह होगा ?"
"क्यों ?" प्रभा ने भवें ऊपर चढ़ा कर कहा।
"भारतीय संस्कृति में पति का स्थान पुत्र से ऊंचा माना गया है। बेटा स्त्री का भार तब सम्भालता है जब पति उस योग्य नहीं रहता।"
"नामाकूल !" प्रभा ने दांत भींच कर कहा और कमरा छोड़कर बाहर निकल गई।
उसके पीछे-पीछे शुभा भी चली आई।
"उन्होंने सुन लिया होगा," उसने कहा।
"सुनने दे। यह आदमी आखिर यहां रहता क्यों है, काम-धाम कुछ करता नहीं···"
"पिताजी उसे काम दिलवाने का कोशिश कर रहे हैं।"
"पिताजी कर रहे हैं ! और वह खुद क्या कर रहा है ?"
"तू उनसे इतना चिढ़ती क्यों है ? मम्मी तो···"
"अच्छा, तू जानती है," प्रभा ने बात काट कर कहा, "कामरूप की औरतें आदमी को भेड़ा बनाकर रख लेती हैं।"
"हां···तो ?"
"हमारी ममी ने इस आदमी को औरत बनाकर रख लिया है।"
शुभा ने हंसना चाहा पर हंस नहीं पाई।
"अगर ये चले गये तो हम में से एक को कालेज छोड़ देना पड़ेगा," उसने धीमे से कहा।
"ओह ! तो इसीलिए यह तुझे पसन्द है।"
"मुझे ? नहीं-नहीं···मुझे पसन्द नहीं है···" शुभा ने कहा।
"क्यों नहीं है ?"
"पता नहीं···मैंने कभी उसके बारे में सोचा ही नहीं···" शुभा जिरह से परेशान होकर बोली।
"क्यों नहीं सोचा ?"
"पता नहीं···तू हर बात के पीछे क्यों पड़ जाती है ?"
"तू हर बात के प्रति उदासीन क्यों रहती है ?"
"मैं···"
"इस तरह अपने में डूबे रहना अच्छा नहीं होता, शुभा।"
शुभा की आंखों में आंसू आ गए।
"प्रभा," उसने कहा, "मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता।"
"तो उस के लिए कुछ करती क्यों नहीं ?"
"तुझे पता है," शुभा बोली, "पिताजी उसे कभी काम नहीं दिलवाएंगे।"

"शुक्लजी को ?"

"हां। काम दिलवा देने से वह हमारे किसी काम का जो नहीं रहेगा।"

प्रभा ने चौंककर उसकी तरफ़ देखा।

"तू भी जानती है ?" उसने कहा।

"उसके हाथ में घर की तमाम चाभियां रहती हैं। एक दिन सारा रुपया-पैसा लेकर भाग जाए तो अच्छा हो !" कहकर शुभा प्रभा को वहां छोड़, घर से बाहर दौड़ गई।

"पागल," प्रभा कहती रह गई, "इस तरह भी भला कभी कुछ होता है।"

मरा वह शुक्ल, प्रभा ने याद करके कोसा। पूरा पैरासाइट है। आई हेट पैरासाइट्स ! पर···असल में पैरासाइट कौन है, हम या वह ?

विमल ने कहा था—पैरासाइट्स ! तुम लोग वाक़ई पैरासाइट्स हो ! प्रभा ने कसमसा कर याद किया।

"तो गोली मार दो हमें," तमक कर प्रभा कह उठी थी।

"मारेंगे। समय आने पर," विमल ने शांत स्वर में कहा था।

"क्यों, तब तक सोने के अण्डे दिलवाने हैं क्या ?"

"अरे लड़ो मत," काजल दी खिलखिला कर हंस पड़ी थीं, "सोने के अण्डे देने वाली बत्तख को भला कौन मारेगा।"

वे लोग काजल के घर बैठे थे। कुछ दिन हुए काजल ने हॉस्टल छोड़ दिया है। कालेज के पीछे की बस्ती में दो कोठरियां किराये पर लेकर रहती है। एक में ठसाठस किताबें भरी पड़ी हैं, दूसरी में काजल सोती-बैठती है और युवा लड़के-लड़कियों को लेकर बहस करती है। मिस बनर्जी से काजल दी बन चुकी है। प्रभा हर तीसरे चौथे दिन आती है। किताबों की कोठरी में बैठकर पढ़ा करती है या दूसरे कमरे में बहस में हिस्सा लेती है। मार्क्स, लेनिन, माओ, चे-गुएवारा, और भगतसिंह··· काजल दी भगतसिंह पर किताब लिख रही हैं, फ़ाइल पढ़ने को मिल जाती है···यही विषय है, पढ़ाई के और बहस के भी।

कितने लोगों से प्रभा इस कोठरी में मिल चुकी है पर विमल दत्त आज पहली बार मिला है।

पहली बार मिला था···

काजल की बात खत्म होने पर विमल ने कुछ अचरज से पूछा था, "आप क्या पैसों की बात कर रही है ?"

"नहीं, क्रांति की," काजल ने कहा था, "हमारे लिए सोने के अंडे पैसे नहीं, कारतूस हैं।"

"मैं समझा नहीं।"

"प्रभा को सिखलाओ तो सही, तुम से अच्छी निशानेबाज बनेगी। बल्कि मुझे तो डर है, कहीं तुम ज्यादा ही न पिछड़ जाओ।"

"असम्भव!" विमल दत्त ने कहा था।

"हां," प्रभा ने फ़ौरन बात पकड़ ली थी, "हर कायर के शब्दकोश में यह शब्द जरूर रहता है," उसने कहा था।

विमल दत्त हा-हा करके इतनी जोर से हंसा कि प्रभा दंग रह गई।

"अच्छा तो आप हंस भी सकते हैं। मैंने तो सोचा था…" उसने कहा।

बीच मंझधार विमल की हंसी हठात् रुक गई। चेहरा एकदम तन गया। माथे की त्यौरियां चढ़ गईं। किसी दूसरे आदमी की आवाज में उसने कहा, "क्या सोचा था ?"

प्रभा घबरा गई। मजाक भूल गई।

"कुछ नहीं," डरे से स्वर में उसने कहा।

विमल का चेहरा सिकुड़ उठा। आक्रोश की स्याही उस पर पुत गई है, वह बहुत ही क्रूर और जिद्दी आदमी मालूम पड़ने लगा।

"कम-अज-कम हंसने का अधिकार तो सबके पास है," उसने इतने तीखे तंज के साथ कहा कि प्रभा तिलमिला गई और जिन्दगी में शायद पहली बार उसका मन शुभ्रा की तरह रोने-रोने को हो गया।

तभी काजल ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया और उसके कान में फुस-फुसा कर कहा, "परेशान मत हो। विमल भीषण अभिनेता है। जात्रा पार्टी में दो साल थियेटर कर चुका है।"

प्रभा की जान में जान आई और वह जोर से हंस दी।

"क्या है ?" गहरी भर्त्सना के साथ विमल दत्त ने पूछा।

"कुछ नहीं," प्रभा ने कहा, "बिना कारण हंसने का अधिकार सब को है।'

उसका वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था कि विमल का चेहरा एकदम पिघल गया और सोलह साल के लापरवाह छोकरे की तरह वह हा-हा कर हंस दिया।

प्रभा के बदन में फुरफुरी आ गई।

यह एक आदमी है या चार-पांच एक साथ!

विमल…विमल दत्त…दत्त…विमलेन्दु दत्त। पता नहीं यह उसका असली नाम है भी या नहीं। कुछ भी तो अपने बारे में नहीं बतलाता। और प्रभा है कि सब कुछ जान लेना चाहती है।

"तुम्हारे माता-पिता कहां हैं ?" एक दिन प्रभा ने पूछा था।

"नहीं हैं," विमल ने कहा था।

"ओह! कब से नहीं हैं ?"

"कभी नहीं थे।"

"क्या मतलब ?"

"जिसके मां-बाप नहीं होते, उसकी क्लास भी नहीं होती, इसलिए नहीं है।"

"तो तुम पैदा कैसे हुए ?" प्रभा हंसी।

"अपने गांव के ऊंचे खजूर से गिरा और···और था !" पूरी गम्भीरता के साथ विमल ने कहा।

"तुम्हारा गांव कहां है ?"

"जहां ऊंचा खजूर का पेड़ है।"

"खजूर का पेड़ कहां है ?"

"मेरे गांव में।"

बस···बात खत्म हो गई थी। यह शुभा उसके बारे में क्या जानती है, सहसा प्रभा को खयाल आया। कितना जानती है ? कैसे ? पूछना चाहिए था उससे। आने दो वापिस, आते ही पूछेगी।

"तुम करते क्या हो ?" एक और दिन प्रभा ने विमल दत्त से पूछा था।

"तैयारी।"

"किस की ?"

"जो मुझे करना है, उसकी।"

"तुम्हें क्या करना है ?"

"कोशिश।"

"किसकी ?"

"करने की।"

"क्या ?"

"जो मुझे करना है।"

"तुम तो ऐसे जवाब दे रहे हो जैसे मैं कोई खुफ़िया पुलिस अफ़सर हूं," प्रभा ने कहा था।

विमल दत्त का चेहरा प्लास्टर से गढ़ी मूर्ति की तरह निस्पन्द, निर्जीव, अभेद्य हो गया था।

"अभ्यास···निरंतर अभ्यास !" बहुत देर बाद उसने धीमे से कहा था।

पीछे नहीं रहूंगी मैं, हजारवीं बार प्रभा ने अपने से प्रतिज्ञा की। एक दिन मुझे साथ आने को कहना ही होगा, विमल दत्त !

३

विमल दत्त से कब मुलाक़ात होगी, कुछ ठिकाना नहीं रहता।

रोज़-रोज़ जाकर बाउन दी के घर बैठे रहो, दुनिया-भर के लोगों के साथ बहस करो, तब एक दिन···अचानक···विमल आ पहुँचेगा···कभी हफ़्ता गुज़र चुका होगा, कभी महीना, कभी एक ही दिन।

आएगा, बैठेगा और मन हुआ तो एकदम मनचले स्टूडेण्ट की तरह कह उठेगा, "क्यों प्रभा, कॉफ़ी पीने चलोगी?"

यूनिवर्सिटी के कॉफ़ी हाउस में कॉफ़ी पीते हुए ही देखा था, शुभा ने उन्हें।

उस दिन पूछ लिया था शुभा से प्रभा ने, विमल दत्त के बारे में वह कैसे जानती है।

"डाक्टर जैन ने बतलाया था," शुभा ने कहा था।

"डाक्टर जैन? उनके साथ नाटक किया था उसने?"

"हाँ, किया था एक बार।

"तू भी थी?"

"नहीं-नहीं, वह तो दो साल पहले की बात है।"

"और अब तक डाक्टर जैन को याद है? इतना लाजवाब अभिनय था?"

"था तो। पर ख़ास वह बात नहीं है।"

"फिर बतला न, क्या बात है। पेट में क्यों रखे हुए है?"

"डाक्टर जैन कह रहे थे वह···दो साल पहले वह एम.ए. बीच में छोड़कर भाग गया था···"

"कहाँ?"

"बंगाल।"

"तो?"

"प्रभा, वह वहाँ एक साल की जेल काट कर आया है," शुभा ने कह ही डाला।

"बस यही बात है। तो कहते हुए तेरी ज़बान क्यों ऐंठ रही है? एक साल की जेल तो पिताजी तक काट आए हैं।"

"वह दूसरी बात है।"

"क्यों?"

"वह स्वतंत्रता के लिए विदेशी सरकार से लड़ रहे थे।"

"और विमल दत्त?"

"डॉक्टर जैन कह रहे थे, मिदनापुर ज़िले के किसी गांव में उसने किसानों को उकसा कर गड़बड़ करवाई थी।"

"कैसी गड़बड़?"

"गांव में जिस ज़मीन पर खेती नहीं होती थी, उस पर उन लोगों ने ज़बरदस्ती कब्ज़ा कर लिया…"

"और खेती शुरू कर दी?"

"हां।"

"तो इसमें ग़लत क्या है?"

"सवाल ग़लत होने का नहीं, ग़ैरक़ानूनी होने का है।"

"और अगर क़ानून ग़लत हो?"

"मैं नहीं जानती।"

"क्या नहीं जानती? ग़लत क़ानून बदला जाना चाहिए या नहीं?"

"हां।"

"और ग़लत सरकार?"

"हां।"

"ग़लत सामाजिक व्यवस्था?"

"हां।"

"फिर?"

शुभा चुप रही।

"प्रतिनिधि सरकार जैसी कोई चीज़ नहीं होती," प्रभा ने कहा, "पांच साल में एक बार चुने जाने पर कोई एक आदमी लगातार सब का प्रतिनिधित्व कैसे कर सकता है? और फिर सत्ता का नशा होता ही ऐसा है कि हाथ में आते ही आदमी सिर्फ़ अपने स्वार्थ के लिए काम करने लगता है। न भी करे तो देश की अर्थव्यवस्था बदले बग़ैर वर्ग-भेद मिट ही नहीं सकता। देश के अधिकांश लोग शोषित और ग़रीब बने ही रहेंगे। पूंजी-रहित श्रम को बेचने वाला आदमी गुलाम से सिर्फ़ एक मायने में फ़र्क होता है—यह कि वह अपना मालिक तब्दील कर सकता है। मालिक उसे नहीं बेचता; वह खुद, खुद को बेचने पर मजबूर होता है…"

"गुलामों की कमी रूस में भी नहीं है," सहसा शुभा ने कहा, "वहां तो क्रांति हो चुकी। उनकी 'बेगारी' के बारे में नहीं पढ़ा?"

"वह सब अन्तर्कालीन समय में होना पड़ता है। क्रान्ति होने पर पुरानी सामाजिक व्यवस्था बिलकुल टूट जाती है पर नई व्यवस्था स्थापित होने में समय लगता है।

जब तक नये और पुराने का संघर्ष चलता रहता है, लड़ाई में पूरी तरह विजय पाने के लिए जरूरी हो जाता है कि पार्टी सेना की मदद से शासन करे। एक बार आर्थिक समानता स्थापित हो जाने पर लाभ के लिए श्रम करने की प्रवृत्ति का ह्रास हो जाता है और एक समय वह आता है जब किसी प्रकार के दमन या बल-प्रयोग की आवश्यकता नहीं रहती।"

"कब, प्रभा ? कब आता है यह समय ? आज तक आया है किसी देश में ?"

"नहीं, पर आएगा जरूर।

"कब ?"

"यह हम नहीं जानते। एक कदम उठाते ही आदमी पहाड़ की चोटी पर नहीं पहुंच जाता। इसलिए क्या कदम बढ़ाना ही छोड़ देना होगा ?"

"अगर पहाड़ की चोटी मिथ हो, यूटोपिया हो ?"

"तो उससे कुछ नीचे डेरा डालना होगा।"

"एक सपने के लिए पूरा समाज नष्ट कर दोगे ?"

प्रभा लम्हे-भर को चुप हो गई, फिर बोली, "तूने सपनों में विश्वास कब खोया ?"

शुभा कुछ कह नहीं पाई।

"जिन्दगी से भाग कर सपनों में शरण लेने से कहीं अच्छा है, सपने को पाने की खातिर जिन्दगी होम कर दो," प्रभा ने ही कहा।

"पाने की उम्मीद हो तब तो।"

"उम्मीद नहीं, विश्वास है।"

"शुभा ने और तर्क नहीं किया। वह अपने में गर्क हो गई। कुछ देर बाद, गुन-गुन करके उसने कहा, "विश्वास···उम्मीद···चिन्ता···किसी से कुछ नहीं होता। नेगेटिव हमेशा पॉजिटिव पर हावी रहता है और धुंधलका कभी नहीं छटता···"

प्रभा ने चौंक कर उसकी तरफ देखा, पूछा, "नाटक का संवाद बोल रही है ?"

"नाटक ही तो है, "शुभा ने कहा, "तुम चाहे जितना भी तेज दौड़ो, वहीं खड़े रहते हो क्योंकि समय तुम से तेज भागता है।"

"पेसिमिस्ट !" प्रभा ने कहा था और उसे छोड़, विमल दत्त में डूब गई थी।

दो महीने हो गए, विमल दत्त से मिलना नहीं हुआ।

प्रभा रोज काजल के घर जाती है।

पहले की तरह किताबें पढ़ती है, बहस करती है पर···

"विमल दत्त आजकल नहीं आता ?" काजल से पूछा भी है कई बार।

"हां···आया नहीं तो···" काजल ने उत्तर दिया है।

काजल आजकल अनमनी-सी रहती है।

प्रभा नहीं जानती पार्थ को लेकर उसका केस हाई कोर्ट में तय होने वाला है।

"विमल दत्त लौटकर आएगा तो ?" प्रभा पूछती है।

काजल परेशान हो उठती है।

"लौटने पर आएगा," वह कहती है।

प्रभा नहीं जानती विमल दत्त कहां है। कहीं दो साल पहले की तरह किसी दूर-दराज जिला-जेल में बन्द तो नहीं।

"आप जानती हैं, विमल दत्त कहां है ?" वह काजल से पूछती है।

"नहीं," काजल का कहना है।

"जेल में हैं तो मुझे वतला दीजिए, प्लीज़।

"नहीं। तव खवर आ जाती।"

"खवर आने पर मुझे वतलाएंगी न ?"

"अच्छा, वतला दूंगी।"

विमल दत्त और उसकी खवर, अव प्रभा को दोनों का इन्तजार है।

दो महीने की असफल प्रतीक्षा के वाद आदत पड़ने लगी थी कि काजल के कमरे में घुसते ही विमल दत्त पर नजर पड़ी। उसका चेहरा घनी दाढ़ी-मूंछ के पीछे छिपा था पर प्रभा देखते ही पहचान गई।

उसका मन हुआ, दौड़ कर वांहें उसके गले में डाल दे और कहे, विमल—विमल विमल !

वह न सही···

उसके पास तख्त पर वैठ तो गई और ढेर सारी खुशी स्वर में उंड़ेल कर वोली, वहुत दिनों वाद दिखे हो आज।"

"हां," विमल ने कहा।

"कहां चले गए थे ?'

"वाहर।"

"अव तो रहोगे न कुछ दिन ?"

"शायद।"

"जाओगे कहां ?"

"वाहर।"

"तुम्हें मुझ पर विल्कुल विश्वास नहीं है ?" आखिर उसका धीरज टूट गया।

"नहीं," सहज स्वर में विमल ने कहा।

"पर क्यों ?"

"क्योंकि अपने दर है।"

"तुम अकेले देश में क्रान्ति लाओगे ?"

"नहीं।"

"और लोग भी होंगे ?"

"कौन लोग ?"

"मेरी तरह के लोग।"

"मैं उनमें से एक नहीं हो सकती ?"

विमल दत्त के भारी पपोटे नीचे गिर गए और आंखों की पुतलियों पर परदा हो गया। फिर भी प्रभा को लगा पपोटों के नीचे से वह बहुत गहरी दृष्टि से उसे तोल रहा है।

"क्रान्ति मे विश्वास है ?" विमल दत्त ने पूछा।

"हां।"

"अपने पर ?"

"हां।"

"मुझ पर ?"

"हां।"

"नही होना चाहिए !" बिच्छू की तरह बिमलेन्दु दत्त की आवाज ने डंक मारा। खटाक से पपोटों का परदा उठ गया। काली पुतलियों की सीधी मार से प्रभा घबरा गई।

"पर···" उसने कहा।

"तुम्हे क्रान्ति नही, मुझ पर विश्वास है ! तुम मेरे करीब रह कर काम करना चाहती हो !"

डंक पर डंक !

"नही," प्रभा ने प्रतिवाद किया।

"तुम क्रान्ति नही मुझे चाहती हो !"

"झूठ है !" आहत अहम् ने प्रभा की आवाज मे ललकार ला दी, "मैं नेता से विश्वास चाहती हूं। तुम नेता हो तो तुमसे। कोई और है तो उससे। तुम मेरे लिए कुछ नहीं हो।"

विमल दत्त के पपोटे फिर पुतलियो पर आ टगे। वह चुप बैठा रहा।

प्रभा कुछ कहने को कसमसाती रही पर उसकी चुप्पी तोड़ने का साहस नहीं हुआ।

"गोली चलाना सीखोगी ?" बहुत देर बाद विमल ने बदली हुई आवाज में कहा।

"हां," प्रभा ने फ़ौरन कहा।

"ठीक है। राइफ़ल क्लब ज्वाइन कर लो।"

"राइफल क्लब ?" प्रभा भौंचक थी, "तुम नही सिखाओगे ?"

"अपने पिताजी से कहना तुम्हें सदस्य बनवा दें।

'तुम···"

'सीख लो तब बतलाना।"

"पर···कैसे ?"

"काजल दी से कहना, वे मुझसे कहलवा देंगी।"

प्रभा ने राइफ़ल क्लब के बारे में मालूम किया। पता चला, वह शहर के रईसज़ादों का शौक़िया क्लब है, जहां मोटी फ़ीस अदा करके वे सदस्य बनते हैं और दिल्ली के 'रिज' पर राइफ़ल चलाना सीखते हैं। बाप-दादा कभी शिकार खेला करते थे, बेटे-पोते सिर्फ़ निशाना लगाते हैं।

प्रभा को सदस्य बनने में कोई दिक़्क़त नहीं हुई। उससे पहले भी दो-चार लड़कियां सदस्य थीं। अविजित से कहना भी नहीं पड़ा। बस फ़ीस के रुपये मांगे, जो बिला कारण पता किये फ़ौरन मिल गए।

जिस पैशन के साथ उसने राइफ़ल चलाना और निशाना साधना सीखा, उससे क्लब के शौक़ीन सदस्य ही नहीं, शिक्षक तक दंग रह गए।

"अरे, प्रभा बंसल," एक शिक्षक कह उठा, "तुम तो राइफ़ल चलाना ऐसे सीख रही हो जैसे इसके बिना तुम्हारी शादी नहीं होगी।"

"क्या करूं ?" प्रभा ने कहा था, "मेरा मंगेतर शादी के लिए तैयार ही नहीं हो रहा। अब बन्दूक की नली के ज़ोर पर मनवाना पड़ेगा।"

नाचती-थिरकती प्रभा काजल के कमरे में घुसी।

"बुल्स आई ! बुल्स आई ?" वह कहे जा रही थी।

"क्या हुआ ?" काजल ने किताब पर से सिर उठाकर पूछा।

"मेरी गोली ठीक निशाने पर लगी। मैं सर्वप्रथम आई हूं," प्रभा ने उल्लसित स्वर में कहा।

"खड़े निशाने पर ?" काजल ने पूछा।

"हां।"

"घूमते हुए निशाने पर मार लो, तब बतलाना," काजल ने सख्त स्वर में कहा और दुबारा किताब पढ़ने लगी।

हतप्रभ प्रभा कुछ देर चुप खड़ी रही, फिर धीरे से बोली, "आपने मुझे बधाई तक नहीं दी।"

"तुम गोली चलाना क्यों सीख रही हो ? " काजल ने एकदम पूछा।

"विमल दत्त ने कहा था।"

"क्यों कहा था, जानती हो ?"

"कुछ-कुछ।"

"देखो प्रभा, पूरी तरह किसी चीज़ को जाने बग़ैर उसमें हाथ नहीं डालना चाहिए।"

"मैं जानना चाहती हूँ, काजल दी।"

"सच? डर नहीं है?"

"नहीं।"

"मोह? लगाव? प्यार?"

"किससे?"

"तुम्हारी पूरी ज़िंदगी तुम्हारे सामने है, प्रभा। तुम सुन्दर हो, पढ़ी-लिखी हो, तुम्हारे पिता के पास पोज़ीशन है, पैसा है। तुम जो करना चाहो कर सकती हो, ज़िंदगी को भरपूर जी सकती हो।"

"आपकी तरह?" प्रभा ने कहा।

आहत काजल चुप हो गई। फिर धीमे से हंसी, बोली, "मुझसे कहीं अच्छी तरह।"

"मैं वह सब नहीं चाहती, काजल दी।"

"फिर क्या चाहती हो? विमल के पीछे जाने से तो कुछ भी नहीं मिलेगा। पूरे देश में क्रान्ति लाने के लिये बहुत बड़ी संगठन-शक्ति चाहिए। वह हमारे पास नहीं है। देश के किसी एक कोने में चिनगारी-भर सुलगा सकते हैं हम, इस उम्मीद में कि भड़क कर वह फैलती चली जाएगी।"

"उम्मीद नहीं, विश्वास कहिए, काजल दी।"

"सोचने की बात यह है, प्रभा, कि यह ज़रूरी नहीं है कि तुम इस आग को फैलते हुए देख पाओ। शायद उससे बहुत पहले किसी बीहड़ जंगल या पहाड़ी पर गोली खाकर मर चुकी होगी या कहीं दूर, उपेक्षित जेल की सी-क्लास की अंधी कोठरी में ठुंसी होगी और···कोई कभी तुम्हारा नाम तक नहीं सुनेगा।"

"यह सोचने की नहीं, जानने की बात है, काजल दी।"

"जानती हो?"

"हां।"

"ठीक है," काजल ने कहा, "घूमते हुए निशाने पर गोली मार लो, तब बतलाना।"

"आप विमल से कह देंगी?"

"अभी नहीं। उसके बाद।"

"ज़्यादा दिन रुकना नहीं पड़ेगा," आत्म-विश्वास के साथ प्रभा ने कहा।

"ठीक है।"

"पर···" प्रभा मायूस हो गई, "विमल दत्त को मुझ पर विश्वास नहीं है।"

"यह काम ही ऐसा है," काजल का स्वर कुछ कम सख्त हो गया, 'तूने तो इतना पढ़ा है। याद है न, आज़ाद ने भगतसिंह के पकड़े जाने पर मुखबिर बन जाने की गलत खबर सुनकर क्या कहा था? 'कभी मैं पकड़ा जाऊं तो भी तुम लोग दल की सुरक्षा के लिए स्थान आदि बदल लेना, भावुकता में आकर मुझ पर विश्वास करके बैठे मत

रहना।' याद है न ? हम लोग जितना कम जानें उतना ही अच्छा है।"

"फिर भी साथ लेने का आश्वासन···"

"नहीं दे सकते। सिर्फ़ समय आने पर आदेश दे सकते हैं···"

"पालन कर सकेंगे, यह विश्वास तो चाहिए ?"

"हो जाएगा। मेरे कहने से नहीं। तुम्हारे करने से। जब होना होगा, तब। पहले नहीं।"

"यही सही।"

दोनों काफ़ी देर तक चुपचाप बैठी रहीं, फिर काजल ने कहा, "अपने पिताजी से कहना, एक बार मुझसे मिल लें।"

"कब ?"

"जितनी जल्दी हो सके।"

"कह दूंगी," प्रभा ने कहा। मन में सोचा किस क़दर बदल गई है काजल दी। पिताजी का नाम लेते हुए आंखों में चमक तक अब नहीं आती।

दुखी मन प्रभा सड़क पर चली जा रही है। विमल दत्त साथ है फिर भी।

वह परीक्षा में पास तो हुई पर दूसरे नम्बर पर।

विमल दत्त ने उसे निशाना लगाते देखा है और कहा है, "नॉट बैड।"

नॉट बैड, बीसियों बार प्रभा दुहरा चुकी है···काश, उसने विमल के बारे में न सोचकर सिर्फ़ निशाने के बारे में सोचा होता।

दृश्य अब भी आंखों के सामने है···

हवा में बंधी लम्बी डोरी। बीच में झूलती मूंठ वाली पतली डन्डी। मूंठ पर बंधा गुब्बारा। एक बार घुमाकर छोड़ने से डन्डी पेन्डुलम की तरह घूमती चली जाती है। नीचे लटके झूलते सिरे को गोली का निशाना बनाना है···

प्रभा के हाथ राइफ़ल पर हैं · डन्डी का मूंठ हवा में झूल रहा है···दाएं-बाएं-वापिस दाएं।

प्रभा की बग़ल में विमल दत्त बैठा है।

मूंठ पर निशाना लगेगा—ठांय ! गुब्बारा फूट जाएगा···विमल दत्त तब क्या कहेगा, प्रभा सोचे जा रही है···

देखो, विमल देखो, मुझे निशाना लगाते देखो, उसने मन-ही-मन पुकारा है, राइफ़ल को कन्धा दिया है, निशाना साधा है और ट्रिगर दबा दिया है।

धांय ! गोली छूटी है···हवा में कम्पन हुआ है···फूला गुब्बारा सुरक्षित लटका है···प्रभा को घुमेर आ रही है···विमल दत्त चुप है···निशाना चूक गया !

एक बार और, प्रभा ने सुना है, अपने को सम्भाला है और दुबारा राइफ़ल तान

ली है।

हां, वह है···हवा में बंधी डोरी···डोरी से लटकती डन्डी···डन्डी के सिरे पर बंधा गुब्बारा। हवा में झूलता गुब्बारा···दाएं-बाएं वापिस दाएं। अघोर शून्य में तैरता गुब्बारा। गुब्बारा-गोली-गुब्बारा! गुब्बारा···गुब्बारा···

ठांय! गोली छूट गई है।

मूंठ नंगा झूल रहा है···चिथड़े-चिथड़े गुब्बारा उड़ गया है। विमल दत्त कह उठा है, "नॉट बैड।"

प्रभा ने राइफल नीची कर ली और खिसियाए मन से सोचा, काश, निशाना पहली बार में ठीक बैठा होता। काश, मैंने विमल दत्त के बारे में न सोच कर सिर्फ़ निशाने के बारे में सोचा होता।

कल प्रभा कितनी खुश थी। विमल दत्त ने कहा, "कल तुम्हें निशाना लगाते देखेंगे।"

काजल दी से खबर पाकर विमल दत्त उनके कमरे में उनसे मिला था। इस बार तीन साथी भी थे।

"अपने पिताजी से क्या कहा था, गोली चलाना क्यों सीखना चाहती हो?" आते ही विमल दत्त ने पूछा था।

"कुछ नहीं कहा। सिर्फ क्लब में भरती होने के लिए पैसे मांगे थे," प्रभा ने कहा।

विमल दत्त के चेहरे पर आश्वस्ति का भाव झलक आया।

तभी एक साथी बोल उठा, "आपके पिताजी तो काफी पैसे वाले आदमी हैं।"

स्वर के उपहास से चौंक कर प्रभा ने उसकी तरफ़ देखा। कम-उम्र लड़का है, गोरा, शायद सुन्दर। इस वक्त ओंठों में व्यंग्य की मुरकी है, आंखों में आक्रोश की लपट। अगला चुभता वाक्य उछालने को बेक़रार चेहरा विकृत हो उठा है।

"नहीं तो," उसने सकुचित होकर कहा।

"क्यों, सिंघानिया मिल्स में मैनेजर नहीं हैं?" उसका बात खत्म होने से पहले ही वाक्य उछल आया।

"हैं तो," प्रभा और संकुचित हो उठी।

"हम लोग तो आपको बिल्कुल जंगली दिखलाई दे रहे होंगे," अपमान करने की नीयत से उसने कहा।

"नहीं, आप लोग नहीं," प्रभा ने तड़प कर कहा, "सिर्फ आप!"

"यहां क्या कैबरे होने वाला है जो अमीर बाप की बेटियों को निमन्त्रित किया जा रहा है," तिलमिला कर युवक ने काजल की तरफ़ रुख किया।

"नाहक क्यों गरम होते हो, कामरेड अनिल," काजल ने धीमे से कहा, "उसके बाप ने उसे पैदा किया है, उसने अपने बाप को नहीं।"

"मैं पूछता हूं···" अनिल ने उग्र स्वर में कहना शुरू किया।

"जरूरत नहीं है!" विमल दत्त के बर्फ़ीले स्वर ने उसे काट दिया।

अनिल के ओंठ फड़के पर आवाज़ नहीं निकली।

"कल हम लोग इनको निशानेबाज़ी देखने चलेंगे। मैं और···"

प्रभा बहुत डर गई। अब वह कहेगा 'तुम' और अनिल फटाक से कह उठेगा—मैं नहीं जाऊंगा। फिर क्या होगा!

विमल दत्त ने चुप्पी को खिंचने दिया। वार करने को उद्यत अनिल सिकुड़ने लगा।

"···और कामरेड कैलाश," विमल दत्त ने दूसरे साथी का नाम लेकर वाक्य पूरा कर दिया।

कैलाश की आंखें बन्द थीं। प्रभा का खयाल था, वह सो रहा है। अपना नाम सुन कर भी उसने पूरी तरह उन्हें नहीं खोला। बस दाईं आंख की पलक कुछ उठी और झपक गई।

"सुबह दस बजे, यहीं मिलेंगे," विमल ने प्रभा से कहा।

कैलाश के मुंह से हां-ना सुनने की शायद जरूरत नहीं थी।

आज सुबह विमल दत्त और कैलाश को देखा तो प्रभा दंग रह गई। वही विमल और कैलाश हैं जिन्हें कल देखा था या किसी नवधनिक के आलसी, उदासीन और विलासप्रिय पुत्र!

"बहुत बढ़िया सूट पहना है," उसने हंस कर विमल से कहा।

"थैंक्यू," विमल ने शुद्ध अंग्रेजी लहज़े में लापरवाही से कहा, "बुरा नहीं है।"

कोट की जेब से उसने खुशबूदार रूमाल निकाला, पैन्ट की जेब से सिगरेट केस और लाइटर। रूमाल ओठों से छुआ कर, एहतियात के साथ वापिस जेब में डाला, सिगरेट केस खोला और खुद लेने से पहले प्रभा के आगे करके पूछा, "लेंगी?"

"जी नहीं, शुक्रिया," प्रभा ने कहा।

सुस्त अदा के साथ विमल ने सिगरेट जलाई, केस और लाइटर जेब के हवाले किया और शिथिल भाव से खड़े होकर कहा, "शैल वी गो?"

प्रभा ठठा कर हंस दी। "ओ विमल!" उसने कहा।

"क्लब में मैं आपके मेहमान की तरह जा रहा हूं," विमल दत्त ने बिना मुस्कराये कहा "मेरा नाम भानुसिंह देव है।"

"भानुसिंह देव?"

"हां, और यह हैं कैलाश राव।"

"भानुसिंह देव क्यों?" प्रभा ने पूछा।

विमल दत्त ने उत्तर नहीं दिया। उसकी काली पुतलियां पपोटों की ओट हो

गई।

"सॉरी," प्रभा ने कहा, "क्यों नहीं पूछना चाहिए।"

विमल चुप रहा। कैलाश तो वैसे ही बुत बना बैठा था। आंखें मुंदी थीं। बस ओठों से लगी सिगरेट बराबर धुम्रा बाहर फेंक रही थी, उसी से जाहिर होता था कि वह सो नहीं, जाग रहा है।

क्लब में भानुसिंह देव और कैलाश राव की धाक जम गई।

सेक्रेटरी साहब ने खुद उन्हें पूरे क्लब का दौरा करवाया; राइफ़लों-बन्दूकों में उनकी दिलचस्पी देख कर खूब बखान करके क्लब का 'शस्त्रागार' दिखलाया और प्रभा का बार-बार शुक्रिया अदा किया कि ऐसे ऊंचे क़िस्म के मेहमानों को क्लब में लेकर आई।

राइफ़लें रखने के तालाबन्द कमरे में उन्हें ले जाकर सेक्रेटरी साहब ने तकल्लुफ़ के साथ कहा, "ये तो मामूली राइफ़लें हैं पर हमारे पास कुछ नामी बन्दूकें भी हैं।"

"नामी बन्दूकें?" प्रभा ने कहा।

"मेरा मतलब नामी सदस्यों की बन्दूकें जो उन्होंने क्लब को भेंट कर दीं…यह महाराजा छतरपुर की बन्दूक है…"

"मामाजी की…" कैलाश ने जम्हाई लेकर कहा।

"आप उनके भांजे हैं?"

खिड़की के पास पहुंच कर कैलाश दीवार का सहारा लेकर खड़ा हो गया। अलसाये स्वर में बोला, "मैंने सोचा था यह बन्दूक वे मुझे देंगे," और अपनी अधमुंदी आखें उसने पूरी तरह मूंद लीं।

कमरे से बाहर आने पर प्रभा ने उससे पूछा था, "अगर वह महाराजा छतरपुर को जानता होता तो…?"

"तो क्या?" कैलाश ने कहा था, "जितना आमतौर पर लोग अपने मामाओं को जानते हैं, उससे कुछ ज्यादा ही मैं अपने मामा को जानता हूं।"

"महाराजा छतरपुर सचमुच आपके मामा हैं?"

"जी।"

"तो…अमीर बाप के बेटे भी क्रांतिकारी दल में शामिल हो सकते हैं…"

"सुना नहीं था, काजल दी ने कहा था, मेरे बाप ने मुझे पैदा किया है, मैंने अपने बाप को नहीं।"

"समझ गई। काजल ने आप ही के मुंह से सुना होगा।"

"आप बोर हो रहे हैं?" कमरे के अन्दर कैलाश को आखें मूंदे देख कर सेक्रेटरी साहब ने पूछा था।

कैलाश पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई थी।

"यह डबल-बैरल किसकी है ?" विमल दत्त ने पूछा।

"यहां के अंग्रेज कमिश्नर साहब की है। बड़े मशहूर शिकारी थे।"

"थे ?" प्रभा ने कहा, "अब क्या हुआ, मर गए ?"

"नहीं, हिन्दुस्तान छोड़कर चले गए।"

"१९४७ में जाना पड़ा होगा।"

"हां।"

"हाऊ सैड," विमल दत्त ने निर्लिप्त शिष्टाचार के साथ कहा, "पिताजी उनके शिकार के क़िस्से सुनाया तो करते थे।"

"अच्छा-अच्छा," सेक्रेटरी साहब का स्वर और मधुर हो गया, "क्या नाम है आपके पिताजी का ?"

"खिड़की खोल दीजिए !" कैलाश की आवाज़ ने सहसा सबको चौंका दिया।

"बहुत उमस है," उसने फिर कहा।

सेक्रेटरी साहब ने लपक कर खिड़की खोल दी।

कैलाश उसकी चौखट पर बैठ गया। सिर छड़ों पर टिका कर, आंखें मूंदे-मूंदे शरीर का दबाव उन पर डाला। बिल्कुल बेकार छड़ें हैं, आसानी से निकाली जा सकती हैं, फ़ौरन उसने अन्दाज़ा कर लिया।

"अगली बार झांसी गया तो पिताजी की बन्दूक आपके लिए लेता आऊंगा।" विमल ने कहा, "मैं तो शिकार खेलता नहीं। गांधीजी नामका लेकर हिंसा छोड़ दी थी। अब ये ले आई हैं तो···"

"मैं तो सिर्फ़ निशाना लगाती हूं," प्रभा ने कहा।

"जहां तक निशाना लगाने का सवाल है, हम किसी से कम नहीं···"

काश, मेरा निशाना पहली बार में लगा होता, क्लब से काजल के कमरे की तरफ़ पैदल लौटते हुए, प्रभा ने एक बार फिर सोचा और कनखियों से साथ चलते विमल को देखा। क्या सोच रहा है वह ?

"तुम मुझे गोली मार सकती हो ?" अचानक, बिना प्रस्तावना के, विमल ने कहा।

प्रभा चौंक कर ठिठक गई। विमल दत्त चलता रहा।

फ़ौरन प्रभा ने अपने को सम्भाला और तेज़ी से आगे बढ़ कर उसके साथ हो गई।

"हां," उसने कहा, "ज़रूरत पड़ने पर।"

"ज़रूरत क्यों पड़ेगी ?" विमल ने फटकार कर कहा।

"अगर कभी तुम विश्वासघात करो, तब," प्रभा ने बेधड़क कहा।

"किससे ?"

"दल से। क्रांति के उसूलों से।"

"हिचकोगी नहीं ?"

"नहीं।"

"तब तक काम करो।"

प्रभा का दिल ज़ोर से धड़क उठा पर आवाज़ नहीं कांपी।

"कहो," उसने कहा।

"राइफ़ल क्लब के स्टोर की चाभी चुरा लाम्रो।"

"डुप्लीकेट से काम चलेगा ?" प्रभा ने बिला हिचके पूछा।

"हां।"

"यह लो," प्रभा ने पर्स खोल कर चाभी निकाली और विमल को पकड़ा दी।

बिमल का चेहरा पसीज गया।

कैलाश ने आंखें पूरी खोल ली।

इससे ज्यादा प्रभा को उम्मीद भी नहीं थी।

"महीना भर पहले ही मौक़ा देख कर चाभी का 'वैक्स इम्प्रेशन' ले लिया था और डुप्लीकेट भी बनवा ली थी," उसने कहा।

क़िस्मत से महीना भर पहले अनिरुद्ध दो दिन के लिए दिल्ली आ पहुंचा था।

उसी को चाभी का 'वैक्स-इम्प्रेशन' देकर प्रभा ने कहा था, 'बहुत से चोर-डाकू आपके दोस्त होंगे। मुझे एक चाभी बनवा दीजिए।' और बिला जिरह उसने चाभी बनवा कर ला दी थी।

"किसी को शक तो नहीं हुआ ?" बिमल दत्त ने पूछा।

"नहीं। महीना बीत भी चुका।"

बिमल दत्त ने हाथ बढ़ा कर चाभी ले ली।

"थैंक्यू, कामरेड प्रभा।" उसने कहा।

कामरेड प्रभा !

"थैंक्यू-थैंक्यू-थैंक्यू !" प्रभा ने कहा।

-

आज बहुत दिनों बाद अविजित काजल से मिलने जा रहा है। प्रभा ने कहा था काजल दी ने बुलाया है, जितनी जल्दी हो सके।

उस बात को पन्द्रह दिन बीत गए। रोज़ वह अपने से कहता, काजल ने बुलाया है, जाना चाहिए पर···

काजल के सामने जाने की इच्छा नहीं है या···हिम्मत नहीं हैं?

आजकल कहीं जाने की इच्छा नहीं होती। घर से दफ़्तर और दफ़्तर से घर··· नहीं, वह भी नहीं। घर से दफ़्तर ज़रूर पहुँच जाता है पर दफ़्तर से घर लौटा नहीं जाता····भटकता हुआ क्लब पहुँच जाता है। पागल की तरह टेनिस खेलता है। एक सेट···· दूसरा···उसकी उम्र के लोग एक सेट खेल कर पस्त हो जाते हैं और अविजित है कि ···एक के बाद मशीन से इंसान बनना शुरू करता है।

बदन पसीने से लथपथ हो, सांस चलती हुई दीखने लगे तभी तो पता चलता है, यह रोबो नहीं आदमी है।

दो सेट खेल कर हांफ़ता हुआ कुर्सी में गिर जाता है और एक के बाद एक गिलास बीयर का, हलक में उतार लेता है। थका हुआ शरीर, सोया हुआ दिमाग़, घिरता हुआ अंधेरा···हां, अब घर जाया जा सकता है।

टेनिस कोर्ट पर तेज़ बत्तियां लगी हैं, अंधेरा होने पर भी खेला जा सकता है। अविजित रोशनी का मोहताज नहीं है पर···आख़िर तो घर जाना ही होता है···

क्लब के अन्य खिलाड़ीपरेशान हैं। अच्छा खिलाड़ी अविजित हमेशा से रहा है पर अब तो जैसे न हारने की क़सम खाई है।

एक हारे हुए आदमी की जीत की हवस! बहुत भयानक होती है!

कल डाक्टर बरुनी पांच गेम से हार गए। नाराज़ हो कर बोले," आजकल बहुत आक्रामक टेनिस खेलने लगे हो बंसल। ब्लड-प्रेशर तो चेक करा लिया है न, पैंतालीस की उम्र के बाद ज़रा होशियार रहना चाहिए।"

"आ जाऊंगा एक दिन," अविजित हँस पड़ा था, "आप ही चेक कर दीजिएगा।

"बेकार क्यों वहम डाल रहे हैं, डॉक्टर बख्शी," क्लब के सेक्रेटरी मिस्टर खोसला बोल पड़े, "मिस्टर बंसल का टेनिस हमेशा से बेहतरीन रहा है, स्पीड में नौजवानों को मात करते हैं।"

"आगे मत बोलने दो, बंसल भाई," छटी ह्विस्की की पिनक में मिस्टर आगा बोले, "कहो न ज़ोर से—अभी तो मैं जवान हूँ !"

सब लोग ठठा कर हंस पड़े थे और अविजित सहसा बूढ़ा महसूस कर उठा था। शरीर से नहीं, मन से। टेनिस खेलना महज़ नाटक हो जैसे।

श्यामा इन दिनों बहुत नाराज़ रहती है।

"सारी शाम कहां रहते हो आजकल?" कल भी पूछ रही थी।

"क्लब," उसने कहा था।

"रोज़ ?"

"हां।"

"ताश खेलने लगे हो ?"

"नहीं, टेनिस।"

"आठ बजे तक ?"

"हां।"

"अंधेरे में ?"

"बत्तियां हैं।"

अविजित को नींद आ रही थी। अनमने भाव से छोटे-छोटे जवाब दे रहा था। श्यामा अधीर होती जा रही थी। उसे डर था कि कहीं उसका ध्यान अपनी तरफ़ खींच पाना एकदम नामुमकिन न हो जाए।

"प्रभा-शुभा में से भी कोई घर पर नहीं रहता, "वह कहती गई," मैं अकेली पड़ी रहती हूँ।"

"क्यों, शुक्ल कहां गया ?" अविजित ने उनींदे स्वर में पूछा।

"कहीं नहीं, पर···"

"तुम्हारी तबीयत तो ठीक रही न ?"

"हां, पर··"

"शुक्ल सब जानता है। कोई बात हो तो···"

"तुम्हारी जगह शुक्ल तो नहीं ले सकता !" श्यामा की आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे। मुँह से बोल नहीं निकला।

हतप्रभ अविजित उसे देखता रह गया। ऐसे रोते तो पहले उसे कभी नहीं देखा।

श्यामा रोती है तो ज़ोर से विलाप करके, रुलाने वाले को उसके दोष का पूरा अहसास करा के। इस तरह घुट-घुट कर सिर्फ़ अपने लिए रोते तो उसे पहले कभी

नहीं देखा। चुपचाप बैठा अविजित उसे रोते देखता रहा। पास जाकर चुप कराने की हिम्मत नहीं हुई।

"मैं तो सिर्फ़ इतना कह रहा था कि शक्ल भला आदमी है···," कहते-कहते रुक गया था अविजित।

"अनित्य कहां है आजकल, जानते हो?" काफ़ी देर बाद रुंधे गले से श्यामा ने कहा।

"अनित्य? क्यों, क्या हुआ?" अविजित ने चौंक कर पूछा।

"उसे बुलाना है। बहुत दिनों से देखा नहीं।"

"तुम्हारे पास उसका पता है?"

"नहीं।"

"खत भीन हीं आया?"

"नहीं।"

"पिछली बार आया तो ढंग से बैठ कर पांच मिनट बात भी नहीं हुई," श्यामा ने कहा, "कुल एक दिन तो रहा दिल्ली में, वह भी दुपहर बाद घर में घुसा नहीं और सारी सुबह प्रभा न जाने क्या खुसर-पुसर करती रही···" श्यामा ने नाराज़गी जाहिर की ही थी कि प्रभा कमरे में घुसी।

"आप काजल दी से मिल लिए," अविजित को देखते ही उसने पूछा।

"कहां गई थीं तुम?"

"हां, पूछो इससे," श्यामा के गुस्से को निमित्त मिल गया, "रोज़-रोज़ इतनी देर करके क्यों आती है!"

"आप खुद जो पूछ लीजिए," प्रभा ने कहा।

"पूछ तो रही हूं।"

"जल्दी नहीं आना चाहती इसीलिए देर से आती हूं।"

"प्रभा! यह क्या तरीक़ा है बोलने का! कहां से आ रही हो, काजल के घर से?"

"हां।"

अविजित ने चाहा, पूछे रोज वहीं जाती हो पर···उसने कह दिया, नहीं तो आगे पूछना पड़ेगा, फिर कहां जाती हो···सवालों का एक सिलसिला···नहीं, रहने दो।

"मैं जा नहीं पाया उनके पास। कल जाऊंगा," उसने इतना ही कहा।

प्रभा कमरे से बाहर चली गई।

"प्रभा दिन-पर-दिन ढीठ होती जा रही है। तुम उसे समझाते क्यों नहीं। ऐसे ही चला तो देख लेना, एक दिन कुछ अनर्थ हो कर रहेगा," श्यामा ने कहा।

अविजित चुप रहा।

"एक शुभा है," श्यामा कहती गई, "नाटक के सिवाय कुछ सूझना ही नहीं। अभी तक रिहर्सल से नहीं लौटी।"

अविजित फिर भी कुछ नहीं बोला।

वह जबरदस्त थकान महसूस कर रहा था। नींद से पलकें बोझिल थीं। प्यास से गला सूख रहा था। बदन पसीने से चिपचिपा रहा था। एक-दो गिलास बीयर और पीनी चाहिए थी पर···पी भी लेता तो तरावट टिकती कितनी देर? पता नहीं क्यों घर में घुसते ही प्यास लग आती है···मन हो रहा है ढेर सारा ठण्डा पानी हलक के नीचे उतार कर बिस्तर पर चित लेट जाए। पर श्यामा कुछ कह रही है और उसके बोलते-बोलते उठ जाना···

"खोखी!" श्यामा ने आवाज लगाई।

"हां, ममी," पानी का गिलास हाथ में लिए वह फ़ौरन सामने थी।

दरवाज़े की ओट में खड़ी वह न जाने कब से इन्तज़ार कर रही थी कि श्यामा शान्त हो और वह अन्दर आकर···

पानी का गिलास उसने अविजित के आगे बढ़ा दिया, मुंह से कुछ नहीं कहा।

"पानी में थोड़ा ग्लूकोज डाल कर मुझे दे दे," तभी श्यामा ने कहा, "दिल बैठा जा रहा है।"

ओठों की तरफ़ जाते गिलास को बीच में रोक कर, अविजित ने खोखी की तरफ बढ़ा दिया।

"यह दे दो," उसने कहा।

"आप पीजिए, मैं और ले आती हूं।"

"ओफ्फोह, जल्दी कर!" श्यामा ने कहा।

असमंजस में पड़ी खोखी ने अविजित के हाथ से गिलास ले लिया और उसमें ग्लूकोज मिलाने लगी पर उसकी तरल आंखें अविजित पर टिकी रहीं।

अविजित की प्यास बढ़ती गई।

वह पानी पीने नहीं उठा।

श्यामा का काम निबटा कर खोखी खुद लाएगी। खोखी अब उतनी छोटी नहीं रही। खोखी···क्या नाम है उसका···सुस्मिता बड़ी हो रही है पर प्रभा की तरह अविजित से बड़ी नहीं···

प्रभा तो आजकल ऐसे दीखती है जैसे बीस बरस पहले काजल दीखती थी। वैसी, जैसी वह उस दिन लगी थी···१६३४ में ··जेल में मुलाक़ात के दिन।

और शुभा? क्या कोई हाड़-मास का इंसान धीरे-धीरे छाया में तब्दील हो सकता है···दूसरे आदमी के देखते देखते, उसकी नज़रों के सामने?

अगर मैं अपना हाथ शुभा के कन्धे पर रखना चाहूं···मुझे डर है···आशंका नहीं विश्वास है···कन्धे को हवा की तरह भेद कर हाथ बेसहारा नीचे गिर जाएगा। बादलों के कन्धे नहीं हुआ करते।

दूसरा हाथ प्रभा के कन्धे पर रखूं···खूब ठोस है उसका कन्धा पर···वह हाथ झटक देगी···कन्धे से लुढ़क कर बेसहारा नीचे गिर जाएगा···

गान्धीजी दो लड़कियों के कन्धों पर अपने दोनों हाथ रख कर चला करते थे।

'बुढ़ापे की लकड़ियां' नाम दिया था उन्हें।

प्रभा-सुना को लेकर चलते तो…

अविजित ठठाकर हंस दिया।

एक भाप बन कर उड़ जाती, दूसरी पत्थर बनकर जम जाती।

बेचारे गांधीजी…बेचारा अविजित!

बेचारा…? नहीं-नहीं, क्या खुराफ़ात आ गई दिमाग़ में…अभी तो मैं जवान हूं। आग़ा का बच्चा! बेदाल बूदम! टेनिस के दो सेट एक साथ खेलकर तो दिखलाये।

और…मैं खामख्वाह काजल से मिलने क्यों नहीं जा रहा? इतने दिन टालता क्यों रहा। बुलाया है तो कोई ज़रूरी काम होगा। उसका करने वाला है कौन। कल जाऊंगा…ज़रूर जाऊंगा।

अविजित काजल के पास जा पहुंचा।

"आओ अविजित," काजल ने कहा, "जाने से पहले तुमसे मिलना ज़रूरी था।"

"बाहर जा रही हो?"

"हां। कालेज से इस्तीफ़ा दे दिया।"

"क्यों?"

"देना पड़ा। मेरे पढ़ाये इतिहास में उन्हें भविष्य की गन्ध आने लगी है।"

अविजित समझते हुए भी नहीं समझा, विषय बदलकर बोला, "भगतसिंह पर तुम्हारी किताब छप गई?"

"तैयार है," काजल ने पाण्डुलिपि दिखला कर कहा, "जिन्हें पढ़ना चाहिए, वे पढ़ भी रहे हैं। छोड़ो उसे, तुमसे जो काम था, वह कहूं। बीस हज़ार रुपया चाहिए।"

"बीस हज़ार!"

"देने को कहा था, भूल गए?"

"नहीं भूला तो नहीं।"

"तो इरादा बदल गया?"

"नहीं। इरादा क्यों बदलेगा?"

"फिर?"

"दल है?"

"हां।"

"करना क्या चाहते हो तुम लोग?"

काजल देर तक चुप रही। वह कहीं दूर देख रही थी। अविजित को लगा वह उसकी उपस्थिति भूल चुकी है।

"प्रोपेगेन्डा बाई डेथ," बहुत देर बाद उसने धीमे से कहा जैसे सिर्फ़ अपने को सुना रही हो।

"क्या?"

"मृत्यु सस्ती भी होती है और महंगी भी। जब महंगी हो तो प्रचार के लिए उससे अच्छा साधन दूसरा नहीं है। बिना प्रचार जनक्रान्ति कैसे होगी…"

अविजित डर गया।

"मृत्यु?" उसने कहा, "तुम लोग आत्महत्या में विश्वास करते हो?"

"आत्महत्या?" काजल चौंक उठी, "इतनी सस्ती मौत!"

"तब? मुझे समझाकर बतलाओ, काजल, क्या करना चाहते हो तुम लोग?"

अब काजल ने उसकी तरफ देखा।

"याद है, अविजित," उसने कहा, "असेम्बली में बम फेंककर भगतसिंह जो पर्चे फेंके थे, उनमें क्या कहा गया था?"

"नहीं, अब याद नहीं।"

"फ्रांसीसी अराजकतावादी वेला के शब्द—बहरों को सुनाने के लिए ऊंची आवाज की जरूरत होती है।"

"हां…"

"और सोई हुई जनता को जगाकर अपने अधिकारों के प्रति सचेत करने के लिए बम के धमाके काफी नहीं हैं। बहुत जबरदस्त उफान की जरूरत है उसके लिए, बहुत महंगे प्रचार की। आत्म-बलिदान से महंगा प्रचार क्या हो सकता है?"

"तुम करना क्या चाहती हो काजल?"

"इतिहास को दुहराना चाहती हूं। जो अधूरा रह गया उसे पूरा करना चाहती हूं।"

काजल के हाथ में किताब की पाण्डुलिपि अब भी थी। धीरे-धीरे उस पर ऐसे हाथ फेर रही थी जैसे अपने किसी अजीज का सिर सहला रही हो। उसकी आंखों की मन्त्रमुग्ध चमक से अविजित बंध गया। बिना कुछ कहे, चुपचाप बैठा उसे देखता रहा।

"याद है," कुछ पल ठहरकर काजल ने कहा, "आठ अप्रैल १६२६ को भगतसिंह ने असेम्बली पर बम फेंका था और २३ मार्च १६३१ को उन्हें फांसी हुई। इन दो सालों के दौरान एक लम्हें के लिए भी वे 'प्रोपोगेन्डा बाई डेथ' के सिद्धान्त से नहीं हटे। सेशन जज की अदालत में लाहौर हाई कोर्ट, फिर स्पेशल मजिस्ट्रेट की अदालत, फ़ौजी ट्रिब्यूनल और अन्त में लंदन प्रिवी-कौंसिल को अपील, सबको उन्होंने जन-साधारण की आजादी के प्रचार का मंच बना डाला। एक बार भी अपने बचाव का प्रयत्न नहीं किया पर प्रचार के किसी साधन को हाथ से नहीं जाने दिया। कितने असामान्य शौर्य से हर तरीका अपनाया—एक सौ चौदह दिन की भूख हड़ताल, जेल सुधार की मांग, ब्रिटिश अदालत का बायकाट, वकीलों से बहस, आजादी से भी आगे जाकर समाजवादी क्रान्ति पर वक्तव्य…इस तरह कि हाई कोर्ट के जस्टिस फोर्ड भी उन्हें अपराधी घोषित करते हुए कंपने पर विवश उठे…'ये लोग दिल की गहराई और पूरे आवेग के साथ वर्तमान समाज के ढांचे को बदलने की इच्छा से प्रेरित थे। भगतसिंह एक ईमानदार और सच्चे क्रान्तिकारी हैं। मुझे यह कहने में कोई झिझक नहीं है कि

व इस कथन को लेकर पूरी सच्चाई से खड़े हैं कि दुनिया का सुधार वर्तमान सामाजिक ढांचे को तोड़कर ही हो सकता है···"

"सब कुछ अखबारों में छपता रहा, जनता में जोश उफ़नता रहा···अन्तिम अपील से पहले, मालूम है, उन्होंने अपने साथियों से क्या कहा था—फांसी तब हो जब देश की जनता का जोश अपने उफ़ान पर हो और उसका ध्यान पूरी तरह इसी की ओर केन्द्रित हो···अपील का उद्देश्य यह हो कि हमारी फांसी रुकी रहे और वह तब हो जब कांग्रेस का समझौता सरकार से हो और अपने परिणामों से शानदार सिद्ध न हो, युवक वर्ग में इससे असंतोष फैल रहा हो, बस उन्हीं घड़ियों में हमें फांसी लगे और इस प्रकार कांग्रेस की बागडोर उग्रतावादियों के हाथ में चली जाए।

"कितनी मंहगी बना ली थी उन्होंने अपनी मृत्यु, कितना व्यापक था उनका प्रचार!"

"फिर भी···" अविजित ने निराश स्वर में कहा।

"फिर भी···" काजल ने दीर्घ निश्वास छोड़कर कहा, "कुछ नहीं हुआ! जोश फैला, उफ़ान आया और समझौते के ठंडे छींटे खाकर बैठ गया। सोलह साल बाद आजादी मिली भी तो नाम मात्र को।"

"तब···"

"इसीलिए तो अविजित, उफ़ान को हवा देते रहने के लिए एक मज़बूत दल की जरूरत है।"

"कौन लोग हैं तुम्हारे दल में?" अविजित ने पूछा और पूछ कर डर गया कि कहीं काजल प्रभा का नाम न ले दे।

"देश के युवा लोग हैं," काजल ने कहा।

"तुम सब इसी में विश्वास करते हो—प्रोपोगेन्डा बाई डेथ?"

"मैं करती हूं। मैं क्रांति जगाना चाहती हूं। मेरे साथी क्रांति लाना चाहते हैं।"

"कैसे?"

"साधन और सत्ता पर कब्ज़ा करके। आम लोगों की हुकूमत क़ायम करके।"

"कैसे होगा?"

"होगा। साधन रहेंगे तो होगा। किसी एक गांव के भूमिहीन किसान अपने गांव की जमीन पर कब्ज़ा कर लेंगे, अपनी सरकार बना लेंगे फिर प्रचार···प्रचार··· मृत्यु से रंगा प्रचार!"

"नाम क्या है तुम्हारे दल का?" उत्तेजित अविजित आगे को झुक आया।

"लोक सेना," काजल ने कहा, फिर बोली, "इतनी बातें पूछ रहे हो, तुम भी दल में शामिल होगे?"

मर्माहत अविजित झटके से पीछे हट गया।

"कब तक मुझ पर व्यंग करती रहोगी, काजल," उसने कहा, "क्रान्ति करने की

व इस कथन को लेकर पूरी सच्चाई से खड़े हैं कि दुनिया का सुधार वर्तमान सामाजिक ढांचे को तोड़कर ही हो सकता है…"

"सब कुछ अखबारों में छपता रहा, जनता में जोश उफ़नता रहा…अन्तिम अपील से पहले, मालूम है, उन्होंने अपने साथियों से क्या कहा था—फांसी तब हो जब देश की जनता का जोश अपने उफ़ान पर हो और उसका ध्यान पूरी तरह इसी की ओर केन्द्रित हो…अपील का उद्देश्य यह हो कि हमारी फांसी रुकी रहे और वह तब हो जब कांग्रेस का समझौता सरकार से हो और अपने परिणामों से शानदार सिद्ध न हो, युवक वर्ग में इससे असंतोष फैल रहा हो, बस उन्हीं घड़ियों में हमें फांसी लगे और इस प्रकार कांग्रेस की बागडोर उग्रतावादियों के हाथ में चली जाए।

"कितनी मंहगी बना ली थी उन्होंने अपनी मृत्यु, कितना व्यापक था उनका प्रचार!"

"फिर भी…" अविजित ने निराश स्वर में कहा।

"फिर भी…" काजल ने दीर्घ निश्वास छोड़कर कहा, "कुछ नहीं हुआ! जोश फैला, उफ़ान आया और समझौते के ठंडे छींटे खाकर बैठ गया। सोलह साल बाद आज़ादी मिली भी तो नाम मात्र को।"

"तब…"

"इसीलिए तो अविजित, उफ़ान को हवा देते रहने के लिए एक मज़बूत दल की ज़रूरत है।"

"कौन लोग हैं तुम्हारे दल में?" अविजित ने पूछा और पूछ कर डर गया कि कहीं काजल प्रभा का नाम न ले दे।

"देश के युवा लोग हैं," काजल ने कहा।

"तुम सब इसी में विश्वास करते हो—प्रोपोगेन्डा बाई डेथ?"

"मैं करती हूं। मैं क्रांति जगाना चाहती हूं। मेरे साथी क्रांति लाना चाहते हैं।"

"कैसे?"

"साधन और सत्ता पर कब्ज़ा करके। आम लोगों की हुकूमत क़ायम करके।"

"कैसे होगा?"

"होगा। साधन रहेंगे तो होगा। किसी एक गांव के भूमिहीन किसान अपने गांव की ज़मीन पर कब्ज़ा कर लेंगे, अपनी सरकार बना लेंगे फिर प्रचार…प्रचार… मृत्यु से रंगा प्रचार!"

"नाम क्या है तुम्हारे दल का?" उत्तेजित अविजित आगे को झुक आया।

"लोक सेना," काजल ने कहा, फिर बोली, "इतनी बातें पूछ रहे हो, तुम भी दल में शामिल होगे?"

मर्माहत अविजित झटके से पीछे हट गया।

"कब तक मुझ पर व्यंग करती रहोगी, काजल," उसने कहा, "क्रान्ति करने की

"ऐसा मत कहो, काजल। मैं अपने काम से नहीं, सिंघानिया जी के काम से मुकर्जी बाबू से मिला था। इसमें तुम्हारी तौहीन कैसे हो गई?"

काजल चुप रही।

पार्थ को देखा था, पूछने को हृदय का एक कोना दर्द करता रहा पर चुप बनी रही।

"पार्थ को देखा था, बहुत होनहार लड़का है," अविजित ने खुद ही कहा।

काजल का चेहरा पसीज गया पर वह बोली नहीं।

"परसों मैं रुपये लेकर आऊंगा," कुछ अधिकार भाव से अविजित ने कहा, "तुम्हें लेने ही होंगे।"

काजल का चेहरा फिर सख़्त हो गया।

"लेने से इन्कार कब किया मैंने? रुपया तुम्हारा नहीं, चड्ढा के दल का है। प्रभा के हाथ भेज देना," उसने कहा।

"प्रभा तुम्हारे दल में है?" आखिर अविजित पूछ ही बैठा।

"उसी से पूछना," काजल ने कहा।

"उसे ग़लत रास्ते पर मत डालना काजल," कांपते गले से अविजित ने कहा।

"तुमसे हो सके तो सही रास्ता दिखला कर रोक लो।"

"नहीं रोक सकता। मेरे रोकने से वह रुकेगी नहीं, तुम जानती हो।"

काजल बुत बनी खड़ी रही।

अविजित उसके क़रीब आ गया। अपने दोनों हाथ उसके कन्धों पर रख कर बोला, "मैं तुमसे झगड़ा नहीं करना चाहता, काजल, पर एक औरत को इतना कठोर नहीं होना चाहिए कि आदमी को हमेशा तराजू में तौलती रहे, उसके दुःख को समझने की कोशिश ही न करे।"

छिटक कर काजल अलग हो गई।

"तुम···" उसने कहा, "तुम केवल पुरुष हो!"

"काजल···" धीमे से अविजित ने पुकारा।

"जाओ, तुम जाओ अविजित!" काजल ने कहा।

उसका कण्ठ रुंधा हुआ था पर आवाज़ जब बाहर निकली तो सर्द और साफ़ थी—झील के गहरे पानी पर जमी बर्फ़ की पहली पर्त की तरह।

ऐसी आवाज़ों से बहस नहीं की जाती।

अविजित चुपचाप बाहर निकल आया।

काजल सिर्फ़ ऐसे आदमी को प्यार कर सकती है जो तीस साल पहले मर चुका हो, गाड़ी का दरवाज़ा खोलते हुए झुंझला कर अविजित ने सोचा।

नहीं, फ़ौरन उसने अपने को टोका, यह अन्याय है। काजल सिर्फ़ ऐसे आदमी

को प्यार कर सकती है जो तीस साल पहले मर कर भी याद रखने क़ाबिल हो।

गाड़ी चल दी। खिड़की से ठण्डी हवा के झोंके भीतर आने लगे। दिमाग़ से जाले उड़ने लगे। मन और अशान्त हो चला···

मैं वह आदमी नहीं हूँ···नहीं हो सकता···नहीं था···

काजल शहादत चाहती है···

शहादत का नशा बहुत भयानक होता है। किसी लेनिन, मैज़िनी, टीटो या भगतसिंह के सिर चढ़ कर बोले तो भावुकता से आगे जाकर रणकौशल बन जाता है पर तब भी कितने शहीद हैं जो रण में विजयी हो पाते हैं ?

काजल में वह विवेक बुद्धि और यथार्थवादिता है जो आत्मबलिदान को रण-नीति बना दे ? शायद है। पर उसके और साथी ? प्रभा ?

प्रभा जानती है, वह क्या चाहती है ? अभी उसकी उम्र ही क्या है ?

भगतसिंह की उम्र सिर्फ़ तेईस साल थी जब उसे फांसी लग गई···उम्र के साथ दृढ़ता बढ़ती है या घटती चली जाती है ? या उम्र से उसका कोई ताल्लुक़ ही नहीं है। प्रभा नहीं जानती तो मैं···मैं जानता हूँ, मैं क्या चाहता हूँ ? जानना चाहता हूँ ? चाहा था कभी ?

अविजित की गाड़ी घर के दरवाज़े पर पहुंच गई।

नीचे कदम रखा तो नज़र बरामदे के फ़र्श पर पसरे पड़े सुधांशु पर गई। वह ज़मीन पर पांव रगड़-रगड़ कर रो रहा है और पास खड़े शुक्ल, खोसी और नया नौकर तिलक उसे मनाने की कोशिश कर रहे हैं। पर रोने का उफ़ान है कि कम होने के बजाय बढ़ता ही चला जा रहा है।

"क्या हुआ ?" पास पहुंच कर उसने पूछा।

"कुछ माग रहा है।" खोसी ने कहा।

"क्या ?"

"समझ में नहीं आ रहा।"

"ओ···ऽ···ई···ऽ या !" सुधांशु हाथ आगे बढ़ा कर चीखा। हिचकियों ने उसकी पुकार को दो जगह से तोड़ दिया। एक के बजाय तीन चीख़ें अविजित को दहला गईं।

"क्या ? क्या चाहिए ?" उसने कहा।

"रसगुल्ला ? रसगुल्ला खाओगे ?" शुक्ल ने पूछा।

"नई ! ओऽईऽया !" सुधांशु फिर माग उठा।

थूक और आंसुओं से लिथड़े अपने चेहरे को ज़ोर करके उसने फ़र्श पर रगड़ डाला।

"तकिया ? तकिया लेकर सोओगे ?" तिलक ने पूछा।

"नहं ! ओईया-ओईया !" चीख कर सुधांशु ने सिर ऊपर उठाया।

फ़र्श की मिट्टी-धूल ने चेहरे के थूक-बलग़म को अच्छी तरह सान कर कीचड़ की नालियां बहा दी थीं। हाथों से उन्हें रगड़ कर वह चिल्लाया, "ओईया !"

"ज़रूर कोई खाने की चीज़ है। यह सिर्फ़ खाने के लिए ही इस तरह रोता है," खोखी ने कहा।

"पकौड़ियां खाओगे ?"

"ओईया ! ओईया ! ओईया !" बेक़ाबू हो सुधांशु ने पैरों की थाप पर रट लगा दी।

उसके बिल्कुल क़रीब जाकर अविजित ने आवाज़ ऊंची करके पूछा, "क्या है ?" क्या चाहते हो तुम !"

"ओ···ऽ···ई···ऽ···या !"

"साफ़ बोलो, क्या चाहते हो तुम !" क़रीब-क़रीब सुधांशु ही की तरह अविजित भी चीख उठा।

अपनी मांग दुहराने को सुधांशु ने मुंह खोला पर अविजित की रौद्र मूर्ति के भय ने आवाज़ घोंट दी।

उसका मुंह खुला-का-खुला रह गया। आंखें फट गईं। फैले पैर उसने समेट लिये। हाथ ठोड़ी के नीचे सिकोड़ लिये और घुटनों पर सिर देकर ऐसे बैठ गया जैसे गर्भ में भ्रूण। बस फटी आंखों से अविजित को घूरता रहा और खुले मुंह से थूक बराबर बाहर गिरता रहा···

अविजित से सहा नहीं गया।

वह खोखी की तरफ़ मुड़ गया और दयनीय स्वर में याचना करता हुआ बोला, "हुआ क्या था ? क्या चाहता है यह ?"

"समझ में नहीं आता। पता नहीं यह क्या चाहता है," पास खड़े तीनों प्राणियों ने एक साथ कहा।

५

रात के नौ बज रहे हैं।

दिन की नर्सें ड्यूटी पूरी करके अस्पताल से जा चुकीं।

रात की नर्सें ड्यूटी पर आई हैं।

अचरज के साथ उन्होंने देखा, डाक्टर संगीता अभी तक अपने कमरे में हैं।

"आप गई नहीं ?" एक ने पूछा।

"जाऊंगी अभी," संगीता ने कहा।

नर्स यहीं खड़ी रही।

सरकारी अस्पताल है। यहां छह बजे के बाद डाक्टर देखने को नहीं मिलता। बदकिस्मती से किसी की रात की ड्यूटी हो तो बात अलग है। डाक्टर संगीता जरूर पहले भी सात बजे तक रुक जाया करती थी पर रात के नौ बजे !

जब से इनकी शादी हुई है…

"वार्ड का राउंड लेकर जाऊंगी," संगीता ने उसे खड़ा देखकर कहा।

"इस वक्त ?" नर्स के मुंह से निकला।

इस वक्त तो कभी कोई डाक्टर राउंड पर जाता नहीं। ऐसे सब डॉक्टर रात भर वार्डों के चक्कर लगाने शुरू कर देंगे तो नर्सों की तो मुसीबत हो जाएगी।

"हां," डॉक्टर संगीता ने सख्ती से कहा।

"कोई सीरियस केस है ?"

"नहीं…हां…तुम जाओ, मैं आती हूं।"

"यस डॉक्टर।"

नर्स चली गई। संगीता बैठी रही।

कुछ वक्त और बीत जाए तब जाएगी वार्ड में। रात को एकाध चक्कर वार्ड का लगाना ही चाहिए। मरीजों की देखभाल पर नजर रहती है और…

वक्त बीत रहा है…अंधेरा जम चुका…संगीता घर नहीं जाना चाहती…घर जाने का खयाल खौफ पैदा करता है…

रात के सन्नाटे में…

ऐसी ही एक रात के सन्नाटे में अस्पताल से घर लौटने पर…अविजित साथ था…अविजित का साथ ! डर नहीं लगा। अविजित से भरपूर प्यार किया, उतनी ही जबरदस्त नफ़रत की, पर डर कभी नहीं लगा।

पर यह आदमी जो उसका पति है…

प्यार है नहीं, नफ़रत कर नहीं पा रही…बस एक डर है जो नस-नस में घुल गया है, शादी के बाद की पहली सुबह से…

"हनीमून के लिए कहां चलना चाहती हो, हांगकांग या स्विट्जरलैंड ?" सुरेश ने पूछा था।

एक यह जिन्दगी है ! पैसे वालों की जिन्दगी ! संगीता ने सोचा था।

सवाल यह नहीं है कि आज अस्पताल बस में जाना होगा या स्कूटर के लिए पैसे हैं। सवाल यह है कि वह जाना कहां चाहती है—हांगकांग या स्विट्ज़रलैंड ?

स्विट्ज़रलैंड ! वहां डॉक्टर मर्सर हैं ! गाइनोकालोजी के मशहूर स्पैशलिस्ट ! उनके नीचे रहकर छह महीने भी काम सीख सके तो कान्ट्रैक्टड पैल्विस के केस लेकर जो परेशानी रहती है…

“दोनों में से कोई जगह पसन्द नहीं आई ?” सुरेश ने प्यार से पूछा, “कोई और जगह बतलाओ। योरप में तो फिर पैरिस है या वियना। एक बात ज़रूर है कि योरप जाओ तो पूरा घूम कर आना चाहिए। वरना…चाहो तो हिन्दुस्तान में ही दार्जिलिंग या सिक्किम…”

इतने सारे विकल्प ! यहां तो सब कुछ सम्भव है !

“ऐसा नहीं हो सकता,” संगीता ने कहा, “मैं स्विट्ज़रलैंड छह महीने रह सकूं ?” कहा क्या, अनायास मुंह से निकल गया।

“छह महीने ?” सुरेश कुछ चौंका, फिर अतिरिक्त लाड़ से बोला, “और यहां के काम-धाम का क्या होगा ?”

“आप लौट आइएगा,” संगीता ने कहा, “मैं डॉक्टर मर्सर के पास रहकर ट्रेनिंग लेना चाहती हूं।”

“ओह।”

“कब की मेरी तमन्ना है,” संगीता कहती गई, “स्विट्ज़रलैंड के डॉक्टर मर्सर के पास काम सीखूं…पता नहीं वे मुझे साथ लेने को तैयार भी होंगे या नहीं…हो जाएंगे, एक बार उनसे मिलूं तो। छह महीने उनके साथ काम करना एफ़. आर. सी. एस. करने से भी ज्यादा क़ीमती होगा। पता है, वे दुनिया के सबसे क़ाबिल गाइनो-कॉलोजिस्ट हैं।

संगीता के स्वर में उत्साह की ऐसी व्यंगहीन निर्मल गूंज भी हो सकती है, सुरेश को मालूम नहीं था।

“छह महीने में काम हो जाएगा ?” उसने पूछा।

“हां…शायद…साल भर हो तो और भी अच्छा रहे पर…वह तो…बहुत महंगा पड़ेगा…वैसे कुछ दिन बाद मुझे वहां नौकरी मिल जाएगी…”

“साल भर रहना चाहती हो ?”

“हो सके तो। ओह, उससे ज्यादा कोई क्या चाह सकता है !”

“तुम अकेली जाना चाहती हो ?” सुरेश ने फंसे गले से पूछा।

“हां,” चहकते कण्ठ से संगीता ने कहा और अब पहली बार स्विट्ज़रलैंड के डाक्टर मर्सर पर से नज़रें हटाकर सुरेश को देखा।

विषाद की स्याही से पुत कर उसका काला स्थूल चेहरा और बदसूरत हो उठा था।

संगीता के मन में करुणा और विरक्ति एक साथ जाग उठी।

वह अच्छी तरह जानती है, कन्धे पर हाथ रख कर दबा देने से ही उसके चेहरे का सारा विषाद धुल जाएगा और वह ख़ुशी-ख़ुशी उसे वह तमाम रुपया देने को तैयार हो जाएगा जो एक साल स्विट्ज़रलैंड रहने के लिए उसे चाहिए।

इस से बहुत कम दाम पर औरतें अपना प्यार बेचा करती हैं।

मा कहती थी, प्यार चाहे ख़ाविंद को दो चाहे महबूब को, दाम हमेशा ऊंचे लगाओ। सस्ती चीज़ की कोई क़दर नहीं करता...शादीशुदा औरत और तवायफ़ में फ़र्क़ क्या है, दोनों जिस्म बेचती है, दोनों प्यार का सौदा करती हैं; बस तवायफ़ एक मुश्त दाम ले कर आज़ाद हो जाती है और बीवी पेंशन की उम्मीद में ज़िन्दगी-भर का सौदा कर लेती है।

अपनी जगह से उठ कर वह सुरेश के पास आ गई। उसके बराबर में सोफ़े पर बैठ कर उसने अपना हाथ उठाया ही था कि सुरेश के चेहरे पर एक बेहद ख़ूबसूरत मुस्कराहट खेल गई। चौंक कर संगीता ने हाथ पीछे खींच लिया।

आहत हो कर भी जो आदमी अपमानित महसूस न करे, उसके साथ झूठा खेल नहीं खेला जा सकता।

"डाक्टर मर्सर के पास ठीक क्या सीखना चाहती हो, बतलाओ तो। देखूं, कुछ मेरी समझ में भी आता है या नहीं," मीठे गले से उसने कहा।

संगीता कांप उठी।

कैसे आदमी से ब्याह रचा बैठी है वह ?

बलात्कार यह करेगा नहीं; झूठा आत्म-समर्पण सहेगा नहीं, फिर...

"आप डाक्टरी के बारे में क्या जानते हैं?" बचाव की कोशिश में आक्रमण करते हुए उसने कहा।

"कुछ नहीं। तभी तो तुमसे पूछ रहा हूं। अच्छा मान लो तुम्हारे सामने मैं नहीं डाक्टर मर्सर बैठे हैं। तुम्हें साथ लेने से पहले वे पूछते हैं—मेरे पास रह कर तुम ठीक क्या सीखना चाहती हो ?"

सुरेश के चेहरे पर वही ख़ूबसूरत मुस्कराहट खेलती रही।

एक बार फिर संगीता कांप उठी।

"अगर मुझे यक़ीन दिला सकीं कि तुम मेरे साथ काम करने लायक़ हो तो मैं तुम्हें एक साल यहां रहने की इजाज़त दे दूंगा," उसने कहा।

संगीता ने ग़ौर से उसका चेहरा परखा। नहीं, व्यंग्य का नामोनिशान नहीं है। बस, कुरूप चेहरे पर छाया विषाद का आबनूसी बादल है। उसे चीर कर कौंधती सुन-हरी मुस्कराहट है। और प्यार, सब-कुछ दे डालने को तैयार प्यार, बिना कुछ चाहे। वाक़ई यह आदमी कुछ नहीं मांगेगा। एक बार कह देने से ही उसे साल भर के लिए स्विट्ज़रलैंड भेज देगा।

कन्धे से पड़ी हुई लड़कियां !

नहीं, कभी नहीं ! संगीता और अब किसी की अनुकम्पा बर्दाश्त नहीं कर

सकती।

वह झटके से उठ खड़ी हुई।

"मैं मज़ाक कर रही थी," ठण्डे स्वर में उसने कहा, "स्विट्ज़रलैंड जाने का मेरा कोई इरादा नहीं है।"

आबनूसी बादल ने बिजली को दी पनाह वापिस ले ली। बड़प्पन की रोशनी खोकर सुरेश का चेहरा भदेस तारीक़ी में ग़र्क़ हो गया। संगीता की नफ़रत में जुम्बिश हुई।

"कहीं भी जाने का मेरा इरादा नहीं है," उसने कहा, "उतने रुपयों में तो दस मरीज़ों का आपरेशन हो सकता है। इतनी औक़ात मेरी न सही। फिर भी अस्पताल में रह कर थोड़ा-बहुत इलाज तो कर ही सकती हूं। छुट्टी लेने का मेरा मन्शा कभी था नहीं।"

यातना से घिर कर इस आदमी का चेहरा दयनीय ही नहीं, बदसूरत भी होता जाता है, इस हद तक कि जुगुप्सा पैदा करे; अच्छा है।

है? वाक़ई अच्छा है?

ऐसी नफ़रत किस काम की जो ख़ुद को अपने दामन में समेट ले।

"मैं अस्पताल जा रही हूं," संगीता ने कहा था और उसे वहीं बैठा छोड़ कर तेज़ी से कमरे से बाहर निकल गई थी।

घड़ी ने दस बजाए।

संगीता चौंक कर आज रात में लौट आई।

चलूं...एक बार मरीज़ों को देख आऊं...

उस सुबह को चार महीने बीत चुके...

पर...रोज़ सुबह होती है...संगीता वक़्त से पहले अस्पताल हुंच जाती है...रात घिर आने तक वक़्त को टालती रहती है। फिर...घर लौटना ही पड़ता है...

अकेले बिस्तर पर लेटी वह कंपकंपाते शरीर से रात भर उस घड़ी का इन्तज़ार करती है जब वह आदमी उसके बेडरूम का दरवाज़ा ठेल कर भीतर घुस आएगा और उसे यह मानने पर मजबूर कर देगा कि वह सचमुच उसका शौहर है।

उस सुबह के बाद सिर्फ़ एक रात वह उसके कमरे में आया था...

अपनी हथेलियों में उसका चेहरा संजो कर एकटक देखता रहा था।

संगीता की आंखें झुकी रही थीं और वह इन्तज़ार करती रही थी, उस क्षण का जब उसके हाथ उसके जिस्म पर फिसलना शुरू कर देंगे...

हाथ बढ़ा कर उसने बत्ती बुझा दी थी। उस आदमी ने बाधा नहीं दी थी। चुपचाप कुछ देर इन्तज़ार किया था और दुबारा बत्ती जला ली थी।

चेहरा उसकी हथेलियों में सजा रहा था और...

उस आदमी का इन्तज़ार संगीता के इन्तज़ार से ज़्यादा साबित निकला। उसके चेहरे को अंजुली में भरे वह इन्तज़ार करता रहा कि वह आँखें उठा कर उसकी तरफ़ देखे—

संगीता को नज़रें उठानी पड़ीं। फ़ौरन ही उसने उन्हें दुबारा झुका लिया पर उस छोटे से लम्हे में वह उसकी खाली आँखों की गहराई नाप चुका था। वितृष्णा का अन्धा सूखा कुआँ "पानी की बूँद तक नहीं कि अपनी धुँधली-सी परछाईं ही दीख जाए"'

धीरे से हथेलियों ने चेहरे को मुक्त कर दिया और बत्ती बुझा कर वह आदमी कमरे से बाहर निकल गया था।

संगीता बुरी तरह डर गई थी।

रोज़ उसका डर बढ़ता ही जाता है।

वह कितनी भी देर करके रात को घर पहुँचे वह उसका इन्तज़ार करता मिलता है। खाना खाते वक़्त संगीता कोशिश करके आँखें झुकाये रहती है। उसकी एकटक जमी दृष्टि मजबूर कर देती है कि मन-ही-मन उसे झेलती रहे। खाने के बाद वह उसके कमरे तक आता है दरवाज़े की चौखट पर खड़े रह कर कहता है गुडनाइट—और''' संगीता को आँखें उठानी पड़ती हैं, बत्ती बुझाने की हिम्मत नहीं होती'''

वह कमरे से बाहर चला जाता है।

संगीता का मन होता है, पुकार कर कहे—आओ, भीतर आओ। दरवाज़ा बन्द कर दो। बत्ती बुझा दो। मेरे क़रीब आओ। मेरे हमबिस्तर बनो। मेरी देह का इस्तेमाल करो। मुझे मौक़ा दो कि तुमसे भरपूर नफ़रत कर सकूँ। ऐसा न हो कि कुछ न कर सकने की मजबूरी में मेरी हस्ती ही मिट जाए!

दीवाल पर लगी घड़ी ने ग्यारह बार संगीता को चेताया और साथ ही दरवाज़े पर दस्तक हुई।

"कौन है?" उसने चौंक कर कहा।

दरवाज़ा ठेल कर नर्स भीतर आ गई।

"आप यहीं हैं डॉक्टर," उसने कहा, "केजुअलटी वाले आप को घर पर ढूँढ़ रहे हैं।"

"क्या हुआ?"

"एक्सीडेन्ट केस आया है। औरत के पेट में बच्चा है। आपकी ज़रूरत है।"

"मेरी ज़रूरत है," संगीता ने टेप की तरह दुहराया।

शब्दों को चेतना ने ग्रहण किया और उसने महसूस किया कि अलग-अलग भटक रहा उसका क्लान्त शरीर और अशान्त मन एक होकर स्फूर्ति से भर उठा है।

वह उठ कर खड़ी हो गई।

"चलो," उसने कहा, "मैं दोनों को बचा लूँगी।"

एक भी नहीं बचा।

सीजेरियन ग्रापरेशन करके जब संगीता ने मां के पेट से बच्चे को निकाला तो वह मर चुका था।

फिर औरत को बचाने की जद्दोजहद शुरू हुई। सारी रात संगीता उसकी मौत से लड़ती रही। ग्लूकोज, खून, ग्राक्सीजन, कुछ काम नहीं ग्राया। सुबह छह बजे उसने दम तोड़ दिया।

केस जब कंजुग्रलटी में ग्राया तभी रात की ड्यूटी पर तैनात डाक्टर को उसके बचने की कोई उम्मीद नहीं थी। पर वह नया-नया ग्रस्पताल में ग्राया था, डाक्टर कम, नौजवान ज्यादा था। यह जानते हुए भी कि उसके बचने की कोई उम्मीद नहीं है ग्रौर ग्रादमी के मर जाने के बाद बचे रहने में कोई तुक भी नहीं है; उसने डॉक्टर संगीता को तलाश करने की पूरी कोशिश की।

दुर्घटनाग्रों के केस ग्रस्पताल में रोज ग्राते थे ग्रौर यह दुर्घटना सड़क पर घटने वाली ग्राम दुर्घटनाग्रों से किसी तरह फ़र्क नहीं थी।

गर्भवती ग्रौरत पति के साथ तांगे में बैठ कर जा रही थी—शायद ग्रस्पताल ही ग्रा रही थी, दिन पूरे चढ़ चुके थे—कि रास्ते में तांगा ट्रक से टकरा गया। ट्रक को तेज रफ़्तार से चलने की ग्रादत थी ग्रौर तांगा ट्रैफ़िक के बीच ग्रड़चन पैदा कर रहा था। घोड़ा ग्रौर साईस तो इस तरह कुचले गये कि फ़ौरन ही दम तोड़ गए पर ग्रौरत ग्रौर ग्रादमी पिछली सीट से उछल कर सड़क के दो किनारों पर जा गिरे।

ग्रौरत के शरीर से खून गिरने लगा।

ग्रादमी बेहोश हो गया।

ट्रक उसी मस्तानी रफ़्तार से धूल उड़ाता ग़ायब हो गया।

तेज रफ़्तार वाला यातायात पहले की तरह सड़क पर दौड़ता रहा। बस, लाशों ग्रौर घायलों के पास से गुजरते हुए स्पीड कुछ कम जरूर होती रही।

धीमी रफ़्तार के पाबंद साइकिल सवार ग्रौर पैदल यात्री वक़्त की रफ़्तार से रेस नहीं लगाते, लिहाजा वे ठहर गए। थोड़ी देर में ग्रच्छी-खासी भीड़ जुट गई।

ग्रौरत का खून बहता रहा···

ग्रादमी बेहोशी में हाथ-पांव पटकता रहा···

घोड़े ग्रौर साईस की लाशों पर मक्खियां भिनभिनाने लगीं···

भीड़ जुटती रही।

फिर ग्रौरत बेहोश हो गई।

ग्रादमी मर गया।

लाशों पर कुत्ते जुटने लगे।

एक पुलिसवाला घटनास्थल पर ग्राया···

भीड़ में हरकत हुई···शोर बढ़ा···पुलिसवाले ने सार्जेन्ट को खबर दी···ग्रौर

एक अरसे बाद मय लाशों के, औरत को सरकारी अस्पताल पहुंचा दिया गया।

कैजुअलटी वाले डाक्टर की तलाश कारगर हुई। डॉक्टर संगीता आ पहुंची। उसे लगा उसने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया।

डॉक्टर संगीता आ गई यहां तक तो ठीक था, पर···

यह ढंग था, नर्स भी कम चकित नहीं थी कि एकाध इन्जेक्शन देकर मौत का इन्तज़ार करने के बजाय, वह पागलों की तरह औरत और बच्चे को बचाने की कोशिश में क्यों जुट गई है। ऐनेस्थीसया, इमरजेन्सी आपरेशन, खून की बोतलें, आक्सीजन, कुछ भी तो नहीं छोड़ा।

जब उसने खून की दूसरी बोतल लगाने को कहा तो नर्स ने याद भी दिलाया—इसका आदमी तो मर चुका, खून लाएगा कौन ? पर डॉक्टर संगीता ने धुड़क कर कहा था—चुप ! बोतल लगाओ ! और फिर, हो सकता है यह नर्स का वहम रहा हो, यह भी कहा था—जानती नहीं, मेरे पति के पास बहुत पैसा है।

आपरेशन थियेटर में डॉक्टर संगीता अपना रोल भरसक अदा करती रही पर सुबह छह बजे परदा गिर गया। अचेत अभिनेता ने एक बार भी आंख नहीं खोली, चुपचाप बेहोशी की हालत में अंतिम प्रस्थान ले लिया और मंच खाली हो गया।

थकान से थकनाचूर संगीता बाहर निकली तो देखा बरामदे में पड़ी बेंच पर सुरेश बैठा है।

"आप ?" उसके मुंह से निकला।

"रात अस्पताल से घर फ़ोन गया तो देखने चला आया। पता चला तुम आपरेशन थियेटर में हो।"

"अब दुबारा आए हैं ?"

"नहीं। यहीं था।"

"क्यों ?" संगीता ने तुर्शी से कहा, "जब पता चल गया था यहीं हूं, दिल्ली छोड़ कर भागी नहीं तो लौट क्यों न गए ?"

सुरेश के चेहरे पर क्या प्रतिक्रिया हुई, आंख उठाकर उसने नहीं देखी।

"ज्यादा रात होने से सवारी नहीं मिलती इसी से ठहर गया," उसने मधुर स्वर में कहा।

"देर-सबेर सवारी ढूंढ लेने की मुझे आदत है। सरकारी अस्पताल में नौकरी करते बरसों बीत गए। हम लोगों के दरवाज़ों पर न हाथी झूलते हैं न गाड़ियां।"

सुरेश चुप रहा।

"चलें ?" कुछ ठहर कर उसने कहा।

"नहीं," संगीता ने कहा, "दस बजे से मेरी ड्यूटी है। छह बज चुके। अब ख़ामख़्वाह आना-जाना क्यों करूं।"

"नाश्ता करके कुछ देर सो लेतीं···" सुरेश ने कहा।

दीख रहा था जिसके नक़्श खींच-तान कर, बनाने वाले ने वासना की मुखाकृति में सहेज दिये थे।

उसका काला चेहरा धीरे-धीरे पीला पड़ने लगा। पसीने की लकीरें जहां-तहां सूख गईं। आंखों की आग बुझ गई। थरथराते ओंठ सब बांध तोड़कर नीचे को लटक आए। संगीता के चेहरे पर उसकी उंगलियों का कसाव ढीला पड़ चला, फिर भी··· बिना हिले-डुले सुरेश वैसे ही स्तब्ध बैठा रहा।

सहसा चीत्कार कर संगीता रो दी।

सुरेश के हाथों की गिरफ़्त और ढीली पड़ी।

संगीता ने अपना मुंह उसकी गोदी में डाल दिया।

"दोनों मर गए!" उसने कहा, "एक को भी नहीं बचा सकी।"

सुरेश वैसे ही जड़ बैठा रहा।

संगीता रोती गई।

सुरेश का हाथ उसके सिर पर आ टिका।

न जाने कितनी देर संगीता उसकी गोद में सिर डाले रोती रही। सुरेश का हाथ उसके सिर पर टिका रहा, क्षण भर को इधर-उधर नहीं हुआ।

अविजित, संगीता का मन चीत्कार करता रहा। ओ अविजित! काश कि यह तुम्हारा हाथ होता। काश कि मेरे प्यार के इज़हार का इन्तज़ार तुमने किया होता। काश··· वह जिस्म तुम्हारा क्यों न हुआ जो मेरे लिए इस तरह बिलबिला कर भी पीछे लौट गया। अविजित! एक बार, बस एक बार मुझे मौक़ा मिल जाए···तुम्हारी हस्ती अपने हाथों, खाक में मिला दूं!

सुबह जब गनपत बेयरा चाय लेकर आया तो उसने देखा कि साहब के बिस्तर पर उनके बजाय संगीता सोई पड़ी है।

लगता है इन लोगों ने बेडरूम अदल-बदल लिया; गोकुल दा को खबर करनी होगी, बलराज चौकीदार के ज़रिये, उसने सोचा।

गनपत नहीं जानता, गोकुल दा का एक नाम कैलाश राव भी है।

मंगलवार को राइफ़ल क्लब बन्द रहता है।

बुधवार की शाम को प्रभा वहां पहुंची तो ज़बरदस्त हंगामा मचा हुआ था। तालेबन्द कमरे का दरवाज़ा बन्द का बन्द था और सभी राइफलें चोरी जा चुकी थीं।

क्लब के सदस्य सेक्रेटरी को घेर कर खड़े थे और उसके पास किसी सवाल का जवाब नहीं था।

"जनाब," एक आदमी कह रहा था, "चाभी आपके पास से चोरी चली गई क्या?"

"नहीं, चाभी तो सलामत है, कुछ समझ में नहीं आता···" वे परेशान थे।

"लीजिए साहब, हम आज मेम्बर बनने आए तो बन्दूकें ही चोरी चली गयीं," कैलाश ने कहा।

प्रभा ने देखा, सबके बीच अपने ख़ास अलसाए अन्दाज़ में कैलाश भी खड़ा है।

"है ज़रूर किसी भीतरी आदमी का काम। चाभी घर की घर में और सामान ग़ायब," एक आवाज़ और उभरी।

"पर राइफ़लें भला कोई क्यों लेगा?"

"क्यों? क़ीमती चीज़ है।"

"हां। पर खुले बाज़ार में तो बन्दूकें बेची नहीं जा सकतीं। लाइसेन्स बिना दिखलाये···"

"फिर भला कौन···"

"*आज़ादी के पहले का ज़माना होता तो मैं कहता विजयसिंह पथिक ले गए,*" कैलाश ने कहा।

"कौन? कौन ले गए?" तीन चार आवाज़ें एक साथ उभरीं।

"थे एक क्रान्तिकारी। नाम नहीं सुना कभी?"

"नहीं।"

"रास बिहारी बोस का?"

"नहीं।"

"चन्द्रशेखर आज़ाद का भी नहीं सुना ?"

"आज़ाद..."

"नाम तो सुना है पर...वह तो मर चुके शायद..."

"जी हां।

"फिर उनका क्या ज़िक्र ?" सेक्रेटरी ने खीज कर कहा।

"नहीं, अब क्या ज़िक्र। अब तो आज़ादी मिल चुकी। मैं तो यूं ही निशानेबाज़ों के नाम गिना रहा था...महाराजा छतरपुर का नाम तो सुना है आप लोगों ने ?"

"हां।"

"उन्हें नाम गिनाने का बड़ा शौक़ है," कैलाश ने कहा और टहलता-टहलता प्रभा के पास जा पहुंचा।

"प्रभा जी," उसने कहा, "हम तो रह गए मेम्बर बनने से।"

प्रभा हंस पड़ी। बोली, "हम तो चलें।"

"अरे ठहरिये," कैलाश ने कहा, "पुलिस वाले क्या कहते हैं, वह तो सुन लें। पुलिस को इत्तिला तो कर दी होगी।"

फिर प्रभा की तरफ देखकर उनींदी-सी आवाज में, रोमांटिक अन्दाज में बोला, "आपको कब कांटेक्ट करूं ?"

"जब आप चाहें," प्रभा ने भी रोमानी ढंग से कहा।

"मिस्टर भूपसिंहदेव तो हैं नहीं, झांसी चले गये। सुना है विलायत जाने वाले हैं।"

तो विमल 'अन्डरग्राउंड' हो गया। चार दिन पहले काजल दी भी दिल्ली छोड़ कर जा चुकी हैं। कालेज से इस्तीफ़ा तो महीना-भर पहले ही दे दिया था। अविजित से बीस हजार रुपया लेकर प्रभा ही उन्हें दे आई थी।

"तब तो आप ही हैं," प्रभा ने मुस्करा कर कहा और उससे नजर बचाने का अभिनय करते हुए उसका हाथ दबा दिया।

क्लब के सदस्यों ने देखा। कुछ की दिलचस्पी इस नाटक में हुई, कुछ की नहीं भी हुई पर सभी ने एक बात नोट जरूर की कि अविजित बंसल की लड़की शादी लायक़ हो चुकी।

तभी पुलिस आ गई। दृश्य बदल गया। एस. पी. साहब खुद तशरीफ़ लाए थे, यानी पुलिस की निगाह में मामला मामूली नहीं था।

क्लब के कुछ सदस्यों की एस. पी. साहब से जान-पहचान थी, सभी ऊंची सोसाइटी के लोग थे। उन्होंने अपना सवाल दुहराया—आखिर बन्दूकें कोई क्यों चुराएगा, बिक तो सकती नहीं।

"डाकुओं का गिरोह ले जाए तो बात दूसरी है," एक साहब बोले।

"या क्रांतिकारी," दूसरे सदस्य ठठा कर हंस पड़े, "यह साहब फरमा रहे थे कि कोई विजयसिंह पथिक ले गये होंगे।"

"आप कौन हैं ?" एस. पी. हंसने के बजाय गम्भीर हो गया।

"कैलाश राव," कैलाश ने मनमने भाव से जवाब दिया।

"विजयसिंह पथिक कौन हैं ?"

कैलाश ने मुंह पर हाथ रख कर जम्हाई तोड़ी और कहा, "थे।"

"यानी ?"

"मर चुके।"

"कब ?"

"राइफलों की चोरी से पहले।"

"थे कौन ?"

"क्रांतिकारी। १६४७ से पहले।"

"आप उन्हें कैसे जानते हैं ?"

"राजस्थान के पुलिस कमीशनर साहब उनके क़िस्से मामाजी को सुनाया करते थे; तभी उनका नाम सुना," कैलाश ने एक जम्हाई और तोड़ी।

"कौन मामाजी ?"

"ये महाराजा छतरपुर के भांजे हैं," सेक्रेटरी ने कहा।

"ओह," एस पी ढीला पड़ गया, बोला, "महाराजाओं के भांजे क्रांतिकारियों की बातें करने लगे। क्यों साहब, आपने यह क्यों कहा कि विजयसिंह पथिक राइफलें ले गए होंगे ?"

"मैंने कहा ?" कैलाश हक्का-बक्का उनकी तरफ़ देखता रहा, फिर हंस पड़ा और हंसते-हंसते बेंच पर बैठ गया।

"हद हो गई ! मैंने कहा था—आजादी से पहले का ज़माना होता तो मैं कहता विजयसिंह पथिक ले गए। कमीशनर जॉन साहब हर डकैती के बाद यही कहा करते थे। अब इस ज़माने में···" वह ज़ोर से हंसा, "कहना पड़ेगा डाकू मानसिंह ले गया।"

एस पी. साहब हंस तो दिये पर साथ देने भर को।

प्रभा और कैलाश दोनों समझ गए कि नये क्रांतिकारी दलों की गतिविधियों से पुलिस बिल्कुल अनजान नहीं है।

"चुप रहिए न," प्रभा ने हंस कर कहा, "कहीं आपका नाम डाकू मानसिंह के साथ न जुड़ जाए।"

लोग हंस दिये।

"अजी साहब," एक साहब बोले, "यह तो हमारे देश की ग़नीमत है कि यहां डकैतियां एक से एक गैरमामूल हो सकती हैं पर क्रांति···नामुमकिन!"

"हां, क्रांति के लिए संगठन और नेतृत्व की ज़रूरत होती है। वह अपने देश में है कहां," एक आदमी जो अब तक चुप था, बोल उठा।

लोगों के मुक़ाबले वह गम्भीर लगा। चेहरा बदसूरत होते हुए भी पहनावा और रख-रखाव दूसरी पीढ़ी के अमीरों का था।

"नहीं," प्रभा ने कहा, "मैं जानती हूं, गणराज्य का विकास भारत में प्राचीन काल में हो चुका था। सिकंदर जैसे विजेता की सेना, पंजाब के दो-तीन गणों की युद्ध-कला के मद में ही विद्रोह कर उठी थी। असल में पूंजीवाद और गणतंत्र परस्पर विरोधी व्यवस्थाएं हैं। गणराज्य की मुख्य विशेषता यह है कि उसमें वर्ग या वर्ग व्यवस्था का कोई स्थान नहीं है, सारी व्यवस्था सहयोग पद्धति पर आधारित है जब कि पूंजीवाद वर्ग व्यवस्था और प्रतिद्वन्द्वी पद्धति पर आधारित है। गांधीजी भी 'अराजकतावाद' के विरोधी नहीं थे। दरअसल अराजकतावाद नाम इस शैली के विरोधियों का दिया हुआ है, इसलिए नेगेटिव है। पॉजिटिव शब्द है 'विराज' यानी विराट जनता का सुगठित शासन। गांधीजी का खयाल था कि क्योंकि ब्रिटिश सरकार पूंजीवादी सरकार है इसलिये वह समझौते से जब भी सत्ता छोड़ेगी तो पूंजीवादी राजनैतिक दल को ही देगी। बलपूर्वक सत्ता लेने को वह असम्भव मानते थे पर साथ ही विश्वास करते थे कि एक बार अंग्रेजों से सत्ता छीन लेने पर वे पूंजीवाद से भी निबट लेंगे। बस इसी गंभीर की सज़ा भुगत रहे हैं हम लोग ! पूंजीवाद बाजी जीत गया, गांधीजी हार गये। वे ग्राम स्वराज्य पर लिखते रहे और उनके तथाकथित अनुयायी अपने शासन की प्रतिष्ठा क़ायम रखने के लिए ब्रिटिश सरकार को भी मात दे गए। नौकरशाही और पूंजीवाद घुन की तरह गणराज्य में लग गए…" प्रभा अपनी बात के प्रवाह में बह गई थी। अब सहसा कैलाश को देखा तो लगा वह सो रहा है।

वह ठीक किसी स्टीम-रोलर की तरह मन्थर गति से सड़क पर चला आ रहा था।

"सो गए क्या?" प्रभा ने उसकी बांह छूकर पूछा।

"नहीं, बदन ढीला कर रहा था। बातें आपकी सुन रहा हूं। ठीक कहा आपने। क्रान्ति का पॉजिटिव रूप लाने के लिए ही तो हम काम कर रहे हैं।"

"पर," प्रभा ने कहा, "इतनी-सी राइफलों से भला क्या होगा?"

"यह तो शुरुआत है। अभी तो न जाने कितने छापे मारे जाएंगे। एक बात और याद रखनी चाहिए, गुरिल्ला युद्ध में राइफलों पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। गांव-जंगल की जनता आमतौर पर जो हथियार इस्तेमाल करती है—बर्छी, भाला, लाठी, उन्हीं को लेकर लड़ाई लड़नी होती है।"

"इस तरह सफलता मिलेगी?"

"लौट जाना चाहती हो?"

"नहीं! कभी नहीं!"

"तो मैं चला।"

"मुझे कब बुलाया जाएगा?"

"जब कामरेड दत्त तय करेंगे।"

हाथ हिलाकर कैलाश अंधेरे में एकदम ग़ायब हो गया

"इन्तज़ार करूंगी," प्रभा ने कहा।

कोई जवाब नहीं मिला।

इन्तज़ार···

अभी तो सिर्फ़ एक दिन बीता है···

"अरे, प्रभा, तेरे राइफ़ल क्लब से राइफ़लें चोरी हो गईं, तूने बतलाया नहीं ?"

सुबह-सुबह शुभा ने कहा।

"इतनी जल्दी पूरा अखबार चाट डाला," प्रभा ने शुभा के हाथों से अखबार ले लिया।

दिल्ली राइफ़ल क्लब में चोरी।

तालेबन्द कमरे से राइफ़लें ग़ायब।

"तुझे तो कल ही पता चल गया होगा," शुभा ने कहा।

"हां।"

"लौट कर तूने बतलाया नहीं ?"

"किसे बतलाती ?"

"मुझे। पिताजी को। ममी को। किसी को भी।"

"जब मैं क्लब से लौटी तो पिताजी टेनिस खेलने गए हुए थे, तू नाटक करने। घर पर ममी और शुक्ल जी थे। शुक्लजी से मैं बात नहीं करती, ममी मुझसे नहीं करतीं, लिहाज़ा···"

"चल छोड़। यह बतला, चोरी कैसे हुई ?"

पुलिस का खयाल है चोर ले गए।"

शुभा हंसी, फिर गम्भीर हो गई। "और तेरा ?" उसने पूछा।

"जिन्हें ज़रूरत थी वे ले गए।"

"प्रभा," शुभा ने फुसफुसा कर कहा, "तेरा इससे क्या सम्बन्ध है ?"

"तू किसकी तरफ़ है ?" प्रभा ने पूछा।

"मैं ? प्रभा···इस सबसे कुछ नहीं होगा।"

"किससे होगा ?"

"विचार बदलते हैं तभी सामाजिक व्यवस्था बदलती है। बन्दूक की नली इंसान को खत्म कर सकती है, बदल नहीं सकती।"

"बेयोनेट की नोक पर फंसा कागज़ पढ़ने में लोग देर नहीं करते। हमारे शुक्ल जी कहते हैं न—भय बिन होत न प्रीत गोसाईं।"

"बन्दूक के ज़ोर पर हुआ परिवर्तन अल्पजीवी होता है। फ़्रान्स में क्रान्ति हुई···"

"वह मध्यवर्ग की क्रान्ति थी।"

"रूस में क्रान्ति हुई···"

"सबकुछ बदल गया।"

"पर इंसान नहीं बदला। वही दमन, वही शासन करने की भूख, वही कमजोर देशों पर आक्रमण, वही···"

"कम-अज-कम कभी किसी का शोषण तो नहीं करता।"

"करता है। पार्टी का सहारा लेकर, बन्दूक के ज़ोर पर।"

"वे मक़र की दिक़्क़तें हैं। मंज़िल पर पहुंच जाने पर पार्टी की ज़रूरत नहीं रहेगी और न हुकूमत की।"

"मंज़िल मिलेगी, इसका क्या भरोसा है?"

चुप रहकर प्रमा दूर ताकती रही और सुमा प्रमा को। उसने देखा···प्रमा का चेहरा फ़ौलाद की तरह सख़्त पड़ गया है। आँखों से अलौकिक प्रकाश की तरंगें कौंध रही हैं। उसके पैरों के नीचे की धरती ऊपर उठने लगी है। वह सुमा के सिर के ऊपर की ऊंचाई पर बने मंच पर खड़ी मीलों-बरसों दूर का दृश्य देख रही है।

"भरोसा यह है कि मंज़िल है!" प्रमा ने दृढ़ आवाज़ में कहा।

सुमा की निगाह अब भी मंच पर थी, मन्त्रमुग्ध वह भविष्य का रूप देख रही थी जो मंच पर कहीं पहले घट जाया करता है।

सहसा उसके ओठों से शब्द फूट पड़े।

"एक दिन ऐसा आएगा···ज़रूर!
जब आदमी आदमी से जुड़ा होगा
इस तरह कि हर आदमी हुक्म मानेगा
सिर्फ़ अपना!
एक दिन समाज वह बनेगा···ज़रूर!
जहाँ हर आदमी भरोसे के लायक़ होगा
कि ख़ुद पर हुकूमत ख़ुद कर ले।
हर आदमी सहेगा ख़ुद अपने से
कि आदमी से आदमी आज़ाद रह सके।
एक दिन व्यवस्था वह होगी···ज़रूर!
जब आदमी से आदमी का पैदाइशी फ़र्क़
किसी बड़े विधान के तहत
आपस में इस तरह बंट जाएगा
कि आदमी आदमी से फ़र्क़ होगा ज़रूर
पर बराबर भी···"

"वाह! मुकर्रर!" चौंककर सुमा और प्रमा ने देखा, अनिरुद्ध सामने खड़ा है।

दोनों में से किसी ने नहीं पूछा वह कब आया।

"उम्दा डिमोक्रेसी है," अनिरुद्ध ने कहा, "नाटक का रिहर्सल?"

"नहीं, सिर्फ़ एक संवाद।"

"आदमी अपने को फ़र्क़ मानने से सबसे ज़्यादा घबराता है। एक बार जो अपने को फ़र्क़ मान ले उसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता। तानाशाह का जन्म ऐसे ही होता है और···" अनिरुद्ध ने अंगड़ाई ले कर बदन तोड़ा, "···और आवारा का भी," उसने कहा।

"प्रभा के राइफ़ल क्लब से राइफ़लें चोरी हो गईं," सहसा शुभा के मुंह से निकला।

अनित्य प्रभा की तरफ़ मुड़ गया।

"अब क्या करने का इरादा है?" बिल्कुल सहज भाव से उसने पूछा।

"इन्तज़ार···"प्रभा ने धीमे से कहा।

"ठीक है। आधी ज़िन्दगी आदमी इन्तज़ार करता है और बाक़ी आधी पछताता है कि इन्तज़ार क्यों किया। ज़िन्दगी आसानी से कट जाती है।"

"हर इन्तज़ार पर पछताया नहीं जाता," प्रभा ने कहा।

"सिर्फ़ एक इन्तज़ार पर पछताया नहीं जाता···वक़्त नहीं मिलता···मौत का इन्तज़ार।"

"अगर किसी को वही इन्तज़ार हो?"

"प्रभा?" शुभा चीख उठी, "तू करना क्या चाहती है?"

प्रभा और अनित्य की दृष्टि मिली। अनित्य की दृष्टि में उपहास नहीं था, जिज्ञासा नहीं थी पर उदासीन भी वह नहीं था। प्रभा को उससे ढाढस मिला।

"तो वह इन्तज़ार के अलावा भी कुछ करेगा," अनित्य ने कहा।

"चाचाजी, आप भी···" शुभा बोल पड़ी।

"जिस आदमी ने कभी इन्तज़ार नहीं किया, वह जिया ही कहां?"

"पर आप···"

"शुभा तुम नाटक कर रही हो न?"

"हां।"

"क्या नाम है?"

"पहाड़ की दूसरी तरफ़।"

"कैसा है?"

"पावरफुल! इतना स्पंदन, इतना पैशन, इतना पैना···"

"व्यंग्य," अनित्य ने बात पूरी कर दी, "नाटक का सबसे दिलचस्प दृश्य कौन-सा होगा?"

"अन्त। क्लाइमैक्स! और क्या?"

"बस यही समझो कि मैं हर नाटक के क्लाइमैक्स का इन्तज़ार कर रहा हूं।"

"तब···"

"इसीलिए···"

"इसीलिए?"

"इसीलिए···इसीलिए प्रभा बी. ए. करेगी!"

"बी. ए.!" शुभा ने भौंचक स्वर में कहा।

"हां," प्रभा खिलखिलाकर हंस दी, "अगले महीने इम्तिहान हैं न।"

शुभा चुप रही। किसे बेवकूफ़ बना रहे हैं ये लोग। बी. ए. का प्रभा के लिए कितना महत्व है, शुभा क्या जानती नहीं।

"तेरे भी तो हैं," प्रभा कहती जा रही थी, "पर तू तो अभी सेकण्ड ईयर में जाएगी। पूरे दो साल पढ़ाई होगी तब जाकर बी. ए. की डिग्री मिलेगी।"

मुझसे ये सब कहने का फ़ायदा। प्रभा क्या सोच रही है, मैं जानती हूं। विमल दत्त जैसे ही बुलाएगा, चली जाएगी। बी. ए. तो महज़ एक दिखावा है…एक मुखौटा। शुभा को मुखौटों की अच्छी पहचान है। ये लोग…जानते हैं ये लोग, मैं क्या चाहती हूं। जानना चाहते भी हैं। नहीं, बस अपने में मस्त हैं।

वह चुप्पी साधे बैठी रही।

अब अनिरुद्ध ने उसकी तरफ़ देखा…यह किस इन्तज़ार में है?

हां, शुभा ने ज़रा-सी ग़लती कर डाली। प्रभा सिर्फ़ विमल दत्त के बारे में नहीं सोच रही थी। बारी-बारी से सभी का नाम उसके ज़ेहन में आया था—वासन्ती दी, अनिल, कैलाश राव, गनपत। इन्तज़ार मैं करूंगी, खुद से वह कह रही थी, क्योंकि मुझे यक़ीन है तुम लोग मुझे छोड़ोगे नहीं।

"अनिरुद्ध! अनिरुद्ध है क्या?" श्यामा के कमरे से आवाज़ आई।

"हां, मामी," कहता अनिरुद्ध उधर चल दिया।

रास्ते में शुक्ल जी से भेंट हो गई।

"अरे अनिरुद्ध भाई, आइए-आइए," उन्होंने ऐसे कहा जैसे घर आए मेहमान का स्वागत करना खास उनका कर्तव्य हो।

"आप अभी तक यहीं हैं?" अनिरुद्ध ने पूछा।

"जी हां।"

"क्यों?" उसने सीधा प्रश्न किया।

"बस "हूं। भाई साहब-मामी की सेवा में बहुत आनन्द मिलता है।"

"और आपके बीवी-बच्चे?"

"ईश्वर मालिक है।"

"अच्छा! सब मर गए!"

"नहीं-नहीं, भाई अनिरुद्ध, ईश्वर की कृपा से सब भले चंगे हैं।"

"ओह। ईश्वर की कृपा खाना-पीना भी जुटाती है।"

"आप तो भाई मज़ाक करते हैं। महीने में तीन-चार सौ रुपये भेज ही देता हूं। भाई साहब ने इन्श्योरेन्स एजेन्ट का काम दिलवा दिया है।"

"उससे तीन-चार सौ की कमाई हो जाती है?"

"नहीं, सिर्फ़ उससे नहीं। और भी छोटे-मोटे काम निकल आते हैं…भाई साहब के इतने बिज़नेस कान्टेक्ट हैं…लोगों को संदेश वगैरह पहुंचाना है…कई तरह के काम…"

"देखिए शुक्ल जी," अनिरुद्ध ने कहा, "आदमी तीन तरीक़ों से [illegible]

"प्रभा के राइफ़ल क्लब से राइफ़लें चोरी हो गईं," सहसा शुभा के मुंह से निकला।

अनित्य प्रभा की तरफ़ मुड़ गया।

"अब क्या करने का इरादा है?" बिल्कुल सहज भाव से उसने पूछा।

"इन्तज़ार···"प्रभा ने धीमे से कहा।

"ठीक है। आधी ज़िन्दगी आदमी इन्तज़ार करता है और बाक़ी आधी पछताता है कि इन्तज़ार क्यों किया। ज़िन्दगी आसानी से कट जाती है।"

"हर इन्तज़ार पर पछताया नहीं जाता," प्रभा ने कहा।

"सिर्फ़ एक इन्तज़ार पर पछताया नहीं जाता···वक़्त नहीं मिलता···मौत का इन्तज़ार।"

"अगर किसी को वही इन्तज़ार हो?"

"प्रभा?" शुभा चीख़ उठी, "तू करना क्या चाहती है?"

प्रभा और अनित्य की दृष्टि मिली। अनित्य की दृष्टि में उपहास नहीं था, जिज्ञासा नहीं थी पर उदासीन भी वह नहीं था। प्रभा को उससे ढाढस मिला।

"तो वह इन्तज़ार के अलावा भी कुछ करेगा," अनित्य ने कहा।

"चाचाजी, आप भी···" शुभा बोल पड़ी।

"जिस आदमी ने कभी इन्तज़ार नहीं किया, वह जिया ही कहां?"

"पर आप···"

"शुभा तुम नाटक कर रही हो न?"

"हां।"

"क्या नाम है?"

"पहाड़ की दूसरी तरफ़।"

"कैसा है?"

"पावरफुल! इतना स्पंदन, इतना पैशन, इतना पैना···"

"व्यंग्य," अनित्य ने बात पूरी कर दी, "नाटक का सबसे दिलचस्प दृश्य कौन-सा होगा?"

"अन्त। क्लाइमैक्स! और क्या?"

"बस यही समझो कि मैं हर नाटक के क्लाइमैक्स का इन्तज़ार कर रहा हूं।"

"तब···"

"इसीलिए···"

"इसीलिए?"

"इसीलिए···इसीलिए प्रभा बी. ए. करेगी!"

"बी. ए.!" शुभा ने भौंचक स्वर में कहा।

"हां," प्रभा खिलखिलाकर हंस दी, "अगले महीने इम्तिहान हैं न।"

शुभा चुप रही। किसे बेवकूफ़ बना रहे हैं ये लोग। बी. ए. का प्रभा के लिए कितना महत्व है, शुभा क्या जानती नहीं।

"तेरे भी तो हैं," प्रभा कहती जा रही थी, "पर तू तो अभी सैकण्ड इयर में आएगी। पूरे दो साल रगड़ाई होगी तब जाकर बी. ए. की डिग्री मिलेगी।"

सुमन से सब कहने का फ़ायदा। प्रभा क्या सोच रही है, मैं जानती हूं। विमल दत्त जैसे ही बुलाएगा, चली जाएगी। बी. ए. तो महज़ एक दिखावा है···एक मुखौटा। सुमा को मुखौटों की अच्छी पहचान है। ये लोग···जानते हैं ये लोग, मैं क्या सोचती हूं। जानना चाहते भी हैं। नहीं, बस अपने में मस्त हैं।

वह चुप्पी साधे बैठी रही।

अब अनित्य ने उसकी तरफ़ देखा···यह किस इन्तज़ार में है?

हां, सुमा ने ज़रा-सी ग़लती कर डाली। प्रभा सिर्फ़ विमल दत्त के बारे में नहीं सोच रही थी। बारी-बारी से सभी का नाम उसके ज़ेहन में आया था—काजल दी, अनिल, कैलाश राव, गनपत। इन्तज़ार मैं करूंगी, ख़ुद से वह कह रही थी, क्योंकि मुझे यक़ीन है तुम लोग मुझे छोड़ोगे नहीं।

"अनित्य! अनित्य है क्या?" श्यामा के कमरे से आवाज़ आई।

"हां, भाभी," कहता अनित्य उधर चल दिया।

रास्ते में शुक्ल जी से भेंट हो गई।

"अरे अनित्य भाई, आइए-आइए," उन्होंने ऐसे कहा जैसे घर आए मेहमान का स्वागत करना ख़ास उनका कर्त्तव्य हो।

"आप अभी तक यहीं हैं?" अनित्य ने पूछा।

"जी हां।"

"क्यों?" उसने सीधा प्रश्न किया।

"बस···हूं। भाई साहब-भाभी की सेवा में बहुत आनन्द मिलता है।"

"और आपके बीवी-बच्चे?"

"ईश्वर मालिक है।"

"अच्छा! सब मर गए!"

"नहीं-नहीं, भाई अनित्य, ईश्वर की कृपा से सब भले चंगे हैं।"

"ओह। ईश्वर की कृपा खाना-पीना भी जुटाती है।"

"आप तो भाई मज़ाक करते हैं। महीने में तीन-चार सौ रुपये भेज ही देता हूं। भाई साहब ने इन्श्योरेन्स एजेन्ट का काम दिलवा दिया है।"

"उससे तीन-चार सौ की कमाई हो जाती है?"

"नहीं, सिर्फ़ उससे नहीं। और भी छोटे-मोटे काम निकल आते हैं···भाई साहब के इतने बिज़नेस कान्टेक्ट हैं···लोगों को संदेश वग़ैरह पहुंचाना हो···कई तरह के काम···"

"देखिए शुक्ल जी," अनित्य ने कहा, "आदमी तीन हालतों में [illegible]

के लिए चौथी ग़लती करे, यह ज़िन्दगी का रवैया ज़रूर है पर वेहतर होगा कि आप यह जगह छोड़ दें।"

"क्या मतलव, अनित्य भाई, मुझसे क्या ग़लती हुई?" विनीत स्वर में शुक्ल जी ने पूछा।...

"पहली ग़लती—आपने शादी की। दूसरी ग़लती—आठ वच्चे पैदा किये। तीसरी ग़लती—उन्हें भगवान के भरोसे छोड़ा और चौथी ग़लती, ख़ुदा के फ़ज़ल से आप करेंगे ज़रूर!"

"अनित्य!" श्यामा ने फिर पुकारा।

"भाभी बुला रही हैं," शुक्ल जी ने ऐसे कहा जैसे श्यामा की आवाज़ सिर्फ़ वे सुन सकते हों, "ज़रा ध्यान रखियेगा, उनकी तवीयत..."

"जी। सुनाई दे रहा है," वात काट कर अनित्य कमरे में घुस गया।

पीछे-पीछे शुक्ल जी भी पहुंच गये।

"अनित्य," श्यामा ने उसके दोनों हाथ थाम कर कहा, "मेरी ज़िन्दगी की सिर्फ़ एक साध वाक़ी थी कि एक वार तुमसे मिल लूं।"

"अरे," अनित्य विमूढ़-सा खड़ा रह गया।

"क्या हो गया भाभी तुम्हें?" सम्भलने की कोशिश करते हुए उसने कुछ देर वाद कहा।

"अनित्य। यह घर टूट रहा है। टूट चुका है। छत गिर चुकी, फ़र्श फट कर रहेगा। कोई नहीं वचेगा यहां, कोई नहीं। तुम ख़ुद देख लेना, अनित्य। यहां इतने जलज़ले आएंगे कि टूट कर यह घर गिरेगा नहीं, भाप वनकर उड़ जाएगा। हस्ती मिट जाएगी इसकी!"

"भाभी!"

"यह दे दीजिए," शुक्ल जी ने एक गोली आगे वढ़ाते हुए कहा।

"क्या है?"

"सिडेटिव। मैं कह रहा था न, ध्यान रखिएगा, इनकी तवीयत ठीक नहीं है। आपको देख कर अप्सेट हो गई हैं इसी से..."

"शट-अप," निहायत शालीनता से अनित्य ने कहा।

"जी?"

"शट-अप। गोली समेत आप वाहर चले जाइये। शुक्रिया।"

"अनित्य, मेरा एक काम करोगे?" शुक्ल जी के वाहर जाते ही श्यामा ने फुसा कर अनित्य से कहा।

"कहो।"

"सुधांशु को मार दो।"

"क्या!"

"हाँ, अनिरुद्ध। उनका कुछ नहीं य नेगा। इनकी'''तुम्हारे भाई साहब की'''अविजित की यह सबसे बड़ी हार है, और यह हार मैंने बख्शी है।" श्यामा की सूखी आँखों में उन्माद था पर आवाज़ में हिस्टीरिया बिल्कुल नहीं।

"भाभी," बहुत स्नेह से अनिरुद्ध ने पुकारा।

"सिर्फ़ तुम यह काम कर सकते हो, अनिरुद्ध। कोई और नहीं समझेगा।"

"आदमी ख़ुद अपनी जिन्दगी ज़रूर ले सकता है पर दूसरे की जिन्दगी'''"

"और जिस आदमी को ख़ुदी न हो?"

अनिरुद्ध चुप रहा।

"सुधांशु यह तय नहीं कर सकता कि उसे ज़िन्दा रहना चाहिए या मर जाना चाहिए। न अब, न बीस साल बाद।"

"मैं भी तो'''" अनिरुद्ध कह उठा।

श्यामा ने ठीक से अनिरुद्ध का चेहरा निगाहों में फोकस किया। उसकी आँखों का उन्माद पिघला, फिर जम गया।

दोनों हाथों से अनिरुद्ध का चेहरा पकड़ कर वह उसे अपने चेहरे के क़रीब खींच लाई, इस तरह कि उसके ओंठ उसके कान पर ठहर गए।

"कौन उन पर ज़्यादा भारी पड़ता है, सुधांशु या मैं?" उसने फुसफुसा कर कहा।

अनिरुद्ध ने महसूस किया, उसके हाथ और—शायद पूरा बदन—थर-थर काँप रहे हैं।

अपना चेहरा उसके हाथों से छुड़ा कर उसने उसके कन्धे कस कर थाम लिये।

"लखनऊ चलोगी!" उसने कहा।

श्यामा हक्की-बक्की-सी उसे देखती रही, क्या कह रहा है अनिरुद्ध'''

"तुम लखनऊ की सबसे ख़ूबसूरत लड़की मशहूर थीं, याद है?"

श्यामा के बौखलाए चेहरे पर हल्की-सी मुस्कराहट दौड़ गई।

"याद है न?" अनिरुद्ध ने छेड़ते हुए कहा।

श्यामा का चेहरा कुछ और खिला।

"ठीक है तब। चलो, कुछ दिन लखनऊ घूम आएँ," अनिरुद्ध ने कहा।

अनिरुद्ध के आने की ख़बर सुन कर अविजित दफ़्तर से टेनिस खेलने नहीं गया, सीधा घर लौट आया। प्रभा घर पर थी ही, राइफ़ल क्लब बन्द था। शुभा एक दिन के लिए रिहर्सल छोड़ने को तैयार हो गई। अनिरुद्ध का सहारा ले कर श्यामा बैठक में चली आई। शोभी सबके लिए चाय ले आई और आज महीनों बाद सब इकट्ठा बैठ कर चाय पीने लगे।

अनिरुद्ध ने लखनऊ का ज़िक्र छेड़ दिया।

"तुम्हें कमाल याद है भाभी? वही जिसने स्कूल की ग्रुप फ़ोटो में से तुम्हारी

फ़ोटो निकलवा कर बड़ी करवा ली थी और तुम्हारी सगाई के बाद भाई साहब को यह लिख कर भेज दी थी कि, मेरे खूने जिगर की तोहमत आपके सिर है।"

श्यामा खिलखिला कर हंस दी।

"हां," उसने कहा और चहक कर अविजित से बोली, "तुम्हें याद है?"

बहुत दिनों बाद अविजित के चेहरे पर वह मोहक मुस्कराहट खिल उठी जिसे उसके साथी 'वशीकरण मन्त्र' कहकर पुकारा करते थे।

"हां, याद है," उसने कहा," मैंने सोचा था, चलो इस बहाने फ़ोटो तो हाथ लगी वरना तुम्हारे वालिद जज साहब से मांगने की हिम्मत तो हमारी कभी होती नहीं।"

"मैंने फ़ौरन भाई साहब की तरफ़ से शुक्रिया अदा करते हुए उसे खत डाल दिया था कि और जो हो हम इस बात की दाद देते हैं कि आपके खूनेजिगर का सबब है लाजवाब," अनित्य बोला।

"क्या?" अविजित ने कहा, "यह तो तुमने मुझसे पहले कभी कहा नहीं।"

"कहना क्या था, यह तो मेरा फ़र्ज़ था," अनित्य ने इस अदा के साथ कहा कि सब लोग ठठा कर हंस दिये।

"एक कोई रस्तोगी भी तो हुआ करता था?" शुभा ने कहा।

"हां···बेचारा···" अनित्य ने ठंडी सांस भर कर कहा।

"क्यों, क्या हुआ उन्हें?"

"खुदकुशी कर ली।"

"नहीं तो," श्यामा ने टोका, "क्या बेसिर-पैर की उड़ा रहे हो। अभी पिछले साल तो तुमसे मिलने आया था।"

"मैंने कहा खुदकुशी कर ली, यह नहीं कि मर गया।"

"क्या मतलब?"

"शेर कहने शुरू कर दिये। इस क़दर घटिया अशआर कहता था कि मैंने कई बार कहा, भई इससे तो बेहतर है तू गले में फन्दा डाल कर लटक जा, तेरी रूह भी निजात पाए और हमारी भी।"

एक बार फिर कमरे में ठहाका गूंजा।

"और सुनाइए चाचाजी," खोखी ने कहा, "और कौन-कौन थे?"

"चुप!" श्यामा ने हंसते हुए घुड़का, "यह क्या शुरू कर दिया अनित्य।"

"एक था करीमबख्श···" अनित्य ने कहा।

"चुप!" श्यामा ने टोका।

"मुहर्रम की औलाद। हर चीज़ का स्याह पहलू देखा करता था पर इन्हें देखा तो···" अविजित ने कहा।

"चुप रहो न," श्यामा ने फिर बाधा दी।

"बारात में आया तो ओढ़नी-घूंघट में लिपटी दुलहिन के सिर्फ़ पांव देख पाया।

दिल पर हाथ रख कर बोला, 'यार, नूरजहां के पांव ऐसे ही रहे होंगे'। मैंने कहा, और तू जरूर पापोश रहा होगा," अनिरुद्ध बोला।

"क्या बच्चों के सामने···" श्यामा ने नाराज होने का नाटक किया पर बीच ही में हंसी खनक उठी। चेहरे के मोतिया रंग पर निखार आया। गालों पर गुलाल बिखर गया। आंखों में गुलाबी मस्ती छलक उठी। कमान की तरह खिंचे ओंठ फिर-फिर हंसी से थिरकते रहे।

कमरे में बैठे सभी प्राणियों ने रश्क के साथ सोचा, कोई इतना खूबसूरत भी हो सकता है।

"पता नहीं हममें से कोई ममी की तरह खूबसूरत क्यों नहीं हुआ," शुभा ने ललक के साथ कहा।

"तू अपनी बात कर!" फ़ौरन प्रभा ने टोका।

"क्यों," सोसी ने मासूमियत से कहा, "प्रभा से तो शुभा सुन्दर है।"

प्रभा ज़ोर से हंस दी। बाक़ी लोग भी।

"चल इसी बात पर मिर्च के पकौड़े तलवा दे," अविजित ने हंसते-हंसते सोसी की पीठ पर प्यार भरा धौल जमा कर कहा।

सोसी बाहर निकली ही थी कि हाथ में अटैची लिये शुक्ल जी ने कमरे में प्रवेश किया।

"आज्ञा लेने आया हूं, भाई साहब," विनीत स्वर में उन्होंने कहा।

"किस बात की?" अचरज से अविजित ने पूछा।

"इतने दिन आपने आश्रय दिया, आभारी हूं। अब विदा लूंगा।"

"यह क्या मज़ाक है।"

शुक्ल जी ने आगे बढ़कर अविजित के पैर छुए।

"मज़ाक नहीं, भाई साहब, सच है। अनिरुद्ध भाई का कहना ठीक है, मुझे बहुत पहले चले जाना चाहिए था। इस मोह-माया के जाल में···" उनका गला रुंध गया, "कभी किसी सेवा के लायक समझें तो याद कीजिएगा।"

"यह सब क्या है, अनिरुद्ध?" अविजित ने पूछा।

"बात एकदम साफ़ है, भाई साहब। शुक्ल जी को अपना घर-परिवार याद आ रहा है। वे जाना चाहते हैं।'

"नहीं-नहीं," श्यामा ने सरल भाव से कहा, "आप ऐसे चले जाएंगे क्या···"

अविजित का चेहरा बदल गया। स्निग्ध मुस्कराहट गायब हो गई। आंखों में चालाकी उतर आई।

"देख लो···जाना ही है तो दूसरी बात है वरना मैंने सिफारिश का तो मैं बात चलाई है···इस वक्त दिल्ली छोड़कर चले जाना तो बाद में नौकरी मिलना··· नामुमकिन नहीं तो मुश्किल जरूर होगा," उसने नपे-तुले शब्दों में कहा।

"आपको हक है भाई साहब, पर मैं नहीं चाहता आप पर बोझ बनूं। आशीर्वाद

चीज़ों पर आप जानते ही हैं, मेरा मोह नहीं है," भाव-विह्वल कण्ठ से शुक्ल जी ने उच्चारित किया, "त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।

काम: क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत ॥"

"काम और क्रोध का त्याग कर देने से नरक का द्वार संकरा ज़रूर हो जाएगा, शुक्ल जी," प्रभा ने कहा, "पर आप दुबले-पतले आदमी हैं, सिर्फ़ लोभ के सहारे ही भीतर पहुंच जाएंगे।"

अविजित कांप उठा।

"प्रभा!" श्यामा ने फटकारा।

प्रभा उठी और कमरे से बाहर चली गई।

"बच्चे भी मेरा…" शुक्ल जी उसी विह्वल कण्ठ में कहते गए।

"नहीं-नहीं, शुक्ल जी," श्यामा ने कहा, "वह तो है ही बदतमीज़। हम लोग तो आपको घर के आदमी से भी बढ़ कर मानते हैं।"

अविजित के माथे की शिकन और गहरी हुई।

"नौकरी करनी न हो तो मुझे अभी बतला दो," उसने कहा, "खामख्वाह मैं कोशिश करता फिरूं।"

शुभा ने चाय की केतली उठाकर बची पड़ी ठण्डी चाय प्याले में डाली और सिर झुका कर जल्दी-जल्दी घूंट भरने लगी, जैसे ऐसा करने से उसे आस-पास का सुनाई देना बन्द हो जाएगा।

"मेरे लिए आपका हुक्म ही सबकुछ है," शुक्ल जी ने कहा।

उनकी दृष्टि अनित्य की तरफ़ घूम गई।

"ठीक है," अनित्य ने कहा, "आप जीत गए। अटैची भीतर रख आइए।"

उसकी बात पूरी नहीं हुई। सुधांशु की चीखों ने आखिरी शब्दों को सोख लिया।

"उल-ई! उल-ई!" चीखता सुधांशु कमरे के दरवाज़े पर दिखलाई दिया और ज़मीन पर पैर घसीटता हुआ शुक्ल जी की तरफ़ बढ़ा।

"यह पैर उठाकर क्यों नहीं चलता?" अविजित ने कहा।

सुधांशु के पीछे-पीछे खोखी अन्दर आई। दौड़कर उसने सुधांशु को पकड़ा और शुक्ल जी के पास पहुंचा दिया।

शुक्ल जी ने हाथ का अटैची नीचे नहीं रखा और न दूसरा हाथ बढ़ाकर सुधांशु को थामा।

सुधांशु फ़र्श पर लोट गया।

"उल-ई! उल-ई!" चीखता वह चकरघिन्नी खाकर शुक्ल जी के पैरों के पास आ गिरा।

झपट कर अविजित कुर्सी से उठ खड़ा हुआ।

"क्या उलाई !" वह ज़ोर से चिल्लाया।

श्यामा ने अनिरुद्ध का हाथ अपनी मुट्ठी में कस लिया।

सुमा के हाथ से प्याला फिसल गया और चाय छलक कर कालीन पर फैल गई।

"कर क्या रही हो तुम !" अविजित दहाड़ा।

डर कर सुधांशु शुक्ल जी के पैरों के बीच दुबक गया।

अनिरुद्ध ने उठने की कोशिश की पर श्यामा की मुट्ठी मुर्दा हाथ की तरह उसके हाथ पर जकड़ी हुई थी। वह हाथ छुड़ा नहीं पाया।

"चाय-चाय-चाय !" सुधांशु ने कहा।

"चाय ! चाय मांग रहा है, चाय !" उसकी बात समझ लेने की खुशी में सोसो किलक उठी।

"तो दे दो चाय !" अविजित उसी पर बरस पड़ा।

घबरा कर सोसो बाहर जाने लगी तो वह फिर चीख़ा, "उसे साथ लेकर जाओ।"

सोसो ने खींच कर उसे शुक्ल जी के पैरों के पास से निकालने की कोशिश की पर सुधांशु टस से मस नहीं हुआ। सोसो ने पूरा ज़ोर लगा कर उसे घसीटा तो थूक से भरा मुंह आगे बढ़ा कर उसने उसके हाथ पर दांत गड़ा दिये। खून और थूक से उसका हाथ सन गया। सोसो चीख़ मार कर अलग छिटक गई और ज़ोर से रो पड़ी।

यन्त्रचालित अविजित आगे बढ़ा और तड़ाक से एक तमाचा सुधांशु के गाल पर जड़ दिया।

सुधांशु चीख़ा नहीं। उसकी आंख से आंसू नहीं गिरा। बस, वह अपने में और सिमट गया और खुल आए मुंह से थूक के लोथड़े गिरने लगे।

अनिरुद्ध का हाथ श्यामा की मुट्ठी की जकड़न से छूट गया।

सुमा इतनी ज़ोर से चीख़ी कि सोसो का रोना थम गया।

अनिरुद्ध उठकर शुक्ल जी के पास आ गया। उसके हाथ से अटैची लेकर धीमी पर दृढ़ आवाज़ में कहा, "उसे उठाइए !"

शुक्ल जी ने सुधांशु को उठा लिया।

"जाइए," अनिरुद्ध ने कहा।

शुक्ल जी सुधांशु को गोद में लिये भीतर चले गए।

अनिरुद्ध वापिस पलटा ही था कि सोसो की ज़ोरदार चीख़ सुनाई दी, "मम्मी बेहोश हो गई !"

अनिरुद्ध श्यामा के पास न जाकर अविजित के पास चला आया।

शर्म से गड़ा अविजित, बेसहारा हाथ रोबो की तरह हवा में ताने, अपनी जगह स्तब्ध खड़ा था।

"यह ठीक है," अनिरुद्ध ने कहा, "एकाध थप्पड़ मारने से कुछ नहीं बिगड़ता।"

चीज़ों पर आप जानते ही हैं, मेरा मोह नहीं है," भाव-विह्वल कण्ठ से शुक्ल जी ने उच्चारित किया, "त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।

काम: क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत ॥"

"काम और क्रोध का त्याग कर देने से नरक का द्वार संकरा ज़रूर हो जाएगा, शुक्ल जी," प्रभा ने कहा, "पर आप दुबले-पतले आदमी हैं, सिर्फ़ लोभ के सहारे ही भीतर पहुंच जाएंगे।"

अविजित कांप उठा।

"प्रभा!" श्यामा ने फटकारा।

प्रभा उठी और कमरे से बाहर चली गई।

"बच्चे भी मेरा···" शुक्ल जी उसी विह्वल कण्ठ में कहते गए।

"नहीं-नहीं, शुक्ल जी," श्यामा ने कहा, "वह तो है ही बदतमीज़। हम लोग तो आपको घर के आदमी से भी बढ़ कर मानते हैं।"

अविजित के माथे की शिकन और गहरी हुई।

"नौकरी करनी न हो तो मुझे अभी बतला दो," उसने कहा, "ख़ामख्वाह मैं कोशिश करता फिरूं।"

शुभा ने चाय की केतली उठाकर बची पड़ी ठण्डी चाय प्याले में डाली और सिर झुका कर जल्दी-जल्दी घूंट भरने लगी, जैसे ऐसा करने से उसे आस-पास का सुनाई देना बन्द हो जाएगा।

"मेरे लिए आपका हुक्म ही सबकुछ है," शुक्ल जी ने कहा।

उनकी दृष्टि अनित्य की तरफ़ घूम गई।

"ठीक है," अनित्य ने कहा, "आप जीत गए। अटैची भीतर रख आइए।"

उसकी बात पूरी नहीं हुई। सुधांशु की चीखों ने आख़िरी शब्दों को सोख लिया।

"उल-ई! उल-ई!" चीखता सुधांशु कमरे के दरवाज़े पर दिखलाई दिया और ज़मीन पर पैर घसीटता हुआ शुक्ल जी की तरफ़ बढ़ा।

"यह पैर उठाकर क्यों नहीं चलता?" अविजित ने कहा।

सुधांशु के पीछे-पीछे खोखी अन्दर आई। दौड़कर उसने सुधांशु को पकड़ा और शुक्ल जी के पास पहुंचा दिया।

शुक्ल जी ने हाथ का अटैची नीचे नहीं रखा और न दूसरा हाथ बढ़ाकर सुधांशु को थामा।

सुधांशु फ़र्श पर लोट गया।

"उल-ई! उल-ई!" चीखता वह चकरघिन्नी खाकर शुक्ल जी के पैरों के पास आ गिरा।

झपट कर अविजित कुर्सी से उठ खड़ा हुआ।

"क्या उसई !" वह जोर से चिल्लाया।

श्यामा ने अनिरुद्ध का हाथ अपनी मुट्ठी में कस लिया।

शुभा के हाथ से प्याला फिसल गया और चाय छलक कर कालीन पर फैल गई।

"कर क्या रहो हो तुम !" अविजित दहाड़ा।

डर कर सुधांशु शुक्ल जी के पैरों के बीच दुबक गया।

अनिरुद्ध ने उठने की कोशिश की पर श्यामा की मुट्ठी मुर्दा हाथ की तरह उसके हाथ पर जकड़ी हुई थी। वह हाथ छुड़ा नहीं पाया।

"चाय-चाय-चाय !" सुधांशु ने कहा।

"चाय ! चाय मांग रहा है, चाय !" उसकी बात समझ लेने की खुशी में सोसी खिलक उठी।

"तो दे दो चाय !" अविजित उसी पर बरस पड़ा।

घबरा कर सोसी बाहर जाने लगी तो वह फिर चीखा, "उसे साथ लेकर जाओ।"

सोसी ने खींच कर उसे शुक्ल जी के पैरों के पास से निकालने की कोशिश की पर सुधांशु टस से मस नहीं हुआ। सोसी ने पूरा जोर लगा कर उसे घसीटा तो थूक से भरा मुंह आगे बढ़ा कर उसने उसके हाथ पर दांत गड़ा दिये। खून और थूक से उसका हाथ सन गया। सोसी चीख मार कर अलग छिटक गई और जोर से रो पड़ी।

यन्त्रचालित अविजित आगे बढ़ा और तड़ाक से एक तमाचा सुधांशु के गाल पर जड़ दिया।

सुधांशु चीखा नहीं। उसकी आंख से आंसू नहीं गिरा। बस, वह अपने में और सिमट गया और खुले हुए मुंह से थूक के लेवड़े गिरने लगे।

अनिरुद्ध का हाथ श्यामा की मुट्ठी की जकड़न से छूट गया।

शुभा इतनी जोर से चीखी कि सोसी का रोना थम गया।

अनिरुद्ध उठकर शुक्ल जी के पास आ गया। उसके हाथ से अटैची लेकर धीमी पर दृढ़ आवाज में कहा, "इसे उठाइए !"

शुक्ल जी ने सुधांशु को उठा लिया।

"आइए," अनिरुद्ध ने कहा।

शुक्ल जी सुधांशु को गोद में लिये भीतर चले गए।

अनिरुद्ध वापिस पलटा ही था कि सोसी की जोरदार चीख सुनाई दी, "मम्मी बेहोश हो गई !"

अनिरुद्ध श्यामा के पास न जाकर अविजित के पास चला आया।

शर्म से गड़ा अविजित, बेसहारा हाथ रोबो की तरह हवा में ताने, अपनी जगह स्तब्ध खड़ा था।

"यह ठीक है," अनिरुद्ध ने कहा, "एकाध थप्पड़ मारने से कुछ नहीं बिगड़ता।"

चीज़ों पर आप जानते ही हैं, मेरा मोह नहीं है," भाव-विह्वल कण्ठ से शुक्ल जी ने उच्चारित किया, "त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।

काम: क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत ॥"

"काम और क्रोध का त्याग कर देने से नरक का द्वार संकरा ज़रूर हो जाएगा, शुक्ल जी," प्रभा ने कहा, "पर आप दुबले-पतले आदमी हैं, सिर्फ़ लोभ के सहारे ही भीतर पहुंच जाएंगे।"

अविजित कांप उठा।

"प्रभा!" श्यामा ने फटकारा।

प्रभा उठी और कमरे से बाहर चली गई।

"बच्चे भी मेरा..." शुक्ल जी उसी विह्वल कण्ठ में कहते गए।

"नहीं-नहीं, शुक्ल जी," श्यामा ने कहा, "वह तो है ही बदतमीज़। हम लोग तो आपको घर के आदमी से भी बढ़ कर मानते हैं।"

अविजित के माथे की शिकन और गहरी हुई।

"नौकरी करनी न हो तो मुझे अभी बतला दो," उसने कहा, "खामख्वाह मैं कोशिश करता फिरूं।"

शुभा ने चाय की केतली उठाकर बची पड़ी ठण्डी चाय प्याले में डाली और सिर झुका कर जल्दी-जल्दी घूंट भरने लगी, जैसे ऐसा करने से उसे आस-पास का सुनाई देना बन्द हो जाएगा।

"मेरे लिए आपका हुक्म ही सबकुछ है," शुक्ल जी ने कहा।

उनकी दृष्टि अनित्य की तरफ़ घूम गई।

"ठीक है," अनित्य ने कहा, "आप जीत गए। अटैची भीतर रख आइए।"

उसकी बात पूरी नहीं हुई। सुधांशु की चीखों ने आखिरी शब्दों को सोख लिया।

"उल-ई! उल-ई!" चीखता सुधांशु कमरे के दरवाज़े पर दिखलाई दिया और ज़मीन पर पैर घसीटता हुआ शुक्ल जी की तरफ़ बढ़ा।

"यह पैर उठाकर क्यों नहीं चलता?" अविजित ने कहा।

सुधांशु के पीछे-पीछे खोखी अन्दर आई। दौड़कर उसने सुधांशु को पकड़ा और शुक्ल जी के पास पहुंचा दिया।

शुक्ल जी ने हाथ का अटैची नीचे नहीं रखा और न दूसरा हाथ बढ़ाकर सुधांशु को थामा।

सुधांशु फ़र्श पर लोट गया।

"उल-ई! उल-ई!" चीखता वह चकरघिन्नी खाकर शुक्ल जी के पैरों के पास आ गिरा।

झपट कर अविजित कुर्सी से उठ खड़ा हुआ।

"क्या उसर्द !" वह ज़ोर से चिल्लाया।

श्यामा ने अनिरुद्ध का हाथ अपनी मुट्ठी में कस लिया।

शुभा के हाथ से प्याला छिटक गया और चाय छलक कर कालीन पर फैल गई।

"खड़ी क्या रही हो तुम !" अविजित दहाड़ा।

डर कर सुधांशु शुक्ल जी के पैरों के बीच दुबक गया।

अनिरुद्ध ने उठने की कोशिश की पर श्यामा की मुट्ठी मुर्दा हाथ की तरह उसके हाथ पर जकड़ी हुई थी। वह हाथ छुड़ा नहीं पाया।

"ताय-ताय-ताय !" सुधांशु ने कहा।

"चाय ! चाय मांग रहा है, चाय !" उसकी बात समझ लेने की खुशी में सोमी किलक उठी।

"तो दे दो चाय !" अविजित उसी पर बरस पड़ा।

घबरा कर सोमी बाहर जाने लगी तो वह फिर चीखा, "उसे साथ लेकर जाओ।"

सोमी ने खींच कर उसे शुक्ल जी के पैरों के पास से निकालने की कोशिश की पर सुधांशु टस से मस नहीं हुआ। सोमी ने पूरा ज़ोर लगा कर उसे घसीटा तो थूक से भरा मुंह आगे बढ़ा कर उसने उसके हाथ पर दांत गड़ा दिये। खून और थूक से उसका हाथ सन गया। सोमी चीख मार कर अलग छिटक गई और ज़ोर से रो पड़ी।

यन्त्रचालित अविजित आगे बढ़ा और सड़ाक से एक तमाचा सुधांशु के गाल पर जड़ दिया।

सुधांशु चीखा नहीं। उसकी आंख से आंसू नहीं गिरा। बस, वह अपने में और सिमट गया और खुल आए मुंह से थूक के लेवड़े गिरने लगे।

अनिरुद्ध का हाथ श्यामा की मुट्ठी की जकड़न से छूट गया।

शुभा इतनी ज़ोर से चीखी कि सोमी का रोना थम गया।

अनिरुद्ध उठकर शुक्ल जी के पास आ गया। उसके हाथ से अटैची लेकर धीमी पर दृढ़ आवाज़ में कहा, "उसे उठाइए !"

शुक्ल जी ने सुधांशु को उठा लिया।

"आइए," अनिरुद्ध ने कहा।

शुक्ल जी सुधांशु को गोद मे लिये भीतर चले गए।

अनिरुद्ध वापिस पलटा ही था कि सोमी की ज़ोरदार चीख सुनाई दी, "ममी बेहोश हो गईं !"

अनिरुद्ध श्यामा के पास न जाकर अविजित के पास चला आया।

शर्म से गड़ा अविजित, बेसहारा हाथ रोबो की तरह हवा में ताने, अपनी जगह स्तब्ध खड़ा था।

"यह ठीक है," अनिरुद्ध ने कहा, "एकाध थप्पड़ मारने से कुछ नहीं बिगड़ता।"

अविजित के भीतर आंसुओं का सैलाव उमड़ आया।

एक बार उसकी नजर अनित्य से मिली और वह तेज़ी से कमरे से बाहर भाग गया।

७

"शुभा!" हाथ में चिट्ठी पकड़ कर अविजित ने जोर से आवाज़ लगाई।

"जी?" शुभा बरामदे में चली आई।

"कैलाश राव कौन है?" अविजित ने सवाल दागा।

"कैलाश राव? कैलाश···राव···? जी, पता नहीं।"

"यूनिवर्सिटी में पढ़ता है?"

"मालूम नहीं।"

"तुम उसे नहीं जानती?"

"जी नहीं।"

"यह कैसे मुमकिन है। प्रभा ने तुमसे उसका ज़िक्र नहीं किया?"

"नहीं तो। क्या हुआ?"

"प्रभा ने उससे शादी कर ली।"

"शादी! प्रभा ने? कैलाश राव से!"

"हां। यह लो उसकी चिट्ठी।"

अविजित ने चिट्ठी उसके पास फेंक दी। तब देखा प्याले में उंडेली चाय बिल्कुल ठंडी हो चुकी है। दो घूंट पीकर सिगरेट जलाई ही थी कि ऐश-ट्रे के नीचे रखे खत पर नजर पड़ गई। फिर···,

एक सांस में शुभा पूरी चिट्ठी पढ़ गई।

पूज्य पिताजी,

मैंने कैलाश राव से शादी कर ली है। हम दिल्ली छोड़ कर जा रहे हैं। उनके मां-बाप को शादी से ऐतराज था इसलिए अचानक यह क़दम उठाना पड़ा। क्षमा। पर आप नाराज़ नहीं होंगे। मैंने आपकी ज़िम्मेवारी खुद निभा दी। कैलाश राव हर दृष्टि

ने योग्य वर है। महाराजा छतरपुर के भांजे और जो कुछ होना होता है, वह सब भी।

आपकी बेटी, प्रभा।

शुभा ने देखा, लिफ़ाफ़े पर डाक की मुहर नहीं है।

"अब बतलाओ, कैलाश राव कौन है?" अविजित ने फिर सवाल किया।

"इसमें लिखा है महाराजा छतरपुर के भांजे हैं," शुभा ने कहा।

"वह मैंने पढ़ लिया। दिल्ली में कहां था? क्या करता था? प्रभा से कैसे मिला?"

"मैं कुछ नहीं जानती, पिताजी। सच मानिए, मुझे तो यह चिट्ठी एक मज़ाक़ मज़ाक़ लग रही है।"

"क्यों?"

"प्रभा और···कैलाश राव? कौन कैलाश राव? प्रभा उससे कैसे प्यार कर सकती है?"

"क्यों?"

"वह तो···"

विमल दत्त से प्यार करती है, शुभा ने कह ही दिया होता मगर आखिरी क्षण ज़बान काट कर शब्द भीतर न घोंट लिए होते। विमल दत्त का नाम ऐसा नहीं है जो यूंही ज़बान से फिसल जाने दिया जाए।

विमल दत्त का नाम।

विमल दत्त···प्रभा···कैलाश राव···राइफ़ल क्लब···यह चिट्ठी···राइफ़ल क्लब में चोरी···प्रभा का इन्तज़ार···विमल दत्त···काजल बनर्जी···ओह प्रभा!

"तुमसे कुछ कहा था उसने!" अधीर होकर अविजित ने पूछा।

"नहीं," शुभा ने सम्भल कर कहा।

"फिर तुम कैसे कह सकती हो, प्रभा कैलाश राव से···प्रभा ग़लत क्यों लिखेगी? कल शाम छह बजे उसका फ़ोन आया था—रात को घर नहीं आएगी, तोषी के घर सोएगी। असल में वह कैलाश राव के साथ···मेरी समझ में नहीं आता हमसे कहने में उसे डर क्या था? हमसे कहती, हम धूमधाम से उसकी शादी करते। कैलाश के मां-बाप को ऐतराज़ है तो क्या हुआ। अब भी क्या बिगड़ा है···शादी कर ली तो कर ली···मैं फ़ौरन महाराजा छतरपुर से मिलता हूं···"

शुभा ने अचरज के साथ अविजित को देखा। वे तो दिलोजान से चाहते हैं कि प्रभा ने कैलाश राव से शादी कर ली हो। तो क्या इन्हें भी वही डर है? घर प्रभा को छोड़ना ही था। शादी के लिए नहीं छोड़ा तो···नहीं, दूसरा विकल्प बहुत भयानक है।

"सोचता हूं, महाराजा छतरपुर को फ़ोन कर लूं···या ही आऊं···क्यों?"

"फ़ोन करना शायद ठीक न रहे," शुभा ने कहा।

"हां-हां, हो ही आऊंगा," अविजित ने कहा, "पगली है प्रभा भी। हम लोगों को भला क्या ऐतराज़ होता। लड़का-लड़की एक दूसरे को पसन्द करें, इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है···"

अविजित अपनी कह रहा था, शुभा अपना सोच रही थी।

···काजल बनर्जी दिल्ली छोड़कर चली गई हैं। विमल दत्त का पता ठिकाना कोई जानता नहीं। अब प्रभा चली गई, अजनबी कैलाश राव के साथ। क्या बात हो सकती है? नहीं, जानने की कोशिश मत करो। अनजान, एकदम अनजान बने रहो। इसी में सबकी सुरक्षा है। खत में जो लिखा है वही सच है, उसके सिवाय सच और कुछ नहीं है।

···जी···जी हां···प्रभा और कैलाश राव का प्यार चल रहा था···जी हां, मैं पहले से जानती थी···जी नहीं, मुझे उसने उनसे कभी नहीं मिलवाया···क्यों नहीं मिलवाया? कमाल है जनाब, छोटी बहनों को भावी वर से मिलवाने का क़ायदा कहां देखा आपने? क़ानूनन साली बन जाओ तब बात दूसरी है···घर पर बतलाये बिना शादी क्यों की? कर ली···प्रभा, आप जानते तो हैं, आज़ाद खयाल लड़की है···दहेज वगैरह के सख्त खिलाफ़···कैलाश के मां-बाप को ऐतराज था ही···अजी, बड़ी शैतान लड़की है प्रभा, लोगों को चौंकाने में बड़ा मज़ा आता है उसे···इसी को लीजिए, खत पहले दिन ही लिख कर बरामदे में चाय की मेज पर पड़े ऐश-ट्रे के नीचे दबा गई। जानती थी, सुबह चाय के साथ पिता जी सिगरेट पिएंगे और नजर सीधी खत पर पड़ेगी। अभी देखिए, दो-चार दिन में कैलाश को साथ लिए अचानक घर पर आ धमेकेगी और सबको चौंका देगी···नहीं, दो-चार दिन ग़लत निकल गया मेरे मुंह से···आएगी महीना बाद, हनीमून मना कर···हां, उससे पहले मेरे नाम खत जरूर आएगा, खूब लम्बा, खबरों से भरा···

शुभा अपने संवादों का अभ्यास कर रही है। आवाज़ नहीं निकल रही पर चेहरे पर भाव आ जा रहे हैं। अविजित उसे घूर रहा है।

"राइफ़ल क्लब!" सहसा अविजित ने कहा, "ज़रूर वह कैलाश राव से क्लब में मिली होगी। मैं सोचता था शाम को वह काजल के पास जाती है पर···" सहसा अविजित मुक्त कण्ठ से हंस पड़ा, "वह कैलाश था," उसने कहा, "वह कैलाश के साथ होती थी!"

"पर," शुभा ने टोका, "तीन-चार महीनों से तो वह घर पर ही रहती···"

"इम्तिहान थे न।"

"इम्तिहान निबटे तो ढाई महीने हो गए। पिछले महीने नतीजा भी निकल चुका···"

प्रभा की थर्ड डिवीज़न आई थी। भारतीय इतिहास के ब्रिटिश युग में फ़ेल हो गई थी।

"यह कैसे हुआ ?" चकित अविजित ने पूछा था ।

प्रभा और यह डिवीजन ! सुमा ने ही दी थी ।

पर खुद प्रभा ठठा कर हंस पड़ी थी ।

"ब्रिटिश इण्डिया में फ्रेंच यानी वास्तविक इतिहास की जानकारी में शत-प्रतिशत अंकों से पास ।"

सुमा को सब अच्छी तरह याद है, अविजित, लगता है, भूल गया, या···

"कैलाश दिल्ली में नहीं होगा, कहीं बाहर गया होगा, इसी से घर पर रहती होगी और···अब समझ में आया रिजल्ट क्यों बिगड़ गया" अविजित ने इतने में एक हल और ढूंढ लिया ।

सुमा का ध्यान उस तरफ़ नहीं था···

परसों···अनिरुद्ध आया था···हमेशा की तरह, अचानक ।

"पढ़ाई का ख़ात्मा मुबारक," प्रभा से कहा था, "अब क्या इरादा है ?"

"हाथ मिलाइए चाचाजी," प्रभा ने गम्भीर होकर कहा था, "मैं शुरुआत के लिए तैयार हूं । कहिए—विश यू द बेस्ट ऑफ़ लक ।"

अनिरुद्ध ने हाथ मिलाया था, कहा था, "विश यू द बेस्ट ऑफ़ मोरगेन्स ।"

कैलाश का नाम तो उस दिन भी नहीं लिया था उसने ।

फिर···

"अनिरुद्ध, प्रभा ने शादी कर ली ! अविजित की आवाज सुनकर सुमा चौंकी ।

देखा, अनिरुद्ध घर में घुसा है ।

"मालूम है," उसने कहा ।

"मालूम है ? तुम···तुम थे वहां ।"

"नहीं !"

"फिर···तुमसे कहा था कुछ उसने ?"

"हां ।"

"कब ?"

"कल रात···सड़क पर हवाख़ोरी करते मिले थे दोनों ।"

"तुम्हें मिले थे ? कैसा लड़का है कैलाश ?"

"लड़का ? आदमी है ।"

"उम्र ज़्यादा है ?"

"नहीं, उम्र तो कम है ।"

"तुम उन्हें साथ लेकर घर क्यों नहीं आ गए ?" अविजित ने कुछ नाराज़गी के साथ कहा ।

"वे मेरे साथ नहीं थे ।"

"उन्होंने तुम्हें बतलाया, कहां जा रहे हैं ?"

"नहीं।"

"तुमने पूछा ही नहीं होगा।

"जी,"

"अजीब आदमी हो।"

"जी।"

"अच्छा छोड़ो, मैं सोचता हूं महाराजा छतरपुर से मिल आऊं।"

"क्यों ?"

"प्रभा ने लिखा है वे कैलाश के मामा हैं।"

"तो ?"

"उन्हें शायद मालूम हो वे दोनों कहां हैं ?"

"मालूम करके आप क्या कीजिएगा ?"

"क्या मतलब, मेरी लड़की कहां है, जानने की कोशिश भी न करूं ?"

"आपकी लड़की जहां भी है अपनी मर्ज़ी से गई है, मर्ज़ी के खिलाफ़ नहीं।"

"ठीक है पर मैं उसे बतलाना चाहता हूं कि मैं···कि हम ··अनित्य, तुम समझते क्यों नहीं, हमें प्रभा की शादी की ख़ुशी है, दुख नहीं।"

"समझता हूं, भाई साहब, और इसीलिए कहता हूं, ज्यादा जानने की कोशिश मत कीजिए। जितनी देर हो सके खुश रहिए क्योंकि···"

पास रखे फ़ोन की घण्टी ज़ोर से घनघना उठी।

अविजित उसकी तरफ़ लपका।

"अनित्य !" श्यामा के कमरे से आवाज़ आई।

अनित्य उधर चल दिया।

"हलो," अविजित ने फ़ोन पर कहा।

"अविजित !" दूसरी तरफ़ से आवाज़ आई।

अविजित ? यह कौन है जो उसे सिर्फ़ अविजित कह कर पुकार रही है।

काजल ? पर वह तो दिल्ली से चली गई।

रंजना ? काश, रंजना···पर रंजना ने तो आज तक कभी उसे फ़ोन नहीं किया। न अविजित कह कर पुकारा···नहीं, यह रंजना नहीं है।

"अविजित !" आवाज़ फिर गूंजी।

दहशत पैदा करने वाली खूबसूरत आवाज़ है। सिर्फ़ एक आवाज़ है जिसका सोज़ खौफ़नाक से खौफ़नाक मौक़े पर भी बरक़रार रहता है···एक आवाज़ जिसकी लय खुद खौफ़ पैदा करती है।

पर उसने तो कभी उसे सिर्फ़ अविजित कहकर नहीं पुकारा···

"हां, अविजित बंसल बोल रहा हूं," उसने कहा।

"पहचाना नहीं, अविजित ?"

"कौन···कौन है ?"

"पहचानने से डर रहे हो ?"

"संगीता !" अविजित का स्वर वाकई थर्रा गया।

"हां, संगीता !"

यह कैसी आवाज़ है। जैसे बम फटा हो। आश्चर्य कि फ़ोन के टुकड़े-टुकड़े नहीं हो गए।

"कैसी हो ?" अविजित के मुंह से निकला और खुद उसके कानों में खटक गया।

"अविजित," संगीता ने कहा, "मैंने अपने पति का खून कर दिया।"

"क्या ? क्या !"

"हां, अविजित। मैंने सुरेश को गोली मार दी।"

"संगीता ! होश में तो हो ?"

"बिल्कुल होश में हूं।"

"मुझसे क्या चाहती हो ?" अविजित के मुह से निकला।

संगीता अट्टहास कर उठी।

अविजित को लगा, बदन के कपड़े ही नहीं, खाल तक नुचकर अलग हो गई है। नंगा कंकाल फ़ोन पकड़े खड़ा है।

"क्यों," संगीता ने कहा, "पुलिस को नहीं बुलाओगे ?"

"मैं···मैं क्यों···?"

"घबराओ मत। पुलिस को मैंने खुद इत्तिला कर दी है। उनके आने से पहले तुमसे मिलना चाहती हूं।"

"मुझसे ? क्यों ?"

"क्यों ?" संगीता फिर हंस पड़ी, "तुम वकील हो, मेरा केस नहीं लड़ोगे ?"

"मैं···वकालत नहीं करता," अविजित कैसे बच्चों जैसे जवाब देता चला जा रहा है।

"डिग्री तो है। कर लो न एक बार मेरी खातिर। कितना दिलचस्प केस है। मैं कहूंगी मैंने सुरेश मन्डालिया को मारा है। तुम कहोगे, नहीं, इसने नहीं मारा। देखें कौन जीतता है।"

"यह क्या भद्दा मज़ाक है। सच-सच कहो, हुआ क्या है ?"

"वही जो मैंने कहा। पुलिस के आने से पहले तुम यहां आ जाओ। मैं तुम्हें अपना वकील चुन लूंगी। वे लोग सिर्फ किसी वकील को ही मुझसे मिलने की इजाजत देंगे। इस तरह मैं आखिरी दिनों तक तुमसे मिल सकूंगी।"

कंकाल की हड्डियां चटख गईं। अविजित को फ़ांसी के फन्दे पर झूलती अपनी देह नज़र आने लगी।

"यह सब क्या है ? साफ़-साफ़ बतलाओ···"

"आना तो तुम्हें पड़ेगा, अविजित !" कह कर संगीता ने फ़ोन काट दिया।

अविजित पसीना-पसीना हो गया। क्या वाक़ई संगीता ने उस आदमी का खून कर दिया? कर दिया होगा। संगीता जैसी लड़की कुछ भी कर सकती है। पर··· मुझे किस लिए बुला रही है? कहीं खून मेरे सिर···हो सकती है, यह मुझे फंसाने की साजिश हो सकती है।

अविजित ने देखा···

अदालत के कटघरे में खड़ी संगीता कह रही है—अविजित बंसल से मेरे अवैध सम्बन्ध थे। उस रात अविजित मेरे कमरे में था। सुरेश अचानक घर लौट आया। सामना होने पर अविजित ने उसका खून कर दिया···

"अनित्य!" वह पुकार उठा।

"भाभी, मुबारक हो," श्यामा के कमरे में पहुँच कर अनित्य ने कहा।

"क्या?" श्यामा ने अचरज से पूछा।

"प्रभा की शादी हो गई।"

"क्या! क्या कह रहे हो?"

"हां। नाम है कैलाश राव! बढ़िया आदमी है।"

"प्रभा ने शादी कर ली! हमें बिना बतलाये! तुम्हारे भाई साहब कहां हैं? मेरा दिल···"

"तुम्हारा दिल दुरुस्त है भाभी। भाई साहब को बुलाने का फ़ायदा नहीं है। वे इसमें कुछ नहीं कर सकते। जरूरत भी नहीं है। लड़की बालिग है। अपनी खुशी से शादी की है। खुशी की बात है। खुशी मनाओ। जहाँ तक तुम्हारे दिल का सवाल है, इससे कहीं बड़ा सदमा···"

अनित्य की बात पूरी नहीं हुई।

पागलों की तरह अविजित कमरे में घुस आया और चीख पड़ा, "अनित्य! संगीता ने अपने पति का खून कर दिया।"

"क्या!" श्यामा कूद कर बिस्तर से उठ खड़ी हुई, "पागल तो नहीं हो गए," उसने कहा।

"उसने खुद मुझसे कहा है, अभी···फ़ोन पर।"

"नामुमकिन!"

"उसने खुद कहा है।"

"संगीता ऐसा नहीं कर सकती।"

"संगीता कुछ भी कर सकती है।"

"हां। पर सुरेश को नहीं मार सकती। जो आदमी···" उसने दहशत के साथ अविजित को देखा, "जो इंसान तुमसे इतना प्यार करता हो···नहीं हो सकता।" श्यामा रो दी।

"उसने मुझे बुलाया है। तुम मेरे साथ चलो।"

"मैं...?"

"शायद तुम सच का पता लगा सको।"

"सच क्या है, मैं जानती हूं—संगीता ने उन्हें नहीं मारा।"

"और वह कहती है..."

"वह कहती है तो सच करके दिखलाएगी।"

अविजित का शरीर सुन्न पड़ गया।

"हर आदमी अपने तरीके से खुदकुशी करता है, भाई साहब," अनित्य ने कहा, "आइए, चलें।"

"नहीं।"

"नहीं?"

"मुझे डर है कहीं इस सब में वह मुझे न लपेट ले," अविजित ने कहा।

"आप जाएंगे नहीं?" अनित्य ने कोमल स्वर में पूछा।

"मेरा इस सबसे क्या ताल्लुक़ है। मैं वहां क्यों जाऊं?" अविजित ने कहा।

क्षण-भर अनित्य चुप रहा, फिर धीमे से बोला," आपका अपना तरीक़ा कम कारगर तो नहीं।"

वह अकेला घर से निकल गया।

श्यामा अविजित के पास आकर उससे सट कर खड़ी हो गई।

मुश्किल से वह उसके कन्धों तक पहुंचती है पर आज उसे लग रहा है, अविजित क़द में उसके बराबर है।

"हो आते तो अच्छा था," उसने फुसफुसाकर कहा।

"तुम वाक़ई यह सोचती हो?" अविजित ने भी फुसफुसा कर पूछा।

"एक बार मिल, लो तो शायद वह तुम्हारा नाम कीचड़ में न घसीटे।"

"तो...हो आऊं?"

"हां।"

"अच्छा...तुम नहीं चलोगी?"

"एक बार तुम अकेले मिल लो, फिर मैं चलूंगी...बाद में...।"

श्यामा को डर है कि एक बार वह संगीता से मिल ली तो कहीं अविजित का क़द इतना छोटा न हो जाए कि उसके बराबर खड़े होने में संकोच होने लगे...

"तो...मैं चलूं..." अविजित फुसफुसाया।

"भाई साहब!" तभी शुक्ल जी ने दरवाज़े से पुकारा।

चौंक कर अविजित और श्यामा अलग हो गए।

आज अपने ही घर में वे लोग फुसफुसा रहे हैं, कल क्या पता इस लायक़ भी न रहें।

"क्या है?" अविजित ने घबराहट से सने स्वर में पूछा।

"कलकत्ते से सिंघानिया जी का फ़ोन है।"

अविजित ने दयनीय नजर से श्यामा की तरफ़ देखा।

"आपने उनसे कह दिया क्या कि ये घर पर हैं ?" श्यामा ने शुक्ल जी से पूछा।

"जी हां। ग़लती हो गई क्या ?"

"नहीं-नहीं, ठीक है," श्यामा ने कहा।

"बात कर लूं···" अविजित बोला।

"आ रहे हैं," श्यामा ने शुक्ल जी से कह दिया।

शुक्ल जी लौट गए।

"या पहले वहां जाऊं···" अविजित की आवाज़ फिर फुसफुसाहट में बदल गई।

"सिंघानिया जी फ़ोन पर हैं," श्यामा ने याद दिलाया।

"हां···बात कर लूं···करनी ही पड़ेगी···फिर जाऊंगा···"

अविजित फ़ोन पर चला गया।

सड़क के मुहाने पर पहुंच कर अनित्य ने स्कूटर छोड़ दिया। रात ठीक इसी जगह से उस ने प्रभा और कैलाश को सामने से आते देखा था···उन्होंने उसे बाद में देखा···एक बार अन्धेरी सड़कों की आदत पड़ जाए तो नज़र बिल्ली की तरह तेज़ हो जाती है।

उसने देखा सतर्क धीमी चाल से चला आ रहा जोड़ा उसे देख कर और धीमा पड़ गया है। मर्द ने औरत के कन्धों को बांह से घेर लिया है। औरत ने उसके कन्धे पर सिर रख दिया है। सुस्त रोमानी अदा से वे लोग आगे बढ़ रहे हैं और उसे देखने का नाटक करते हुए चौंक उठे हैं।

"चाचाजी," प्रभा ने कहा है, "आप हैं!"

"हां।"

"मैंने कैलाश से शादी कर ली। ये कैलाश हैं," प्रभा ने कहा है।

"मैं अनित्य हूं।"

"मैं पिताजी के नाम ख़त छोड़ आई हूं," प्रभा ने रुक कर कहा है।

"अच्छा···"

तो हम चलें···" प्रभा ने कहा और तभी पास कहीं ज़ोरदार धमाका हुआ।

अनित्य को लगा गोली चली है।

कैलाश और प्रभा चौंके नहीं, वरन सावधान हो गए। कैलाश का हाथ पैन्ट की जेब पर चला गया।

"लगता है किसी मोटर गाड़ी का एन्जन बैकफ़ायर कर रहा है," उसने कहा।

उसकी आवाज़ एकदम लापरवाह थी—जैसी होनी चाहिए थी, ठीक वैसी।

सड़क पर कुछ दूर अनित्य को एक जीप नज़र आई। हां, धमाका उसी के पास हुआ था। फिर भी···

धमाके की गूंज ख़त्म हुई ही थी कि सुनसान रात को चीरती हुई एक थर्राती

चीख उभरी और उनके सिरों पर से गुज़र गई। अनित्य को फुरफुरी आ गई।

एक औरत की चीख!

प्रभा ज़ोर से चीख उठी!

क्षण-भर को कैलाश चौंक उठा।

"क्या है?" उसने कहा।

"बिच्छू!" प्रभा फिर चीखी और पागलों की तरह अपने कपड़े झाड़ने लगी।

कैलाश सम्भल गया।

"नानसेन्स!" उसने प्यार से लताड़ा और वह भी उसके कपड़े झाड़ने लगा।

"सॉरी," प्रभा हंस दी, "बिच्छू नहीं, झींगुर था।"

"पगली," लाड से कैलाश ने कहा।

पर आंखें उसकी सतर्क रहीं। एक हाथ जेब पर बना रहा।

रात के अन्धेरे में डूबी स्याह सड़क पर सन्नाटा छा गया।

कौन चीखा था? प्रभा चीख़ से चीख़ मिलाकर चीखी थी। पहले कौन चीखा था? कोई औरत। कौन?

सन्नाटे को झिंझोड़ती हुई एक जीप फर्राटे से पास से निकल गई।

अनित्य को लगा उनके पास आने पर, उसकी बत्ती एक बार बुझ कर फिर जल उठी है।

कैलाश और प्रभा में बारीक पर गहरा फर्क महसूस हुआ। किसी घने टेंशन से राहत पाकर दोनों के बदन जैसे एक तरफ को ढुलक आए। वे एक-दूसरे से अलग, अकेले, आराम से खड़े थे। ढीले, पर लापरवाह नहीं।

"तो हम चलें···" प्रभा ने फिर कहा और दोनों मुहाने से परे संकरी गली में घुस गए जिधर से जीप न आई थी, न गई थी।

अनित्य ने देखा, उनकी चाल अब भी धीमी और लापरवाह है जैसी हवाखोरी पर निकले प्रेमियों की होनी चाहिए।

पर यह ओढ़ी हुई सुस्ती···सब कुछ वैसा ही था जैसा होना चाहिए···वही शायद खटक रहा था···सब के साथ कुछ अलग···प्रेमियों की नज़रें इतनी सतर्क तो नहीं होतीं!

अन्धेरे में देखने की आदत बिल्लियों और आवारा घुमक्कड़ों की बात और है। पर प्रेमी? जिन्हें रोशनी में दुनिया नहीं दीखती, वे भला अन्धेरे में···

बिल्लियों की तरह देखने की सिफ़त सिर्फ़ खानाबदोशों में नहीं होती, चोर और क्रान्तिकारी भी···

क्रान्तिकारी उन्नीस सौ बियालीस में काफी देखे थे और चोरों से ता खैर उसका साबक़ा पड़ता ही रहा है···अन्धेरी सड़कों की तरह।

अनित्य चुपचाप उधर बढ़ गया था जिधर से पहले धमाका और फिर चीख गूंजी थी।

एक कोठी छोड़ कर दूसरी कोठी के दरवाजे पर आते ही उसने घर पहचान लिया था। संगीता की शादी अपने नहीं, पति के घर से हुई थी। अपना घर तो उसका कोई था नहीं···

यह दिल्ली के मशहूर रईस सुरेश मन्डालिया की कोठी है।

अन्दर-वाहर मौत का-सा सन्नाटा था। लोहे के उंचे फाटक के वाहर वैठा चौकीदार अपने खोल की दीवार का सहारा लिये ऊंघ रहा था।

कुछ देर अनित्य चुपचाप खड़ा रहा था। रात के श्मशानी सुकूत को तोड़ने में झिझक महसूस हो रही थी। पर पांच मिनट पहले के शोर-शरावे को याद करके उसने सोये चौकीदार को कन्धे से पकड़ कर हिला ही दिया।

आंखें खोल कर उसने अनित्य को देखा और झपट कर कहा, "कौन हो तुम !"

"अभी यहां कोई चीखा था।"

"यहां कौन चीखेगा—हमारे रहते।"

"कोठी के भीतर कोई चीखा था।"

"कौन ?"

"कोई औरत।"

"कोठी के भीतर की चीखों से हमारा सरोकार नहीं है, समझे ! और जहां तक औरतों का सवाल है···" चौकीदार खी-खी कर हंस दिया, "चलो, आगे वढ़ो," उसने कहा।

अनित्य आगे वढ़ गया था।

अव सुवह के वक़्त सुरेश मन्डालिया की कोठी रात के मुक़ावले छोटी लग रही है। अन्दर-वाहर तेरहवीं की-सी चहल-पहल है। वन्द फाटक पर वही रात वाला चौकीदार खड़ा है—मुस्तैद और चौकस। साथ में दो पुलिस के सिपाही हैं।

"कौन हो तुम ? अन्दर जाना माना है," उसे देखते ही तीनों एक साथ गरजे।

"मैं डाक्टर संगीता का वकील हूं," अनित्य ने कहा।

"वकील हो तो अदालत में जाओ," एक सिपाही ने कहा।

"यहां किसी को अन्दर जाने की इजाज़त नहीं है," दूसरे ने कहा।

तीनों वन्द फाटक की दूसरी तरफ़ लोहे की नुकीली वाड़ की तरह पंक्तिवार खड़े हो गए।

अनित्य वाहर रह गया।

तभी एक पुलिस महिला और ए. एस. पी. के वीच संगीता वाहर निकली। फाटक खोला जाने लगा। व्लाक मारिया ठीक फाटक पर आ लगी।

"संगीता !" अनित्य ने आवाज़ लगाई।

"अविजित नहीं आए !" संगीता ने चिल्ला कर कहा।

फाटक पर खड़े सिपाहियों ने अनित्य को बाहर खदेड़ना शुरू कर दिया और फाटक के भीतर के पुलिस वाले संगीता को ब्लाक मारिया की तरफ़ धकियाने लगे।

"चुप ! चुप !" सब एक साथ चीख रहे थे।

"मैं तुम्हारा वकील हूं, संगीता," शोर के ऊपर चीख कर अनित्य ने कहा।

जवाब में धूल उड़ाती ब्लाक मारिया के भीतर से गूंजता संगीता का अट्टहास सुनाई दिया जो धूल के बैठ जाने पर भी देर तक हवा में मंडराता रहा।

अविजित संगीता के घर पहुंचा तो देखा फाटक पर मोटा ताला लटक रहा है। अन्दर-बाहर पुलिस के सिपाही तैनात हैं···यानी लाश अब पुलिस के कब्ज़े में है···और दूर सड़क के मुहाने के नाले पर बनी पुलिया पर अनित्य बैठा है।

"तुम यहां क्या कर रहे हो ?" उसने पूछा।

"आपका इन्तज़ार।"

"कब पहुंचे ?"

"जब वे लोग संगीता को गिरफ़्तार करके ले जा रहे थे।"

"उसने मेरे बारे में तो कुछ नहीं कहा।"

"जब मैं पहुंचा वे उसे ले जा रहे थे। उनसे उसने क्या कहा, मैं नहीं जानता।"

"तो···जो उसने कहा था···सच है ?"

अनित्य ने उसका जवाब नहीं दिया, अपनी बात कही।

"कल रात मैं यहां से गुज़रा था।"

"उफ़ भगवान, अब क्या होगा," अविजित बडबड़ा रहा था।

"रात मैंने संगीता को चीखते सुना था, भाई साहब," अनित्य ने कहा।

अपने में गर्क अविजित तक सिर्फ़ शब्द पहुंचे, उनका मतलब नहीं।

"पहले मैंने गोली का धमाका सुना, फिर चीख," अनित्य ने आगे कहा।

"ओह," अविजित बस इतना ही समझा, "तो रात ही मार डाला था।"

"भाई साहब, ज़रा समझने की कोशिश कीजिए। आप लॉ पढ़े हुए हैं। मैंने संगीता को चीखते सुना था, सुरेश को नहीं।"

"तो ? तुम कहना क्या चाहते हो ?"

"औरत कब चीखेगी ! पति का खून करने से पहले या बाद में ?"

"दोनों हालात में चीख सकती है।"

"पहले चीखी होती तो खुद को बचाने के लिए खून कर सकती थी पर संगीता बाद में चीखी थी—लाश को गिरता देख कर। खून किसी और ने किया होगा।"

"क्यों ? कैसे ?"

"आपने सुना नहीं, मैंने कहा, गोली के धमाके के बाद मैंने चीख संगीता की सुनी थी, सुरेश की नहीं।"

"मरा तो सुरेश है।"

"वही तो। मरा सुरेश है पर चीखी संगीता थी। गोली चलने पर शॉक सुरेश को नहीं, संगीता को लगा। सुरेश जानता था गोली चलने वाली है, जानता था गोली चल चुकी, जानता था गोली को चलना चाहिए। जरूर सुरेश ने खुद अपने हाथ से गोली मारी है। खुदकुशी करते हुए आदमी चीखता नहीं," अनित्य ने कहा।

फिर कुछ ठहर कर बोला, "संगीता भी तो पुलिस की गाड़ी में सवार होते हुए चीखी नहीं, हंसी थी।"

"तुम्हारे कहने से क्या होता है?" अविजित ने कहा, "संगीता खुद अपने जुर्म का इक़बाल कर रही है।"

"सिर्फ़ मैंने नहीं, यह चीख पड़ोसियों ने भी सुनी होगी। वे लोग मेरी बात का···" कहते-कहते अनित्य रुक गया।

उसे रात फाटक पर ऊंघता चौकीदार याद आ गया। चीख उसने नहीं सुनी तो···

प्रभा का चीख से चीख मिला कर चीखना याद आ गया। उसने जानबूझकर नहीं सुनी···क्यों···

सड़क के नुक्कड़ पर जहां अनित्य बैठा है वहां तक सुरेश मन्डालिया की कोठी के कम्पाउंड की पहुंच है। दूसरी कोठी इस आलीशान बंगले से इतनी दूरी पर है कि बन्द खिड़की-दरवाज़ों के भीतर एयरकन्डीशनर चला कर सोने वाले लोगों का कुछ भी सुन पाना···

वह चुप हो गया।

"चलो, यहां से चलें," अविजित ने कहा," कोई देखेगा तो···"

"भाई साहब, आप संगीता से मिलेंगे नहीं?" अनित्य ने ठण्डे स्वर में पूछा।

"वह है नहीं तो कैसे मिलूं?"

"जेल में। अर्जी दे देते हैं, जेल में मिलने की इजाज़त मिल जाएगी।"

"पता नहीं कितने दिन लगेंगे।"

"कोई बात नहीं।"

"मुझे बरनी जाना है," अविजित ज़ोर दे कर कह उठा।

"बरनी?"

"हां, ज़रूरी काम है। सिंघानिया जी का वहां एक फ़ार्म है। वे चाहते हैं मैं फ़ौरन, कल ही, चला जाऊं। अभी कलकत्ते से उनका ट्रंक-कॉल आया था। बहुत गड़बड़ है वहां। उनका···"

'भाई साहब," अनित्य ने बात काट कर कहा, "आप जानते हैं न, अगर एक बार संगीता ने जुर्म का इक़बाल कर लिया तो पुलिस आगे तहक़ीक़ात करने की ज़हमत ही नहीं उठाएगी। केस उस पर एकदम फ़िट बैठता है। आप एक बार उससे मिल लें तो हो सकता है···"

"नहीं-नहीं, मुझे कल ही बरनी जाना है," प्रविजित सुनना नहीं चाहता।

"संगीता पूछ रही थी, प्रविजित नही प्राए ?"

"क्या ! पूछ रही थी ? किससे ? तुमसे ?"

"हां।"

"फिर···तुमने क्या कहा ?"

"मैं कुछ कहता इससे पहले ही वे लोग उसे ले गए।"

"प्रनित्य!" सहसा प्रविजित ने उसका हाथ पकड़ लिया और याचना करत हुआ कह उठा, "मुझसे कहीं प्रच्छी तरह तुम संगीता को समझा सकते हो। तुम्हारी वह इज्जत करती है। तुम···उससे कहो, इस सब मे मुझे न घसीटे···"

"भाई साहब," प्रनित्य ने बेहद कोमल स्वर में कहा, "सवाल प्रापका नहीं, संगीता का है। बिना खून किये वह खून की सजा क्यों पाए···"

प्रविजित ने ग़ौर से प्रनित्य को देखा। उसका चेहरा बदल गया। प्रांखों में खुदगर्ज चालाकी उभर प्राई।

"हर प्रादमी प्रपने तरीक़े से खुदकुशी करता है," उसने कहा, "प्रगर वह जीना ही नहीं चाहती···"

प्रविजित की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि प्रनित्य उठा और उसे प्रकेला छोड़ कर तेज़ी से सड़क पार कर गया।

प्रविजित को सम्भलने में वक़्त लगा। उसने अनित्य का पीछा किया ज़रूर पर उसकी रफ़्तार का मुकाबला न कर सका। वह बराबर पीछे छूटता चला गया और प्राखिर कोठियों के पिछवाडे एक संकरी गली में घुसने पर उसने पाया कि वह उसे खो चुका है।

८

"गोली प्रनिल ने नही मारी तो किसने मारी ?" प्रभा कैलाश से सवाल कर रही है।

दैनिक अखबारों का ढेर सामने पड़ा है।

"प्रनिल ने नही मारी," कैलाश पहले ही कह चुका है, "वह बराबर जीप में था। गनपत ने बैग उसे पकडाया और वह जीप स्टार्ट करके फ़ौरन चला प्राया। भीतर गया ही नहीं।"

"तो फिर गनपत या बलराज"

"नहीं उन्होंने भी नहीं मारी।"

हां, बलराज बाहर मेन गेट पर कोठी में घुसने वालों की हिफ़ाज़त कर रहा था और गनपत उनके हाथ से बैग ले कर पिछवाड़े जीप में बैठे अनिल के पास चला गया था।

रुपयों से भरा बैग ले कर जब प्रभा और कैलाश कमरे से बाहर निकले तो सुरेश मन्डालिया ज़िन्दा था। कमरे में उसके और डाक्टर संगीता के सिवाय तीसरा आदमी नहीं था।

फिर···

गोली का धमाका, जीप की घड़घड़ाहट और एक चीख़ !

उस चीख़ में भी सोज़ था !

एक ज़माना था जब डाक्टर संगीता से बेहद रश्क होता था···वाक़ई···जिस औरत की चीख़ तक इतनी सुरीली हो !

नहीं-नहीं, अब कहां ?

रात उस कोठी के अन्दर प्रभा अच्छी तरह पहचान गई थी कि वह बहुत दिनों से जानती रही है कि डाक्टर संगीता से किसी हालत में भी रश्क नहीं किया जा सकता।

रात उस कोठी के अन्दर डाक्टर संगीता को देख कर क्षण-भर को प्रभा की सारी दिलेरी हवा हो गई थी···

उसे सिर्फ़ इतना बतलाया गया था कि कैलाश के साथ एक बड़े रईस के घर छापा मारना है और कुछ नहीं। रईस का नाम-पता कुछ नहीं वरना शायद उसे याद आ जाता कि सुरेश मन्डालिया की बीवी वही डाक्टर संगीता है जो···

याद आ भी जाता तो क्या होता? बस इतना कि टार्च की रोशनी में डाक्टर संगीता को देख कर वह इस क़दर चौंक न उठती।

"हैंड्स-अप !" चादर में लिपटी, बिस्तर पर सोई पड़ी काया की छाती पर पिस्तौल तान कर प्रभा ने कहा था और भौंचक देखा था कि चादर फेंक कर जब वह उठ कर बैठी है तो पुरुष नहीं, स्त्री है।

फिर भी···"सेफ़ की चाभी !" उसने ललकार कर कहा था और पिस्तौल ताने रही थी।

"चाभी मेरे नहीं, मालिक के पास है," एक बेहद सुरीली आवाज़ ने कहा था और···यह कैसे हो सकता है, तब भी प्रभा ने चकित भाव से सोचा था···आवाज़ में भय की नहीं हंसी की खनक है। ऐसी खनक तो सिर्फ़ विद्रोहियों के स्वर में हुआ करती

है, उसने सोचा था और टार्च की रोशनी के घेरे में देखा था…इतनी सुरीली आवाज़ सिर्फ़ इसी औरत की हो सकती थी जो उसके सामने बैठी है…

"डाक्टर संगीता !" फुसफुसाहट ओठों से निकल ही गई थी।

कैलाश के हाथ का दबाव उसके कन्धे पर पड़ा था और उसने सम्भल कर कहा था, "तो चलिए मालिक के पास।"

सहसा वह औरत खिलखिला कर हंस पड़ी थी।

प्रभा के बदन के रोंगटे खड़े हो गए थे।

"पर क्यों प्रभा ? तुम्हें पैसे की कमी कैसे हो गई ?" उसने कहा था।

प्रभा !

खट से प्रभा ने टार्च बुझा दी। यह औरत…डाक्टर संगीता उसे पहचान कैसे गई ? उसका चेहरा तो पूरी तरह कपड़े से ढका हुआ है और अन्धेरे में है।

वह भूल कैसे गई थी; आवाज़ पर संगीता का अधिकार…आवाज़ से उसका मोह…आवाज़ की उसकी गहरी पहचान !

एक दिन श्यामा कह उठी थी…

"आह, कितना पुरसोज़ गाती है संगीता। प्रभा तुम इनसे गाना क्यों नहीं सीख लेतीं ?"

"गाने-वाने में मुझे दिलचस्पी नहीं है," प्रभा ने रुखाई से जवाब दिया था।"

"दिलचस्पी होने से ही गाना आ तो नहीं जाता," संगीता ने मीठी आवाज़ में कहा था।

"आपका क्या ख़याल है, चाहूं तो सीख नहीं सकती," प्रभा ने तड़पकर कहा था।

"नहीं," संगीता ने कहा था, "फिर भी चाहो तो कोशिश करके देख लो।"

"यह फ़िज़ूल के काम आप ही को मुबारक हैं।"

"प्रभा ! तमीज़ से बात करो," श्यामा ने नाराज़ हो कर कहा था पर संगीता हंस पड़ी थी, इतनी लतीफ़ हंसी कि प्रभा जल कर राख हो गई थी। इस हिसाब से तो हंसना भी इन्हीं से सीखना पड़ेगा !

"इतना फ़िज़ूल का काम भी नहीं है, प्रभा," ठुमरी के अन्दाज़ में संगीता ने कहा था, "बहुतों की रोज़ी-रोटी इसी के सहारे चलती है।"

कह कर सहसा उसका चेहरा जले फफोले की तरह काला पड़ गया था।

कमरे में सहमी-सी चुप्पी छा गई थी। प्रभा कुछ समझ नहीं पाई थी पर आगे मुंहतोड़ जवाब देने की इच्छा मर गई थी।

बाद में…अब याद करके प्रभा शर्म से सिकुड़ उठी है। उन दिनों तो बस अकेले कमरे में बन्द होकर काफ़ी अरसे तक खुद को गाना सिखलाने की कोशिश करती रही थी और संगीता से ईर्ष्या कर-कर के अपने को जलाती रही थी…

बहुत धीमे से कैलाश हंस दिया था।

प्रभा एकदम चौकन्नी हो गई थी।

कैलाश ने सब कुछ सुना होगा। उसका नाम—प्रभा। हंसी की खिलखिलाहट। व्यंग्य से सना सवाल।

"चाभी दिलवाइए!" सम्भल कर प्रभा ने कहा था।

पैसा अपने लिए नहीं, मुझे देश के लिए चाहिए, दर्प के साथ उसने जोड़ना चाहा पर शब्द जबान से नहीं निकले।

आज संगीता दे रही है और अविजित की बेटी लेने आई है।

अच्छी लग रही है न संगीता, यह नई भूमिका?

पर कैसी विडम्बना है। मैं पैसा मांग रही हूं फिर भी मुझे लज्जा नहीं, गर्व है; तुम दे रही हो, देना ही पड़ेगा और लज्जित भी तुम्हीं को होना है। मैं मांग नहीं रही, संगीता छीन कर ले रही हूं। अपने लिए नहीं, तुम्हीं लोगों के लिए। तुम्हीं लोगों का प्राप्य तुम से ले रही हूं।

पर नहीं, संगीता, तुम से यह सब नहीं कहूंगी।

मुझे माफ़ करना, संगीता। जरूरत के दबाव में पैसे के लिए सिर झुकाने में कैसा महसूस होता है मैं नहीं जानती, जानने की ज़रूरत नहीं पड़ी। जानने की कोशिश नहीं की कभी, उसके लिए मुझे माफ़ करना। आज तुम दे सकती हो न, लो, मैं हाथ फैलाकर मांगती हूं। तुम्हारा आहत अभिमान मेरा हो गया। तुम्हारी लज्जा मेरी है।

कभी तुमसे रश्क किया था। उम्र की एक देहरी पर आकर नफ़रत की थी। अपने चारों तरफ़ खिची ऊंची चारदीवारी के हर बुर्ज पर स्थापित अपने पिता की कद्दावर मूर्ति को खंडित होते देखा था और तुम्हारे प्रति जुगुप्सा से भर उठी थी। पर नहीं, संगीता, वह जुगुप्सा नहीं, लज्जा थी। देखो तो, संगीता, मैं अपने वर्ग-अपराध का प्रायश्चित्त कर रही हूं।

हंसना चाहो तो हंसो। इतने से भला क्या होगा। फिर भी···

तुमसे कह कुछ नहीं सकती, संगीता, कैलाश सुनेगा तो···

पर तुम दो, पैसा मुझे दान दो। मैं सिर नीचा किये लेती हूं, हाथ फैला देती हूं···एक वक़्त आएगा, ज़रूर आएगा जब किसी को किसी के आगे अपनी आवाज़ का सोज़ बेचना नहीं पड़ेगा···

हाथ बढ़ाकर कैलाश ने प्रभा के हाथ से टार्च ले ली। जलाकर संगीता के हाथ में पकड़ा दी।

"रास्ता आप दिखलाएं, चाभी हम मांग लेंगे," उसने ऐसे कहा जैसे किसी दावत में चलने का निमन्त्रण दे रहा हो पर पिस्तौल पूरी तैयारी के साथ संगीता की छाती पर तनी रही।

डाक्टर संगीता का चेहरा गम्भीर हो गया। फिर धीरे-धीरे कठोर पड़ गया। पर उसके बावजूद विद्रूप की छाप हट जाने से एक फक्कड़ भोलापन वहां उभर आया।

"ग्रोह, संगीता, संगीता, संगीता !" मोहित प्रभा ने सोचा, तुम तो उस वक़्त सिर्फ़ सोलह बरस की थी। तुम्हारे चेहरे पर सब कुछ था—शोखी···नज़ाकत···नज़ाकत··· पिताजी की ज़बान से ये अल्फ़ाज़ इत्र की तरह फिसला करते थे···सबकुछ था, बस··· मासूमियत नहीं थी···ग्रोह संगीता !

क़रीब-क़रीब कैलाश ही की तरह धीमे से संगीता हंस दी थी ग्रौर एक विक्षिप्त-सी मस्ती उस पर छा गई थी।

"ग्राग्रो न, प्रभा," घुंघरुओं की झंकार से अल्फ़ाज़ बजे। नर्तकी की तरह झूम कर वह बिस्तर पर से उठी ग्रौर थिरकती हुई ग्रागे बढ़ गई।

प्रभा ग्रौर कैलाश के पिस्तौल उस पर निशाना साधे पीछे हो लिये।

सुरेश के कमरे के दरवाज़े पर ग्राकर वह ठिठक गई। फिर···बदन को तीर कमान की तरह तान कर दरवाज़े को ऐसे धक्का दिया जैसे किसी नुमाइश का उद्घाटन कर रही हो।

कैलाश ने ग्रपनी पिस्तौल सुरेश की तरफ़ घुमा ली···प्रभा संगीता को निशाना बनाए रही।

पर···शायद दरवाज़े की भड़भड़ाहट से पहले ही सुरेश जग चुका था।

बिजली की तेज़ी से पासा पलट गया था।

प्रभा ने देखा था—कैलाश का पिस्तौल हाथ से छूट कर ज़मीन पर पड़ा है··· सुरेश मन्डालिया चौकस-चौकन्ने गुरिल्ला की तरह उसके सिर पर खड़ा है ग्रौर उसके हाथ की पिस्तौल कैलाश की कनपटी से सिर्फ़ चार इंच दूर है···

एक क्षण को दृश्य जड़ रहा। दम साधे सब ग्रपनी-ग्रपनी जगह स्थिर थे कि संगीता की बेरहम बौराई हंसी ने सब को चौंका दिया।

टार्च वाला हाथ बढ़ाकर उसने कमरे की बत्ती जलाई, ज़मीन पर पड़ा कैलाश का पिस्तौल उठाया ग्रौर मधुर-मस्त ग्रावाज़ में कह उठी, "सेफ़ की चाभी दे दो, सुरेश।"

सुरेश मंडालिया एकटक संगीता को देखता रह गया था···

कमरे में मुर्दनी छा गई थी। बस संगीता पिस्तौल की गुड़िया की तरह एक हाथ से दूसरे हाथ में उछाल कर, उससे खेलती रही थी···

प्रभा सुरेश को देख रही थी ग्रौर कैलाश प्रभा की पिस्तौल को, जो ग्रब संगीता से हट कर सुरेश की तरफ़ घूम गई थी।

प्रभा को लगा था, सब लोग ग्रपनी-ग्रपनी जगह फ़्रीज़ हो गए हैं।

किस ज्वालामुखी का लावा उन पर ग्रा गिरा कि वे जहां थे, बुत से जड़ [illegible] रह गए ? हज़ारों बरस बाद एक दिन यहां खुदाई होगी···इन्ही मुद्राग्रो में [illegible] गढ़ ये चार प्राणी मिलेंगे—कैलाश, प्रभा, संगीता ग्रौर सुरेश मन्डालिया। [illegible] क्या हुआ। देखते-देखते कितने बरस बीत गए ! उसकी ग्रांखो के सामने [illegible]

बूढ़ा—बेबस कैसे होता जा रहा है ? अभी-अभी तो गुरिल्ला जैसे उसके पुष्ट-गठीले जिस्म को देख कर प्रभा खौफ़ खाकर चुकी है !

वह जड़ खड़ा है।

उसकी आंखें एकटक संगीता को ताक रही हैं और···फ़ौलाद-सा सख्त उसका लम्बा-चौड़ा बदन धुले कपड़े की तरह निचुड़ कर सिकुड़ता चला जा रहा है। चेहरे की चिकनी-काली खाल धूल जमे थैलों की तरह जगह-जगह से नीचे लटकती आ रही है। उसकी आंखें···उफ़, उसकी आंखें !

बरसों तक सूखा पड़ने से खुश्क जमीन में दरारें आ जाएं तो बूंद-दो बूंद पानी का अस्तित्व क्या हो सकता है !

संगीता की आंखें बरबस सुरेश की तरफ़ खिंच गई थीं और वह उससे नजर मिलाने पर मजबूर हो गई थी।

आखिरी सांस की गिनती पूरी करके जिन्दा औरत जैसे मौत के हवाले हो गई। ऊपर उठा उसका हाथ सुन्न होकर नीचे लटक गया। दूसरे हाथ की मुट्ठी का पिस्तौल क्लोरोफार्म सूंघे मेंढक की तरह बेदम-लाचार पड़ रहा। प्रभा ने पिस्तौल उसकी तरफ घुमा लिया।

क्षण भर के लिए मोम-मढ़ी लाश-सी वह निस्पंद खड़ी रही फिर···

एक जलजला उसके बदन पर से होकर गुज़र गया। मिर्गी के दौरे की-सी तड़फ़ड़ाहट के साथ उसने कुछ कहना चाहा कि···

पिस्तौल नीची करके सुरेश धम से बिस्तर पर बैठ गया। तकिये के नीचे से चाभी निकाल कर उसने संगीता की तरफ़ फेंक दी।

उछल कर कैलाश ने बीच हवा से चाभी लपक ली।

एक बार फिर संगीता की देह ने घुमेर खाई और पिस्तौल उसके हाथ से फिसल गया। सतर्क कैलाश ने वह भी झपट लिया।

प्रभा अपना पिस्तौल संगीता के सिर पर ताने रही थी···कैलाश ने सेफ़ खाली कर लिया था···गनपत दरवाजे के बाहर मिल गया था···उनके हाथ से रुपयों से भरा बैग ले लिया था···नम्बर दो के रुपयों की चोरी पुलिस में दर्ज नहीं कराई जाती, गोकुल दा, गनपत ने कहा था, ले जाने वाला भले ही बतला दे, खोने वाला मुंह नहीं खोलता, है न···

प्रभा और कैलाश जब रुपयों का बैग लेकर कमरे से बाहर निकले तो बिस्तर पर स्तब्ध बैठे सुरेश के सामने संगीता जड़ खड़ी थी और कमरे में तीसरा व्यक्ति नहीं था। फिर···

अगले दिन का अखबार कैलाश ने प्रभा के सामने डाल दिया। कहा, "गोली मारना इस योजना में शामिल नहीं था।"

खबर छपी है कि दिल्ली के प्रसिद्ध उद्योगपति श्री सुरेश मनसुखानिया की पत्नी डॉक्टर संगीता ने स्वीकार कर लिया है कि अपने पति का खून पिस्तौल से गोली मार कर उसने किया है। घर का सब सामान सुरक्षित है और किसी बाहरी आदमी के घर में घुसने का कोई चिन्ह भी नहीं मिला है···

पर···

जब प्रभा और कैलाश संगीता और सुरेश को कमरे में छोड़कर बाहर निकले तो भरा हुआ पिस्तौल सुरेश के हाथ में था, संगीता के नहीं।

"यकीन नहीं होता कि गोली डॉक्टर संगीता ने मारी है," उसके मुंह से निकला।

"क्यों।" कैलाश के 'क्यों' में सवाल नहीं था।

···क्योंकि एक जलजला था जो बार-बार उनके बदन को झकझोड़ रहा था···उन जड़ खड़े क्षणों में वह बहुत हद तक संगीता को पीछे खदेड़ चुका था···प्रभा ठीक-ठीक समझ रही थी कि वह जुमला लेने से देने की मनःस्थिति में आ चुकी है··· तभी न प्रभा क्षण-भर को भी चूकी नहीं थी। पिस्तौल सीधा संगीता पर ताने रही थी —डर था कि कहीं आखिरी लम्हों में वह दुश्मन से न जा मिले। इसीलिए···

"बस···उन्होंने नहीं मारी," उसने कहा।

कैलाश ने आंखें खोल कर उसकी तरफ नहीं देखा। अंगड़ाई लेकर बदन तोड़ा और बोला, "शायद नहीं··· या शायद मारी हो···हो सकता है वह हममें से एक हो।"

"तब हमें उनकी मदद करनी चाहिए," प्रभा कह उठी।

"हमें आज ही दिल्ली छोड़ देनी है," कैलाश ने कहा।

"आज ही ?"

कैलाश धीमे से हंस दिया। बोला, "शादी करके लड़का-लड़की अमूमन शहर छोड़ कर भागा करते हैं।"

"बाकी लोगों को दिखलाने भर को भागना है, जाना कहीं नहीं है।"

"जाना है। पहले कलकत्ता, फिर गांव।"

"कौन से गांव ?"

"नाम का महत्व नहीं है।"

"बिमल दत्त···"

"वहीं हैं।"

"काजल दी ?"

"वे भी।"

"हमारे साथ और कौन जाएगा ?"

"अनिल पहले ही जा चुका।"

"लड़ाई शुरू हो गई।"

"होने वाली है।"

"और डॉक्टर संगीता···" प्रभा ने धीमे से कहा और खुद ही वाक्य पूरा कर

दिया, "···नहीं, वह हमारी लड़ाई में शामिल नहीं है।"

अनित्य नहीं मिला तो अविजित वापिस अपनी गाड़ी की तरफ़ चल दिया।

ठीक है, अनित्य, जाओ तुम। सब चले जाओ मुझे छोड़ कर। मेरा किसी से कोई सम्बन्ध नहीं है। बहुत हुआ। बहुत भोग चुका मैं। अब और भूत का बोझ नहीं ढो सकता। संगीता···काजल···श्यामा···जाओ, निकल जाओ मेरे दिमाग़ से। विगत से उठते धूल के गुबार से ज़्यादा कुछ नहीं हो तुम! लोगों की ज़िन्दगी बरबाद हो तो हर बार क़सूरवार मैं क्यों? तुम सब आगे निकल गए, मुझे ही क्यों हरदम पीछे लौटते रहना होगा? नहीं, मैं आगे बढ़ूंगा ···आगे···आगे···नई ज़िन्दगी की तरफ़···पीछे मुड़ कर एक बार देखूंगा तक नहीं।

मैं जा रहा हूं। सीधा रंजना के पास जाऊंगा। उसकी गोदी में सिर रख कर सब कन्फ़ेस कर दूंगा। रंजना, रंजना, मुझे पनाह दो! भूत के शिकंजे से मुक्ति दिलवाओ। मुझे और कुछ नहीं चाहिए। तुमसे भी कुछ नहीं चाहिए, बस यह कि तुम हो। और जिस काल और समय में तुम हो उसी में मैं हूं। यह नहीं कि तुम दूर भविष्य में टिमटिमाती रहो और मैं भुतहा सड़कों पर भटकता फिरूं।

अविजित ने गाड़ी को अपने घर से ठीक उल्टी दिशा में घुमा लिया।

दुनिया में मैं क्या अकेला पापी हूं! मुझसे पहले क्या किसी को माफ़ नहीं किया गया? मैं कुछ चाहता भी तो नहीं। मैंने कब कहा, रंजना, तुम मुझसे प्यार करो। बहुत प्यार मिल चुका मुझे। मैं बस इतना चाहता हूं कि तुम्हारे सामने क़ुबूल कर सकूं, मैं इस क़ाबिल हूं कि तुम्हें प्यार करूं।

किसी और की मुझे परवाह कहां है। तुमसे कुछ छिपाऊंगा नहीं, सब स्वीकार कर लूंगा। अपने विगत पर मुझे कम ग्लानि तो नहीं। एक बार तुम्हारे सामने कन्फ़ेस कर लूं तो बरी हो जाऊं।

···कन्फ़ेस करने का यह मतलब नहीं होता भाई साहब, कि आदमी सज़ा से बच जाए। संगीता भी तो···

चुप! तुम चुप रहो अनित्य! मेरा तुमसे कोई सम्बन्ध नहीं है। तुम मेरे कल के साथी थे। यह मेरा आज है और आने वाला कल। मेरे पीछे आने की कोशिश मत करो। मैं तुम्हें नहीं पहचानता। जाओ, तुम जाओ! मेरे पास वक़्त बहुत कम है।

एक्सलरेटर को पांव से कुचल कर अविजित ने गाड़ी पूरे वेग से आगे दौड़ा दी।

कहां···अनित्य यहां कहां है? वह तो पहले ही···

···यह मत समझो, अनित्य, कि तुम मेरे दिमाग़ पर कब्ज़ा जमाये रह सकते हो। रंजना के घर पहुंच जाऊं, मैं तुम्हें चुटकी से पकड़ कर बाहर फेंक दूंगा। धूल के नन्हें कण हो तुम, और कुछ नहीं।

कुछ नहीं सुनूंगा मैं आज, किसी के लिए नहीं रुकूंगा।

नहीं, लाल बत्ती के लिए भी नहीं, चौराहे पर हरी से लाल होती ट्रैफ़िक लाइट को देख कर प्रविजित ने कहा। लाल हो चाहे हरी, मैं रुकूंगा नहीं, सीधा निकल जाऊंगा। एक पल भी और जाया नहीं करूंगा अब···एक···पल···भी···नहीं···

जाने दो मुझे, संगीता। आज तुम मुझे नहीं रोक सकतीं। हटाओ, ब्रेक पर से पैर हटाओ!

ठीक लाल बत्ती के सामने चौराहे पर आकर गाड़ी खड़ी हो गई है।

बिल्कुल मेरे कल की तरह है यह लाल बत्ती! आगे बढ़ने के लिए रफ़्तार तेज की नहीं कि जलते अंगार की तरह दहकने लगी। पर आज मैं डर कर भागूंगा नहीं।

"हटाओ, संगीता! मैं कहता हूं ब्रेक पर से पैर हटाओ!" प्रविजित चीख उठा।

माथे से चू कर पसीने की बूंदें चक्के पर कसे उसके हाथों पर आ गिरीं। चौंक कर उसने रूमाल निकालने को जेब में हाथ डाला। सड़क से हट कर नज़र गाड़ी में घूम गई। चली कहां गई संगीता? ब्रेक पर तो यह खुद उसका अपना पैर है!

हरी बत्ती का इन्तज़ार···

चाभी घुमा कर उसने गाड़ी का इन्जन बन्द कर दिया।

तभी लाल से पीली होती हुई ट्रैफ़िक लाइट हरी हो गई।

हड़बड़ा कर प्रविजित ने तेज़ी से चाभी घुमाई और झटके से स्टार्टर खींच लिया। इन्जन फट-फट करके शान्त हो गया। गाड़ी स्टार्ट नहीं हुई। उसके आगे-पीछे खड़ी गाड़ियां हार्न बजातीं, फ़र्राटे से उसके बराबर से निकलती रहीं।

बेरहमी से प्रविजित स्टार्टर और चोक पर हाथ मारता रहा, एक्सलरेटर को पैर से रौंदता रहा पर गाड़ी नहीं चली···

बत्ती लाल हुई फिर हरी हो गई।

गाड़ियों की क़तारें थमतीं-बढ़ती बदलती रहीं।

प्रविजित ने गाड़ी का दरवाज़ा खोला और सड़क पर उतर पड़ा।

ठीक है, टैक्सी ले लूंगा। नहीं मिली तो पैदल जाऊंगा। पर आज जाऊंगा ज़रूर।

तेज़-तेज़ कदम उठाता वह उधर मुड़ गया जिधर सड़क रंजना के घर की तरफ़ जाती है।

रंजना, तुम देखना, मैं कुछ नहीं छिपाऊंगा तुमसे। मैं सज़ा से नहीं डरता, बस हर किसी को यह अधिकार नहीं देना चाहता कि मुझे सज़ा दे ले। तुम, रंजना, सिर्फ़ तुम मेरा न्याय करना। फिर जो सज़ा तुम दोगी, मैं स्वीकार कर लूंगा। एक बार भी विरोध नहीं करूंगा। हिचकना मत, रंजना···मैं तुम्हें जानता हूं···तुम मुझे माफ़ कर दोगी। कर दोगी न? हां, ज़रूर कर दोगी। मेरे सिर से भूत उतर जाएगा। मैं वर्तमान में जी सकूंगा। आने वाले कल में हिस्सा ले पाऊंगा। है न?

···कुछ भी करने की मेरी उम्र बीत गई और जब थी भी···

तुम गई नहीं काजल! शहर छोड़ कर जाने वाली थीं न। मेरी उम्र क्या करने

की है, तुमसे नहीं पूछा मैंने। मैं जो कुछ कर सकता था मैंने किया। तुम्हीं ने क्या कर दिखलाया। एक सनसनी खेज़ मौत, बस ! और कुछ नहीं ! कुछ नहीं !

जाओ, काजल, तुम जाओ ! तुमसे मुझे कुछ नहीं कहना···

देखो रंजना, आखिर मैं पुरुष हूं···

तुम केवल पुरुष हो, अविजित !

झूठ ! झूठ है ! तुम विश्वास मत करना रंजना। सुनो, मैं एक इन्सान हूं। हर इन्सान ग़लती करता है। ग़लती पर ग्लानि महसूस कर ले तो उसे माफ़ कर देना चाहिए। तुम रंजना, मुझे माफ़ कर दोगी। कर दोगी न ?

और···अगर···न किया तो ?

माफ़ी पाने के लिए कन्फ़ेस नहीं किया जाता, भाई साहब, कन्फ़ेस वह करता है जो सज़ा का मुन्तज़िर हो।

अनित्य ! फिर तुम ! मेरे पीछे यहां तक चले आए।

अविजित ने देखा, वह ठीक रंजना के घर के सामने खड़ा है।

बाहर का फाटक बन्द है। दरवाज़े पर परदा पड़ा है। भीतर कहीं शायद रंजना है। बीच में घण्टी की छोटी-सी टनटनाहट की देर है। पलांश की दूरी।

तुम कुछ मत कहना, अनित्य, अविजित ने फुसफुसा कर कहा। देखो, कभी तुम मुझे प्यार करते थे। तुम बस चुप रहना। मैं हीरो बनने की कोशिश नहीं कर रहा। मैं कन्फ़ेस नहीं करूंगा। बस कहूंगा, रंजना मैं तुमसे प्यार करता हूं। मैं इस क़ाबिल हूं कि तुम्हें प्यार करूं। तुम अनित्य, बस कुछ कहना मत···

···अभी मैं घण्टी बजाऊंगा···रंजना आकर दरवाज़ा खोलेगी···मुझे देख कर अचरज से मुस्करा उठेगी--इस वक़्त आप। मैं बस कुछ देर बैठूंगा उसके पास···कहूंगा, खास कुछ कहूंगा भी नहीं···बस बैठूंगा और···चला आऊंगा···

अभी बजाता हूं घण्टी···अभी···ज़रा देर बाद···बस, थोड़ी-सी देर और···और···और···

"अरे, मिस्टर बंसल, आप यहां—पैदल ! गाड़ी क्या हुई ?" चौंककर अविजित ने देखा उसके बराबर में एक नीली एम्बैसेडर गाड़ी खड़ी है। खिड़की से मुंह निकाल कर कोई कह रहा है, "···गाड़ी क्या हुई ? कहिए, कहां पहुंचा दूं !"

कौन है यह ? भट्ट ? बख्शी ? खोसला ? आग़ा ? पता नहीं चल रहा···

वह नीचे उतर आया है। गाड़ी का दूसरी तरफ़ का दरवाज़ा खोल दिया है। शालीनता से कह रहा है, "आइए न।"

अविजित चुपचाप जाकर गाड़ी में बैठ गया।

"कहां जाएंगे ?" गाड़ी स्टार्ट करके उसने पूछा।

"घर," अविजित के मुंह से निकला।

उसके बाद···सिर को हाथों से दबा कर अविजित ने आंखें बन्द कर लीं।

गाड़ी की दिशा का चुनाव हो चुका था। वह बिना हिचक दौड़ती रही।

देर से शुभा जमीन पर बैठी सामने खुले सूटकेस को देख रही है। खाली सूटकेस।

एक-एक कपड़ा तह कर वह उसमें लगा रही है। एक-एक कर, खालीपन से चौंक-चौंक कर। फिर भी खालीपन भर नहीं रहा। अजीब-सा अहसास मन में उभर आया है कि सूटकेस में चाहे कितने भी कपड़े क्यों न भर दिये जाएं, वह खाली ही रहेगा।

ऐसी बेमानी खयालात कहां से आकर मेरे दिमाग में भर जाते हैं।

बेमानी ? गहरे मानी रखने वाले खयालों को हम बेमानी कह कर उड़ा क्यों देते हैं ? इसलिये कि उनसे खौफ़ लगता है। बुर्कों और चादरों में लपेट कर हम उन्हें नज़रों से दूर करते रहते हैं, तभी वे आकार बदल कर सूक्ष्म देह धारण कर, दिमाग के किसी कोने में प्रवेश कर जाते हैं और फिर अमीबा के कीटाणु की तरह एक से दो होते-होते पूरे अस्तित्व पर हावी हो जाते हैं।

रात अविजित के सिर पर पर गीली पट्टी रखते हुए भी यही अहसास उसे घेरे रहा था कि पट्टी वह हाड़-मास के तपते माथे पर नहीं, गर्म हवा के ऊपर उड़ते बगूलों पर रख रही है।

कठफोड़वा की चोंच की तरह चलती सिर की नसें भी उस अहसास से छुटकारा दिलवाने में सफल नहीं हो सकी थीं।

सुबह का निकला अविजित शाम को भयानक सिरदर्द लिये घर लौटा था।

कुट-कुट तड़पती कनपटी की नस; आग-सा जलता माथा और···दर्द की पट्टियां थीं कि हवा में टंगी रही थीं···

रात-भर शुभा उसके सिरहाने बैठी उसकी छटपटाहट देखती रही थी और उसमें यह अहसास घर करता चला गया था कि कोई भी डाक्टर इस दिल-दिमागी दर्द का इलाज नहीं कर सकता···

सुबह होने को आई थी जब अविजित बेहोशी जैसी नींद में डूब गया था।

सूरज सिर पर चढ़ आया तो आंख खोल कर उसने शुभा से कहा, दफ्तर जाने के लिए उसके कपड़े सूटकेस में लगा दे।

शुभा का अहसास और गहरा हो गया था।

आखिरी कोशिश करते हुए उसने कहा था, "आज दफ्तर जा रहे हैं?"

"हां।"

"पर आपकी तबीयत ठीक नहीं है।"

"जाना पड़ेगा।"

"क्यों?"

"काम है।"

"किसका ?"

"हमारा। सिघानिया जी का। दफ़्तर का।"

"सिघानिया जी को मना नहीं किया जा सकता ?" शुभा ने कहा था।

जिरह करने की उसकी आदत नहीं है, अविजित जानता है।

उस अप्रत्याशित तर्क-आक्रमण से चौंक कर उसने कुछ अतिरिक्त रुखाई से कहा, "नहीं, छोटी-मोटी बीमारी के लिए काम नहीं छोड़ा जाता। तुम जाओ, मेरे कपड़े लगा दो।"

शुभा चली आई थी। प्रभा होती तो शायद कह डालती, "तर्क अच्छा है। हर किसी के पास मैदान छोड़ कर भागने की इतनी बढ़िया वजह नहीं होती।"

शुभा नहीं कह पाई थी। एक खालीपन मन में लिए उसके पास से उठ गई थी। सोचा था, शायद कपड़े लगाते-लगाते यह अहसास मिट जाए कि अविजित नाम का कोई आदमी अब उसके इर्द-गिर्द बचा नहीं रहा है।

पर…सूटकेस भर कर भी खाली लग रहा है…उसका अहसास कोहरे की तरह हर ठोस चीज़ पर हावी होता जा रहा है…

क्या उसमें इतनी हिम्मत है कि पिता के सामने खड़ी होकर पूछ सके, आप डाक्टर संगीता से बिना मिले तो नहीं जा रहे हैं, कितनी बार वह खुद से पूछ चुकी। जवाब हर बार एक है। नहीं, उस ग्लानि को वह सह नहीं सकेगी जो 'नहीं' कहते-कहते अविजित को सिर से पैर तक डुबा देगी।

प्रभा होती तो…पर प्रभा जा चुकी। अविजित जा रहा है…शुभा भी…

वह जानती है, अविजित संगीता से बिना मिले जा रहा है। संगीता, उसने याद किया, कितना अच्छा गाती थी संगीता।

एक दिन उसका गाना सुनकर शुभा कह उठी थी, बेसाख़्ता, "काश, मैं आपकी तरह गा सकती।"

संगीता ने टक लगा कर उसे देखा था और बोली थी, "काश, "मेरी तरह तुम कुछ भी न कर सको।"

शुभा को ठेस पहुची थी फिर भी उसने कहा था, "हां, डाक्टर बनने लायक़ बुद्धि मेरे पास नहीं है। पर आप डाक्टर क्यों बन रही है ? आपको तो संगीतज्ञ होना चाहिए।"

"अपनी मां की तरह ?" संगीता ने कहा था।

"आपकी मां भी इतना अच्छा गाती है ?" शुभा पूछ बैठी थी।

संगीता ने तड़प कर अविजित को देखा था। श्यामा ने निगाहें झुका ली थीं।

"शुभा, जाओ अपनी पढ़ाई करो," अविजित ने कहा था।

बिना कुछ समझे शुभा उठ गई थी। हमें माफ़ करना संगीता, अब वह बुदबुदा उठी।

"लामो कपड़े मैं लगा दूं," शुक्लजी ने कमरे में आकर कहा, "तुम जाकर भाई-साहब के माथे पर पट्टी रख दो। दर्द कम होने में ही नहीं आ रहा।"

"नहीं!" शुभा ने इतनी तेजी से कहा कि शुक्लजी सकपका गए।

शुभा ने अपने को सम्भाला और कहा, "कपड़े मैं लगा रही हूं। पट्टी आप रख दीजिए।"

"पता नहीं ऐसी हालत में बरनी कैसे जायेंगे," शुक्लजी ने कहा।

शुभा चुप रही।

"आग्रह तो कर रहा हूं मुझे साथ ले चलें। अपरिचित स्थान है, अपरिचित लोग, ऊपर से रोगी देह," शुक्लजी कहते गए, "अपना आदमी साथ हो तो कुछ सुविधा तो रहे। तुम कहो न उनसे, मुझे साथ ले लें।"

शुभा ने चुप्पी नहीं तोड़ी।

"चलूं, भाभी से कह देखूं। उनके सिवाय दूसरा समझने वाला कौन है। मुझे तो लगता है भाई साहब प्रभा की हरकत से चोट खाकर बीमार पड़े हैं। हे प्रभु, क्या दिन दिखलाया है।"

"प्रभा को बीच में मत घसीटिए," शुभा ने तड़प कर कहा, "उसके कारण कुछ नहीं हुआ है।"

"फिर किसके कारण हुआ है?" शुक्लजी ने लालायित स्वर में पूछा।

शुभा की गरदन झुक गई।

"कारण...भला क्या होता...बीमारी है...आ जाती है यूंही...," खालीपन में हाथ-पांव मारते हुए उसने कहा।

"प्रभु-प्रभु," शुक्लजी ने हाथ जोड़कर भक्ति-भाव से कहा, "सब प्रभु की माया है। वही देता है, वही लेता है। हम तो सेवा कर सकते हैं या प्रार्थना। हे प्रभु, जिस वृक्ष की छांव में इतने लोग आश्रय पाए हुए हैं, उसकी रक्षा करना।"

हाथ जोड़े-जोड़े शुक्लजी ने श्यामा के कमरे की तरफ़ प्रस्थान किया।

शुभा ने सूटकेस का ढक्कन बन्द कर दिया।

धीमे-धीमे, समाधि-की-सी अवस्था में वह उठ कर खड़ी हो गई और सामने छत की तरफ़ ताकती हुई बोल उठी...

बहुत धीमे-धीमे गिरा करते हैं देवदार के दरख्त
हवा हैरान-सी चुप रहती है
चोटी की शाख धंस जाती है धरती के भीतर
धूल का बगूला सिर्फ़ चार फुट ऊपर उठता है।
बवंडर नहीं उठा करते हर क़ब्र की गहराई से
कुछ ऊंचे दरख्त खुद ज़मीन में समा जाते हैं
जड़ों की मिट्टी में कभी-कभी रेत मिली रहती है...

अपनी आवाज सुनकर उसने सुकून महसूस किया। वही सुकून जो कभी संगीता

की तरह गाकर महसूस करना चाहा था।

पाँव उठाकर वह सूटकेस पर खड़ी हो गई। हाथ आगे बढ़ा कर अपने के उतार-चढ़ाव को सम्बल की तरह थाम लिया। पहले से अधिक नाटकीय भावात्म के साथ वही पंक्तियाँ दुहरायीं। लगा उसके पैरों के नीचे की धरती धीरे-धीरे उठ रही है। उसकी आवाज के दबाव से खालीपन नीचे बैठ रहा है और एक धरती उभर कर ऊपर आ रही है, जिस पर खड़े रह कर हर शून्य को भरा सकता है।

आत्म-विभोर होकर एक बार फिर उसने नाटक की पंक्तियां गुनगुनाई उसी धरती पर खड़े-खड़े अलमारी के उपर से एक और खाली सूटकेस नीचे उतार लि

डाक्टर जैन ने उसे बम्बई नाट्य-फ़िल्म विद्यालय में दाखिला दिलवाने आश्वासन दिया है। उनका कहना है उसके अन्दर एक महान कलाकार छिपा हुआ

वह तो बस इतना जानती है कि उसके अन्दर एक जेहनी कायर छिपा है। ऐसा कायर जो अपनी जेहनियत के दबाव से हर सफ़ेद सतह का स्याह प और हर स्याह ज़मीन का सफ़ेद पहलू देखते रहने पर मजबूर है।

हर जेहनी कायर होता है और…कलाकार भी ? हां…शायद…क कभी…

आदमी या धरती पर जी सकता है या पर्दे पर। कलाकार के नक़ाब से बे पर्दा कहां मिलेगा ?

शुभा ने सूटकेस खोल लिया। एक-एक करके अपने कपड़े उसमें सहेजने लगं सहेजते-सहेजते, हाथ रोक कर वह फिर बुदबुदा उठी…

बहुत धीमे-धीमे गिरा करते हैं देवदार के दरख्त
और कभी-कभी पर्दों से उलझ कर साये बन जाते हैं…

९

"शुभा ! शुभा !" पुकारता अविजित घर में घुसा और बाहर बरामदे में ठिठक कर रह गया।

गहरे पानी में डूब रहे आदमी को तैरना न भी आता हो तब भी किसी अन्चीन्ही

इच्छा-शक्ति के सहारे वह सतह के ऊपर बह जाता है। एक बार; दो बार; तीन बार। सिर पानी से बाहर निकालता है और अनायास चिल्ला उठता है—बचाओ! मुझे बचाओ! मेरी इच्छाशक्ति का ह्रास हो चुका है! फिर भी आग···बुझते-बुझते बुझती है। धधकती भट्टी को पानी डाल कर बुझाने की कोशिश करो, कुछ लपटें इधर-उधर कोनों में दुबक जाएगी। मौक़ा मिलते ही, ऑक्सीजन का छोटे-से-छोटा भभका पाते ही, लपकप इँगी···जी लें जितनी देर हो सके···पांच-दस मिनट ही सही···गैस का गुब्बारा छू कर गुज़रे तो चिंदी-चिंदी उड़ा कर ऊपर उछाल दें—बम के धमाके की तरह ···आवाज़ तो करेगा एक बार!

पानी की तलहटी में कहीं आग लगी थी, उसी ने मुझे ऊपर उछाल दिया है··· पर मैं हाथ-पांव नहीं मार सकता। पानी के उच्छृंखल बहाव के आगे समर्पण कर शांतचित्त बह भी नहीं सकता। बस सिर ऊपर निकाल कर चीख सकता हूं—बचाओ! मुझे बचाओ! मेरा हाथ थाम कर बाहर खींच लो। ज़ोर तुम्हें लगाना होगा। मैं नहीं लगा पाऊंगा। ज़ोर मुझमें बचा नहीं। फिर भी आग बुझते-बुझते बुझती है···तुम खींच कर देखो तो एक बार, मैं खिंचा चला आऊंगा। मेरी इच्छा शक्ति का ह्रास हो चुका। फिर भी···

"शुभा! शुभा!" आर्त कण्ठ से अविजित ने पुकारा और बरामदे में खड़ा इन्तज़ार करता रहा कि अभी शुभा बाहर आकर देखेगी, वह वरनी से लौट आया। सहारा देकर वह उसे भीतर ले जाएगी···

"अरे तुम! इतनी जल्दी कैसे लौट आए।"

शुभा नहीं, यह श्यामा है।

ये शब्द श्यामा के हैं पर यह काया? भीतर से दौड़ कर जो बाहर आई है, वह क्या श्यामा है? पर श्यामा तो आज तक कभी दौड़ी नहीं।

कोई और दिन होता तो अविजित आगे बढ़ कर उसे थाम लेता; लड़खड़ा कर कहीं गिर न पड़े। अविजित का सहारा लिये बिना वह कब चली है? और इतनी तेज़ तो सहारे से भी नहीं चली। सहारे से चलो तो गति नहीं, सिर्फ़ संतुलन हाथ लगता है, जो सहारा छूटते ही पहले से भी ज़्यादा बुरी तरह बिगड़ जाता है।

दौड़ती हुई श्यामा आगे बढ़ी है और उसने अविजित की बांह थाम ली है।

"तुम्हारा बदन तो तवे की तरह जल रहा है," घबराए स्वर में उसने कहा, "बुखार है क्या?"

"शुभा से कहो मैं लौट आया," अविजित ने कहा है।

"चलो, भीतर चलो।" श्यामा उसे ठेल रही है।

"शुभा को बुलाओ!" हठीले बच्चे की तरह अविजित जड़ खड़ा है।

"बुलाती हूं···भीतर तो चलो।"

"शुभा को बुलाओ!" बार-बार वह दुहरा रहा है।

श्यामा समझ गई कुछ भी कहना बेकार है, उसकी आवाज़ अविजित के कानों

तक पहुंच नहीं रही।

"शुक्लजी!" घबरा कर श्यामा ने आवाज़ लगाई और याद आया कि शुक्लजी हैं कहां, वह तो अविजित के साथ बरनी गए थे।

"शुभा···को···बुलाओ···" कहता अविजित धम से वहीं फ़र्श पर बैठ गया।

"शुक्लजी नहीं आए तुम्हारे साथ?" श्यामा ने पूछा ज़रूर पर साथ ही जोर से आवाज़ भी लगा उठी—"खोखी! ओ खोखी! जल्दी बाहर आ!"

हां, अविजित से इस वक़्त कुछ भी पूछना बेकार है। वह सुन नहीं रहा, एक बड़बड़ाए जा रहा है—शुभा को बुलाओ···शुभा···को···बुलाओ···

पल भर में खोखी बाहर आ गई।

"देख तो तेरे पिता जी को क्या हो गया। तिलक को बुला। सहारा देकर भीतर ले चल। डाक्टर माचवे को फ़ोन कर। जल्दी-जल्दी!" श्यामा एक-के-बाद-एक आदेश देती चली गई।

खोखी घबरा गई। "शुक्लजी," उसने कहा, "शुक्लजी कहां हैं?"

"उल-ई! उल-ई!" उसके पीछे खड़ा सुधांशु भी पुकार उठा।

"मर गए शुक्लजी! मैं जो कह रही हूं इन्हें अन्दर ले चल। तिलक को बुला न!" श्यामा ने बेक़ाबू होकर कहा।

तिलक की मदद से खोखी किसी तरह अविजित को उठाकर भीतर लिवा ले गई और बिस्तर पर लिटा दिया।

"शुभा!" उसने पुकारा।

"पिताजी," खोखी ने मधुर स्वर में कहा।

"शुभा, मैं लौट आया!"

"हां, पिताजी, मैं जानती थी आप लौट आएंगे," खोखी ने कहा।

"शुभा!" अविजित कहता गया, "मैं संगीता से मिलने जाऊंगा।"

"हां, पिताजी।"

"कौन हो तुम?" सहसा उसके चेहरे हर आंखें गड़ा कर अविजित ने डपट कर पूछा।

"मैं शुभा हूं पिताजी," डरते-डरते खोखी ने कहा।

"नहीं, तू खोखी है। शुभा को क्यों नहीं बुलाते तुम लोग।"

"शुभा घर पर नहीं है। अभी आ जाएगी," श्यामा ने कहा, "सोने की कोशिश करो। डाक्टर माचवे आते ही होंगे।"

क्षण भर को उभरी वर्तमान की पहचान फिर मिट गई।

"शुभा!" अविजित ने पुकारा और हर पल पुकारता ही चला गया।

"घर पर नहीं है," कह-कह कर श्यामा थक गई और आखिर सच बतलाने

पर मजबूर हो गई।

"शुभा को डाक्टर जैन बम्बई ले गये हैं। वहां नाटक और फिल्म…"

"शुभा डाक्टर जैन के साथ भाग गई!" तूफ़ान में टूट कर गिरते पेड़ की तरह तड़प कर अविजित ने कहा।

"क्या कह रहे हो!" स्तम्भित श्यामा ने बाधा दी, "डाक्टर जैन उसके पिता समान हैं।"

"पिता समान!" अविजित ठठा कर हंस दिया, "पुरुष और पिता समान!"

वह इतनी देर तक हंसता रहा कि श्यामा के शरीर के रोंगटे खड़े हो गए।

"ऐसे हंस क्या रहे हो?" उसने कहा, "डाक्टर जैन की उम्र…"

"मेरी उम्र से कम नही।"

"हां।"

"मेरी उम्र…" अविजित की हंसी रुक गई। वह मुर्दे की तरह निष्प्राण पड़ा रहा। नेपथ्य से आती आवाज में फिर उसने धीमे से कहा, "संगीता के बाप की क्या उम्र रही होगी?"

"प्लीज़," श्यामा ने कहा, "वह सब मत सोचो।"

"मत सोचो कहने से कैसे चलेगा। सोचना होगा। तुम कहो, वह सब कहो मत, सिर्फ़ सोचो।"

"प्लीज, इतना बोलो मत। बुखार तेज है। सोखी, बर्फ ले कर आ। सिर पर पट्टी रखनी है।"

"सोचने से दिमाग़ में मवाद बनती है," अविजित कहता गया, "दिमाग… आदमी का दिमाग़…जानती हो क्या होता है दिमाग़? फोड़ा। धीरे-धीरे पकता, अहिस्ता-अहिस्ता सड़ता फोड़ा। जितना सोचोगे उतनी सडांध उठेगी। पूरा पकेगा नही तो फोड़ा फूटेगा कैसे?"

श्यामा ने चुपचाप उसके सिर पर बर्फ़ की थैली रख दी है।

"मवाद पलता है तो गिल्टिया निकलती हैं। शुक्ल जी ने कहा, नही-नहीं भाई साहब, यह प्लेग नही है…"

"क्या कह रहे हो?"

"मैं रात के अंधेरे में उठा…घुप! तीन अंगुल चौड़ा अंधेरा…गले में निकली गिल्टियो जैसी ठोकरें…डाक्टर जिस तरफ़ था मैं ठीक उसकी उल्टी तरफ़ चला… शुक्ल जी बोले, नहीं-नही, भाई साहब, वहम मत पालिए, यह प्लेग नहीं है…कहो मत सिर्फ सोचो…एक बार कह दिया तो बचाव के सब रास्ते बन्द! मैंने नहीं कहा—एक बार भी नही कहा, बोलो, कब कहा?"

"क्या हो गया है तुम्हें!"

"वहम। सिर्फ़ वहम। मैं कह रहा हूं, जिधर डाक्टर था मैं उसके उल्टी तरफ़ जंगल में बढ़ा। जंगल का अन्धेरा, ठंड, भूख से भी ज़्यादा…

लगती है, जानती हो न संगीता।"

"चुप रहो। प्लीज़ चुप रहो।"

"भूख आंतों में नहीं लगती, आदमी के···"

"प्लीज़ कुछ मत कहो। चुप रहो!" श्यामा चीख पड़ी।

"यह डिलीरियम नहीं, सच है, संगीता।"

"मैं संगीता नहीं हूं।"

"संगीता!" फिर भी अविजित ने कहा।

"नहीं! मैं श्यामा हूं, श्यामा, श्यामा···"

"चुप रहो, ममी," खोखी ने डपट कर कहा, "बार-बार दुहराओ मत।"

वह डर रही थी, कहीं अविजित के साथ श्यामा भी डिलीरियम में न पहुंच जाए।

"मुझसे बोलिए पिताजी," अविजित के ऊपर झुक कर उसने कहा, "मैं शुभा हूं।"

"संगीता!" अविजित ने पुकारा।

"शुभा! आप शुभा को पुकार रहे थे। मैं शुभा हूं," खोखी ने ज़ोर दे कर कहा।

"संगीता!" अविजित ने पुकारा।

असमंजस में पड़ी खोखी चुप हो गई। एक बार सोचा, कह दे, हां, मैं संगीता हूं। पर···अभी जो अविजित ने कहा था···नहीं···नहीं कह सकती···

"ईता…" सुधांशु कह रहा है।

"ईता…" अविजित दुहरा रहा है।

सुधांशु का हाथ अविजित के हाथ में है…

सुधांशु, अविजित, श्यामा, तीनों एक दायरे में हैं, एक साथ…

श्यामा के ओठों पर ममता भरी मुस्कराहट उभरी और खिलती चली गई। ऐसी मुस्कराहट शायद ही पहले कभी किसी ने उसके चेहरे पर देखी थी।

डॉक्टर माचवे वहां पहुंचे तो हैरत-भरी नज़र से श्यामा को देखते रह गए… अविजित का परीक्षण उसके कहने पर शुरू किया।

काफ़ी झिझक के बाद, डॉक्टर माचवे ने अपना मत ज़ाहिर किया था—सेरबेरल मलेरिया!

पहले पूछा था, "घर पर और कौन है?"

"मैं और खोखी," श्यामा का उत्तर सुनकर विमूढ़-से रह गये थे।

"बस। और लोग कहां हैं? प्रभा, शुभा और वह जो आपके साथ रहते हैं… शुक्लजी?"

"सब बाहर गए हैं।"

"तब ऐसा करते हैं, श्यामा जी, देखिए घबराने की कोई बात नहीं है पर आप खुद बीमार रहती हैं, घर पर दूसरा आदमी कोई है नहीं तो…मेरे ख़याल से बेहतर यह रहेगा कि हम इन्हें अस्पताल में दाखिल कर लें। वहां देखभाल ज़्यादा आसानी से हो सकेगी," डाक्टर माचवे ने बात को खूब सम्भालकर श्यामा से कहा था।

श्यामा जानती है, अविजित को अस्पतालों से सख्त नफ़रत है। उसने मना कर दिया।

"पर इन्हें पूरी नर्सिंग की ज़रूरत है," डाक्टर माचवे ने विरोध किया।

"मैं कर लूंगी।" खोखी बोली।

"पर…अकेली तुम…"

"मैं भी हूं," श्यामा ने कहा।

डॉक्टर माचवे चकित भाव से उसे देखते रहे, "पर आप तो खुद…" उन्होंने कहा।

"मैं ठीक हूं, डॉक्टर माचवे। आप इन्हें देखिए, क्या हुआ है?"

"देखिए श्यामा जी, यूं तो मलेरिया है पर तेज़ बुखार में सफर करने की वजह से बीमारी बढ़ गई है और…"

"दिमाग़ी हालत बहुत खराब है," श्यामा ने वाक्य पूरा कर दिया। "और उसका इलाज अस्पताल से बेहतर घर पर हो सकता है, नहीं?"

"आपकी बात ठीक है पर जब गर पर कोई ज़िम्मेदार आदमी नहीं है तो···"

"मैं हूं न, डाक्टर माचवे, आप बार-बार मुझे क्यों भूल जाते हैं।"

डॉक्टर माचवे लज्जित हो उठे थे। "नहीं-नहीं, भूल नहीं रहा," उन्होंने कहा था, "मैं तो सिर्फ़ आपकी परेशानी कम करने के लिए एक साथी खोज रहा था। ऐसा करते हैं, दिन में आप देख लें, रात के लिए मैं नर्स का इन्तज़ाम कर देता हूं।"

श्यामा राज़ी हो गई।

तीन दिन बीत चले···

"इतनी बीमारी में तुम वहां से चल क्यों पड़े?" श्यामा अविजित से पूछ रही है। कई बार पहले भी पूछ चुकी। अविजित ने जवाब नहीं दिया। पता नहीं उसकी बात सुनी भी या नहीं। उसके पास अपने से कहने को इतना कुछ है कि दूसरों की बातें शोर को चीर कर उस तक पहुंच नहीं पातीं।

"शुक्लजी तुम्हारे साथ क्यों नहीं आए?" श्यामा पूछ रही है।

अविजित जवाब नहीं दे रहा।

एक दिन और बीत रहा है···

"तुम्हें पता है बरनी के जंगल में कितने बड़े-बड़े मच्छर होते हैं?" अविजित कह रहा है।

"कितने?"

"शुक्ल जी से भी बड़े···इतने," दोनों हाथों में दूरी बना कर वह बतला रहा है।

"शुक्ल जी हैं कहां?" श्यामा नाम को थामे ले रही है।

"मैं जंगल में भटक गया। मैंने कहा जब तक यहां का एक-एक मच्छर मारा नहीं जाता, मैं घर नहीं लौटूंगा। शुक्ल जी बोले, नहीं-नहीं, भाई साहब, यहां कोई डाक्टर नहीं है, आप घर लौट जाइए···"

"शुक्ल जी वहीं बरनी में हैं?" श्यामा ने बात का सिरा पकड़ना चाहा।

"बरनी? बरनी फ़ार्म···सौ बीघा ज़मीन···सौ बीघा ज़मीन कितनी होती है?"

"बहुत," श्यामा ने कहा।

"एक बीघा से सौ गुना। दो बीघे से पचास गुना···तीन बीघे···"

"हां, बिल्कुल ठीक कह रहे हो तुम। अब आराम करो।"

"सिंघानिया जी ज़मीन बेचना चाहते हैं।"

"ठीक तो है। यहां बैठे देखभाल जो नहीं होती।"

"दस रुपये बीघे के हिसाब से किसी परदादा ने खरीदी थी।"

"अच्छा।"

"काजल कहती थी, जो खेती करेगा, ज़मीन उसी को मिलेगी।"

"मिलनी तो चाहिए। पर जिसकी ज़मीन है वह भला क्यों देगा।"

"सिंघानिया जी ने कहा था, सौदा खूब ऊंचा पटाना।"

"बिक गया फ़ार्म?"

"हज़ार की चीज़ लाख में बिके, कैसा लगता है।"

श्यामा चुप रही।

सहसा अविजित ने उसका हाथ पकड़ कर मसल डाला। शायद वह उसे दीख गई थी।

"बोलो, कैसा लगता है?" उसने कहा।

"मेरी चीज़ तो है नहीं," श्यामा ने मधुर स्वर में कहा, "जिसकी है, उसे अच्छा ही लगेगा।"

"सिंघानिया जी खुश हो जाएंगे।"

"हां।"

अविजित कुछ देर चुप रहा, फिर बोला, "मेरी ज़िन्दगी का मकसद क्या है?"

श्यामा को उसकी बात में फिर खतरे की गन्ध आने लगी।

"इतना बोलो मत," उसने कहा, "डाक्टर ने आराम करने को कहा है।"

"आराम!" अविजित पहले दिन वाली उन्मत्त हंसी हंस दिया।

"मेरी ज़िन्दगी का मक़सद है···" उसने कहा, "···मक़सद है कि सिंघानिया जी खुश रहें।"

"प्लीज़।"

"मैं जान की बाज़ी लगा दूंगा। जो कुछ आज तक पाया है होम कर दूंगा पर सिंघानिया जी को खुश रखूंगा···क्योंकि यही मेरी ज़िन्दगी का अकेला मकसद है," कह कर अविजित अट्टहास कर उठा।

"तो फ़ार्म बिक गया?" श्यामा ने चिल्ला कर पूछा।

"शुक्ल जी बहुत भले आदमी हैं," हंसी रोक कर अविजित ने कहा।

"इतनी बीमारी में तुम्हें अकेले कैसे आने दिया, साथ क्यों नहीं आए?"

"सचमुच भले आदमी हैं, बोले, भाई साहब आप फ़िक्र न करें मैं सब सम्भाल लूंगा।"

"अब और वहां क्या सम्भालना है?"

"नम्बर दो का पैसा है, कैश मिलेगा।"

"बिक गया फ़ार्म?"

"एक लाख रुपया कैश।"

"एक लाख रुपया कैश है तुम्हारे पास? कहां रखा है।"

"बिल्ली का स्वधर्म है चूहे को खाए," अविजित ने कहा।

"आपकी बात ठीक है पर जब गर पर कोई ज़िम्मेदार आदमी नहीं है तो···"

"मैं हूं न, डाक्टर माचवे, आप बार-बार मुझे क्यों भूल जाते हैं।"

डॉक्टर माचवे लज्जित हो उठे थे। "नहीं-नहीं, भूल नहीं रहा," उन्होंने कहा था, "मैं तो सिर्फ़ आपकी परेशानी कम करने के लिए एक साथी खोज रहा था। ऐसा करते हैं, दिन में आप देख लें, रात के लिए मैं नर्स का इन्तज़ाम कर देता हूं।"

श्यामा राज़ी हो गई।

तीन दिन बीत चले···

"इतनी बीमारी में तुम वहां से चल क्यों पड़े?" श्यामा अविजित से पूछ रही है। कई बार पहले भी पूछ चुकी। अविजित ने जवाब नहीं दिया। पता नहीं उसकी बात सुनी भी या नहीं। उसके पास अपने से कहने को इतना कुछ है कि दूसरों की बातें शोर को चीर कर उस तक पहुंच नहीं पातीं।

"शुक्लजी तुम्हारे साथ क्यों नहीं आए?" श्यामा पूछ रही है।

अविजित जवाब नहीं दे रहा।

एक दिन और बीत रहा है···

"तुम्हें पता है बरनी के जंगल में कितने बड़े-बड़े मच्छर होते हैं?" अविजित कह रहा है।

"कितने?"

"शुक्ल जी से भी बड़े···इतने," दोनों हाथों में दूरी बना कर वह बतला रहा है।

"शुक्ल जी हैं कहां?" श्यामा नाम को थामे ले रही है।

"मैं जंगल में भटक गया। मैंने कहा जब तक यहां का एक-एक मच्छर मारा नहीं जाता, मैं घर नहीं लौटूंगा। शुक्ल जी बोले, नहीं-नहीं, भाई साहब, यहां कोई डाक्टर नहीं है, आप घर लौट जाइए···"

"शुक्ल जी वहीं बरनी में हैं?" श्यामा ने बात का सिरा पकड़ना चाहा।

"बरनी? बरनी फ़ार्म···सौ बीघा ज़मीन···सौ बीघा ज़मीन कितनी होती है?"

"बहुत," श्यामा ने कहा।

"एक बीघा से सौ गुना। दो बीघे से पचास गुना···तीन बीघे···"

"हां, बिल्कुल ठीक कह रहे हो तुम। अब आराम करो।"

"सिंघानिया जी ज़मीन बेचना चाहते हैं।"

"ठीक तो है। यहां बैठे देखभाल जो नहीं होती।"

"दस रुपये बीघे के हिसाब से किसी परदादा ने खरीदी थी।"

"अच्छा।"

"काजल कहती थी, जो खेती करेगा, ज़मीन उसी को मिलेगी।"

"मिलनी तो चाहिए। पर जिसकी ज़मीन है वह भला क्यों देगा।"

"सिंघानिया जी ने कहा था, सौदा खूब ऊंचा पटाना।"

"बिक गया फ़ार्म?"

"हज़ार की चीज़ लाख में बिके, कैसा लगता है।"

श्यामा चुप रही।

सहसा अविजित ने उसका हाथ पकड़ कर मसल डाला। शायद वह उसे दीख गई थी।

"बोलो, कैसा लगता है?" उसने कहा।

"मेरी चीज़ तो है नहीं," श्यामा ने मधुर स्वर में कहा, "जिसकी है, उसे अच्छा ही लगेगा।"

"सिंघानिया जी खुश हो जाएंगे।"

"हां।"

अविजित कुछ देर चुप रहा, फिर बोला, "मेरी ज़िन्दगी का मकसद क्या है?"

श्यामा को उसकी बात में फिर खतरे की गन्ध आने लगी।

"इतना बोलो मत," उसने कहा, "डाक्टर ने आराम करने को कहा है।"

"आराम!" अविजित पहले दिन वाली उन्मत्त हंसी हंस दिया।

"मेरी ज़िन्दगी का मक़सद है···" उसने कहा, "···मक़सद है कि सिंघानिया जी खुश रहें।"

"प्लीज़।"

"मैं जान की बाजी लगा दूंगा। जो कुछ आज तक पाया है होम कर दूंगा पर सिंघानिया जी को खुश रखूंगा···क्योंकि यही मेरी ज़िन्दगी का अकेला मक़सद है," कह कर अविजित अट्टहास कर उठा।

"तो फ़ार्म बिक गया?" श्यामा ने चिल्ला कर पूछा।

"शुक्ल जी बहुत भले आदमी हैं," हंसी रोक कर अविजित ने कहा।

"इतनी बीमारी में तुम्हें अकेले कैसे आने दिया, साथ क्यों नहीं आए?"

"सचमुच भले आदमी हैं, बोले, भाई साहब आप फ़िक्र न करें मैं सब सम्भाल लूंगा।"

"अब और वहां क्या सम्भालना है?"

"नम्बर दो का पैसा है, कैश मिलेगा।"

"बिक गया फ़ार्म?"

"एक लाख रुपया कैश।"

"एक लाख रुपया कैश है तुम्हारे पास? कहां रखा है।"

"बिल्ली का स्वधर्म है चूहे को खाए," अविजित ने कहा।

"रुपया कहां है, ब्रीफ़केस में ?" श्यामा व्यग्र हो उठी।

"स्वधर्म है इसीलिए जायज़ है ?"

"खोखी, ओ खोखी !" श्यामा ने आवाज़ लगाई, "पिताजी का ब्रीफ़केस दे[illegible]
कहां रखा है, लेकर आ मेरे पास।"

उसकी आवाज से चौंक कर अविजित ने उसकी तरफ़ देखा।

"मैं तुमसे पूछ रहा हूं," सख्ती से उसने कहा, "जायज़ है ?"

खोखी आकर पास खड़ी हो गई। खाली हाथ।

"पिताजी का ब्रीफ़केस ला जल्दी," श्यामा ने कहा।

"जवाब क्यों नहीं देतीं तुम मेरी बात का ?" अविजित ने चीख कर कहा।

"किस बात का ?"

"बिल्ली चूहे को खाए यह जायज़ है ?"

खोखी ने ब्रीफ़केस लाकर श्यामा की गोद में रख दिया। तत्परता से उसने उ[illegible]
खोला और भौंचक बोल पड़ी, "कहां···इसमें तो सिर्फ़ कागज है। रुपया कहां रखा है?
परेशानी में उसने अविजित का हाथ पकड़ कर हिला दिया।

"क्या है ?" अविजित ने चौंक कर कहा।

"रुपया ! रुपया कहां रखा ?"

"रुपया ! रुपया ! रुपया !" अविजित झनक कर उठ बैठा और बेक़ाबू हो[illegible]
चीख़ दिया, 'जो मैं पूछ रहा हूं उसका जवाब दो।"

"क्या ?" श्यामा घबरा गई।

"जायज़ है ?"

"क्या जायज़ है ?" श्यामा ने उस सब पर ध्यान ही नहीं दिया था।

"बिल्ली का चूहे को खाना," खोखी ने जल्दी से उसके कान में फुसफुसा क[illegible]
कहा।

श्यामा की समझ में कुछ नहीं आया फिर भी जवाब जरूरी था। "वह त[illegible]
खाएगी ही," उसने कहा।

"क्यों खाएगी ?" अविजित इतनी जोर से चीखा कि श्यामा रोने-रोने को हो[illegible]
गई।

"मुझे नहीं मालूम," उसने कहा।

"तो मालूम करो," अविजित फिर चीखा और निढाल बिस्तर पर गिर पड़ा।

कुछ देर की चुप्पी के बाद, अत्यन्त धीमे और थके स्वर में उसने कहा, "काज[illegible]
से पूछना।" और आंखें बन्द कर लीं।

श्यामा ने कुछ सुकून महसूस किया। अनर्गल बोलना तो रुका। सो सकें तो खु[illegible]
को भी आराम मिले, घर वालों को भी। कुछ देर वह दम साधे चुपचाप बैठी रही, नीं[illegible]
में खलल डालने के डर से, पर खाली ब्रीफ़केस का खयाल बराबर परेशान करता रहा।
आखिर उससे नहीं रहा गया। फुसफुसा कर खोखी से पूछा, "तुझे पता है पिताजी ने

ब्रीफ़केस में से रुपया निकाल कर कहां रखा है…कहां रख सकते हैं…जब से आए हैं घर पर तो पड़े हैं…अच्छा सुन, ब्रीफ़केस तिलक के हाथ में तो नहीं दिया था।"

"नहीं," खोखो ने कहा, "मैंने खुद अलमारी में टिका दिया था।"

"खोल कर देखा था?"

"नहीं।"

"फिर…कहां गया रुपया?" श्यामा की आवाज़ अनायास ऊंची उठ गई।

अविजित ने आंखें खोल लीं। इस वक़्त उसकी दृष्टि साफ़ थी।

"कैसा रुपया?" उसने पूछा।

"वही जो बरनी फ़ार्म बेच कर मिला है—एक लाख रुपया।"

"फ़ार्म बिक गया?" अविजित ने हैरान होकर पूछा।

"तुम्हीं ने तो कहा था…"

"शुक्ल जी आ गए?"

"नहीं। तुमने कहा था न फ़ार्म बिक गया?"

"अभी नहीं बिका। शुक्लजी बेच कर आएंगे।"

"शुक्ल जी? वह कैसे…"

"मैं उन्हें पावर ऑफ़ अटॉर्नी दे आया हूं।"

"यह क्या किया तुमने?" आतंकित स्वर में श्यामा ने कहा, "किसी आदमी पर इतना भरोसा नहीं किया जा सकता!"

"किसी आदमी पर या ग़रीब आदमी पर?" अविजित ने कड़वे स्वर में पूछा।

"इतना रुपया देख कर किसी की भी नीयत बदल सकती है।"

"तब तो सिंघानिया जी ने मुझ पर भरोसा करके बहुत ग़लती की।"

"वह…बात…और है।"

"क्यों? और बात क्यों है?"

श्यामा चुप रही।

"बोलती क्यों नहीं। और बात क्यों है?" अविजित की आवाज़ ऊंची हुई तो श्यामा उसे बहलाने को मधुर स्वर में कह उठी, "जाने दो। इतना परेशान मत हो। भगवान ने चाहा तो सब ठीक ही होगा।"

"भगवान!" अविजित हंस दिया, "वाह, जज सिंघल! आपका धार्मिक ज्ञान तो बहुत ऊंचे दर्जे का है। और हम-आप अलग थोड़ा ही हैं, जज सिंघल। दोनों जानते हैं कि बिल्ली चूहे को खाए तो स्वधर्म और कहीं चूहा घात लगा कर बिल्ली को खत्म कर दे तो अपराध है। आखिर न्याय धर्म के खिलाफ़ तो जा नहीं सकता।"

"जूस पी लीजिए, पिताजी," बीच में खोखो ने आ कर बाधा दी।

अविजित पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। वह बोलता गया, "जो भगवान में विश्वास करते हैं, अच्छी तरह जानते हैं कि भगवान ने सिर्फ़ बिल्लियों को बनाया है। चूहे बेचारे तो जाने किस डार्विन की मार्फ़त पैदा हो गए, इसलिए जीत हमेशा भगवान की

होती हैं," कह कर वह बहुत मनोहारी ढंग से मुस्करा दिया।

दरवाज़े से अनित्य ने पुकारा, "भाई साहब !"

"कौन ? शुक्ल जी ? आ गए। आओ-आओ," अविजित ने कहा।

"शुक्ल नहीं, मैं अनित्य हूं, भाई साहब।"

"रुपया मिल गया ?"

श्यामा उठी और अनित्य की बांह पकड़ कर उसे दूसरे कमरे में ले आई।

"पांच दिन से ये सख्त बीमार हैं, अनित्य," उसने कहा।

"मैं भाई साहब को लेने आया हूं," अनित्य ने कहा, "संगीता से एक बार मिलना ही होगा।"

"तुम देख तो रहे हो, बिस्तर पर पड़े हैं। ऐसी हालत में कहां जाएंगे ?"

"मैंने हर कोशिश करके देख ली। संगीता मुझसे मिलने को या मेरी मदद लेने को किसी तरह तैयार नहीं है।"

"तुम्हें हो क्या गया है, अनित्य," श्यामा ने दुखी स्वर में कहा, "तुम्हारे भाई साहब की जान जोखिम में है और तुम्हें संगीता की पड़ी है।"

"जोखिम संगीता से मिलने में भी है और न मिलने में भी, भाभी।"

"मैं संगीता की बात नहीं कर रही। तुम्हें दीख नहीं रहा, ये डिलीरियम में हैं।"

अनित्य कुछ देर चुप रहा, फिर धीमे से बोला, "इसके सिवाय उम्मीद भी क्या की जा सकती थी।"

"क्या मतलब ? तुम्हारा क्या खयाल है…"

"जो तुम्हारा खयाल है, वही मेरा भी खयाल है भाभी। तुम न खुद को धोखा दे सकती हो न मुझे।"

"डॉक्टर माचवे का कहना है, इन्हें सेरब्रेरल मलेरिया है।"

"उनका डाइगनोसेस ग़लत नहीं हुआ करता," अनित्य ने सपाट स्वर में कहा।

"अगर इन्हें कुछ हो गया !" श्यामा विह्वल हो उठी।

अनित्य चुप रहा।

श्यामा ने उसका हाथ कस कर पकड़ लिया। "जब से आए हैं संगीता का ही नाम ले रहे हैं," उसने कहा।

अनित्य चुप रहा।

"तुम मेरी बात का यक़ीन क्यों नहीं कर रहे," दर्द से कराह कर श्यामा ने कहा।

"मैं चलूंगा, भाभी," अनित्य ने कहा।

"सुनो," श्यामा ने उसके कन्धे थाम लिये, "मुझे ले चलो संगीता के पास।"

"वह तुमसे नहीं मिलेगी और न मुझसे।"

"फिर तुम कहां जा रहे हो ?"

"बाहर।"

श्यामा ने कहना चाहा, मत जाओ, अनिरुद्ध, सब चले गए एक-एक करके... स्वर्णा...प्रभा...शुभा...शुक्लजी...अब तुम ? मैं बहुत अकेली हूँ, मत जाओ तुम, अनिरुद्ध !

पर नहीं ! अनिरुद्ध रहा तो अविजित...अनिरुद्ध के रहते अविजित कभी डिलीरियम से बाहर नहीं आ सकेगा।

श्यामा ने हाथ उसके कन्धों पर से हटाकर सीने पर बांध लिये। चन्द क़दम पीछे हटकर दृढ़ स्वर में बोली, "ठीक है, अनिरुद्ध। जाओ।"

अनिरुद्ध चौंक उठा। मुंह उठा कर उसने श्यामा की सख्त मुद्रा को पढ़ा। उसके चेहरे से अविश्वास मिला अचरज नहीं मिटा। एक भूला-बिसरा, बहुत पुराना, स्नेहातुर बचपन वहां लहक आया। होश सम्भालने के बाद से शायद पहली बार, अनिरुद्ध ने ठिठक कर किसी से पूछा, "जाऊं ?"

श्यामा की नज़रों से कुछ छिपा नहीं था। वह अच्छी तरह समझ रही थी कि उसके हां कहने पर, यह जाना अनिरुद्ध का अंतिम जाना होगा।

उसने आंखें बन्द कर ली। हाथ छाती पर बांधे रही।

"हां, जाओ," सख्त सपाट स्वर में उसने कहा।

"शुक्ल जी !" अन्दर कमरे से अविजित की आवाज सुनाई दी, "शुक्ल जी !"

"हां, पिताजी," खोखी कह रही है।

"शुक्ल जी," अविजित दुहराये जा रहा है, "शुक्ल जी !"

श्यामा ने आंखें खोली।

देखा, खाली कमरे के एक कोने में बैठा सुधांशु कैंची से कागज़ काट रहा है। आजकल यही उसका काम है और यही खेल।

छोटे-बड़े कागजों पर कच-कच कैंची चल रही है। कागज़ कट रहा है, टेढ़ा मेढ़ा, बेतरतीब, बिला वजह। कट-कट कर नीचे गिर रहा है। और फिर कट रहा है। कच-कच कैंची चल रही है...

वक्त खिसक रहा है...कटते कागज़ की कतरन की तरह।

श्यामा आगे बढ़ी। बांह पकड़ कर उसने सुधांशु को उठाया। दूसरे हाथ में कैंची और कागज़ की कतरनें सम्भाली और उसे ले जाकर अविजित की बगल में बिठला दिया। कैंची हाथ में आई तो सुधांशु तन्मय होकर कागज़ कतरने लगा।

"शुक्ल जी !" अविजित ने कहा।

"उलई !" चौंककर सुधांशु ने कहा और कमरे में चारों तरफ निगाह दौड़ा दी।

"नई," उसने कहा, "उलई नई।"

"शुक्ले जी," अविजित ने फिर भी कहा।

सुधांशु अविजित के बिल्कुल पास सिमट आया और उसके ऊपर झुक कर बोला, "उलई नई !"

अविजित के वदन की गरमी महसूस करके वह खुश हो हंस दिया। फिर खूब जमकर बिस्तर पर बैठ गया और तेजी से कागजों पर कैंची चलाने लगा। कागज़ की कतरनें अविजित के ऊपर, आस-पास गिरने लगीं। सुधांशु ने देखा और किलक-किलक कर हंसने लगा।

अविजित की आंखें कागज़ की बिला वजह, टेढ़ी-मेढ़ी, बेतरतीब कतरनों की बौछार पर जा टिकीं।

वह भी हंस दिया।

वक़्त कटता रहा···

कागज़ की कतरन की तरह···

···टटता रहा···